राजा पन्नालाल गोवर्द्धनलाल ग्रंथमाला

प्रथम भाग

संपादक

उमाशंकर शुक्ल, एम० ए०

राजा पन्नालाल स्कॉलर

प्रकाशक

प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग

वक्तव्य

सन् १९४० ई० के अक्टोबर में हैदराबाद (दक्खन) जाने का मुझे अवसर मिला। वहाँ श्रीमती सरोजिनी नायडू की कृपा से राजा पन्नालाल जी से मिला। आप का हिन्दी के प्रति प्रेम और उत्साह सराहनीय है। हैदराबाद राज्य में आप की सहायता से हिन्दी प्रचार का काम बहुत अच्छा हो रहा है। यह आप की हिन्दी श्रद्धा का ही फल है कि आप ने हिन्दी में अन्वेषण और प्रकाशन के लिये प्रयाग विश्वविद्यालय को १२००) रु० का वार्षिक दान देना स्वीकार किया है। विश्वविद्यालय ने इस दान को सहर्ष स्वीकार किया, और जनवरी, सन् १९४१ में श्री उमाशंकर शुक्ल, एम० ए० अन्वेषण और सम्पादन के काम के लिये नियुक्त किये गये। हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष डाक्टर श्री धीरेन्द्र वर्मा, एम० ए०, डी० लिट्० के निरीक्षण में ये काम करते रहे हैं। राजा पन्नालाल की उदारता, दानशीलता और साहित्यानुराग से हम बहुत अनुगृहीत हैं।

नन्ददास के सम्पूर्ण ग्रन्थ अभी तक कहीं ठीक से प्रकाशित नहीं हुए हैं। भूमिका के पढ़ने से ज्ञात हो जायगा कि श्री उमाशङ्कर जी ने पुस्तकों के सङ्कलन और सम्पादन में कितना परिश्रम किया है। जिन संस्थाओं और सज्जनों की सहायता से शुक्ल जी को सामग्री मिली है उन की यूनिवर्सिटी कृतज्ञ है।

"राजा पन्नालाल गोवर्द्धनलाल ग्रन्थमाला" में हिन्दी के सभी प्रमुख कवियों के ग्रन्थों को प्रकाशित करने का विचार है। हिन्दी-विभाग के अध्यापकों और "रिसर्च स्कॉलरों" के सहयोग से, पुस्तकालयों और हिन्दी की अमुद्रित पुस्तकों के संग्रहों की सहायता से, आयोजन सफल होगा, ऐसा हमारा विश्वास है। हमें सन्तोष है कि यह महत्त्व का

काम प्रयाग विश्वविद्यालय से सम्पन्न हो रहा है। हिन्दी और उर्दू का उच्चतम कक्षा का अध्ययन और अध्यापन यहाँ बहुत वर्षों से हो रहा है। डाक्टर श्री धीरेन्द्र वर्मा की अध्यक्षता में यहाँ अन्वेषण का भी बहुत अच्छा काम हुआ है और हो रहा है। इस विभाग से कई बहुमूल्य पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं और तीन चार विद्वानों को डाक्टर की उपाधि मिल चुकी है। यह उचित ही है कि ऐसे योग्य अध्यक्ष के निरीक्षण में यह ग्रन्थमाला प्रकाशित हो रही है। मुझे पूरा भरोसा है कि ग्रन्थों के पाठ में, कवि के जीवन-वृत्तान्त में, काव्य की समालोचना में हमें वह निर्भीकता, औचित्य और योग्यता मिलेगी जिस की एक विद्यापीठ से आशा की जा सकती है।

२६.७.४२. अमरनाथ झा

विषय-सूची

प्रथम भाग

पृष्ठ

द्वितीय भाग

भूमिका

जीवनी

नंददास की निश्चित जन्म-तिथि का हमें कोई ज्ञान नहीं है। श्री दीनदयालु गुप्त ने अनुमान से सं० १५९० में इन का जन्म माना है[1]। काँकरौली के श्री द्वारिकादास जी ने इस के चार वर्ष पूर्व नंददास के जन्म-संवत् की कल्पना की है[2]। महाप्रभु वल्लभाचार्य के द्वितीय पुत्र गोसाईं विट्ठलनाथ जी द्वारा नंददास पुष्टिमार्ग में दीक्षित हुए इस में संदेह नहीं किया जा सकता क्योंकि स्वयं कवि द्वारा विरचित ऐसे कई पद प्राप्त होते हैं[3] जिन से यह सूचित होता है कि वे गोसाईं जी के शिष्य थे। गो० गोपीनाथ की असामयिक मृत्यु के बाद सं० १५९१ में विट्ठलनाथ जी गद्दी पर बैठे अतएव इस तिथि के बाद ही नंददास संप्रदाय में दीक्षित हुए होंगे और विक्रम की १७वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में उन का रचना-काल रहा होगा।

अंतर्साक्ष्य के आधार पर नंददास के एक "परम रसिक" मित्र के होने की भी सूचना मिलती है। 'बिरहमंजरी', 'रसमंजरी', 'रासपंचाध्यायी' तथा 'दशम स्कंध' के प्रारंभ में कवि ने इस मित्र का उल्लेख किया है जिस से यह ज्ञात होता है कि उन के यह मित्र संस्कृत से अनभिज्ञ थे किंतु वे साहित्यिक अभिरुचि रखते थे और उन्हीं के आग्रह से कवि ने कई ग्रंथों

---

[1] 'प्राचीन वार्ता-रहस्य' (काँकरौली), द्वितीय भाग, "अष्टछाप का ऐतिहासिक विवरण", पृ० १८

[2] वही

[3] 'पदावली', पृ० ३४१-३४२, पंक्ति २७६-२९९

की रचना की थी। इस मित्र के नाम का कवि ने कोई निर्देश नहीं किया है। कवि की 'नासिकेत पुराण' नामक एक संदिग्ध कृति से यह भी विदित होता है कि यह मित्र नंददास के शिष्य भी थे—

"और जनमेजय या कथा (नासिकेत पुराण) सुणी परम गति कौं प्रापति भयौ है। और सर्व पाप कटे हैं। और स्वामी नंददास जी आपण मित्र नैं भाषा करि कहतु है। सिष्य पूछत है गुसाइ जी मेरै अभिलाषा नासकेत पुराण सुणिबा की ईछा बहौत है मो नैं भाषा बारता कहौ।"

श्री दीनदयालु गुप्त ने यह कल्पना की है[1] कि रूपमंजरी ही कदाचित् कवि की वह मित्र थी जिस का कवि ने उल्लेख किया है। 'श्री गोवर्द्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता'[2] से इस कल्पना की विशेष पुष्टि भी होती है। उक्त वार्ता के पृष्ठ ३६ पर यह विवरण दिया हुआ है—

"एकदिनां श्रीनाथजी ग्वालियर की बेटी रूपमंजरी हती ताके संग चोंपड खेलबे पधारे चार प्रहर चोंपड खेले और बीन सुने वह बीन आछी वजावत हती चार प्रहर रात्रि वहां हीं विराजे नंददासजी को वाको संग हतो गुणगान आछो करत हती ताके लिये नंददास जी रूपमंजरी ग्रंथ कियो है ताम (तामैं) चौपाई धरी है—रूपमंजरी त्रिया को हीयो। सो गिरिधर अपनो आलय कीयो[3]।"

नंददास के जीवन-वृत्त पर प्रकाश डालने वाले वहिर्साक्ष्यों में नाभा-दास कृत 'भक्तमाल' की प्रामाणिकता निर्विवाद मानी जाती है। नाभा जी ने नंददास की रस-रीति-संबंधी रचना तथा सरस काव्योक्तियों की प्रशंसा करने के अतिरिक्त उन का निवासस्थान रामपुर ग्राम बतलाया है। वे उच्च कुल अथवा सुकुल वंश के थे। "चंद्रहास अग्रज सुहृद",

---

[1] "महाकवि नंददास का जीवन-चरित्र", हिंदुस्तानी, जुलाई १९४०

[2] श्रीवेङ्कटेश्वर प्रेस, १९०५ ई०, पृ० २७३

[3] 'रूपमंजरी', पंक्ति २९५

नाभा जी के इस कथन का अर्थ तीन प्रकार से किया गया है—(१) उत्तम हृदय वाले नंददास चंद्रहास के बड़े भाई थे, (२) उत्तम हृदय वाले चंद्रहास नंददास के बड़े भाई थे अथवा (३) नंददास चंद्रहास के बड़े भाई के मित्र थे। इन तीनों अर्थों में सर्वप्रथम अधिक स्वाभाविक जान पड़ता है अतएव हम कह सकते हैं कि नंददास के छोटे भाई का नाम चंद्रहास था।

'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' के आधार पर नंददास के जीवन के संबंध में विशेष जानकारी प्राप्त होती है। इस वार्ता का एक रूप डाकोर से प्रकाशित सं० १९६० का संस्करण है। सं० १९९८ में काँकरौली के विद्या-विभाग द्वारा प्रकाशित 'प्राचीन वार्ता-रहस्य', द्वितीय भाग, में भी अष्ट सखाओं के विवरण दिए गए हैं। डाकोर के संस्करण से कवियों के संबंध में अधिक विस्तृत सामग्री देने के अतिरिक्त इस संस्करण की एक विशेषता यह भी है कि इस में गो० हरिराय कृत 'भावप्रकाश' की टिप्पणियों के साथ कवियों के वृत्त पाए जाते हैं। हरिराय जी गोकुलनाथ जी के समकालीन माने जाते हैं अतएव यह आशा की जाती है कि उन के उल्लेखों से अष्टसखाओं की जीवनियों का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। 'प्राचीन वार्ता-रहस्य' में जो वृत्त नंददास का दिया हुआ है उस से विदित होता है कि वे रामपुर निवासी सनाढ्य ब्राह्मण थे और उन की गणना 'अष्टछाप' में की जाती थी। वे गो० तुलसीदास के छोटे भाई थे और उन के समान ही पहले रामानंदी संप्रदाय में दीक्षित हुए थे। आमोद-प्रिय स्वभाव के होने के कारण वे एक बार हठपूर्वक एक यात्रियों के संघ के साथ काशी से रणछोड़ जी के दर्शनों के लिए रवाना हुए। मथुरा से उन्हों ने संघ का साथ छोड़ दिया और श्री द्वारिका जी के लिए अकेले ही चल पड़े। मार्ग भूल जाने के कारण वे "सिंहनंद" नामक ग्राम पहुँचे जहाँ एक "क्षत्री" की स्त्री के रूप पर इतने आसक्त हो गए कि वे अपना लक्ष्य ही भूल गए। बाद में गो० विट्ठलनाथ जी ने उन्हें बुला कर संप्रदाय में दीक्षित किया और उन का

मोह छूटा। गोसाईं जी के साथ एक बार वे श्रीनाथ जी के दर्शनों के लिए गए और तत्पश्चात् छः मास तक परासोली में सूरदास जी के साथ रहे। तुलसीदास जी ने नंददास को अपने पास बुलाने के लिए एक बार काशी से पत्र लिखा और बाद में वे स्वयं ब्रज गए भी। उक्त परासोली स्थान पर दोनों व्यक्तियों की भेंट हुई। बहुत समझाने पर भी नंददास जी ब्रज छोड़ने के लिए उद्यत नहीं हुए। एक दिन दोनों भाई गिरिराज पर श्रीनाथ जी के दर्शनों के लिए गए। नंददास के आग्रह पर श्रीनाथ जी ने धनुर्धारी राम के स्वरूप में तुलसीदास को दर्शन दिए। गोकुल जाने पर गोसाईं जी से साक्षात्कार के समय भी इसी प्रकार की घटना हुई। नंददास की अटल कृष्ण-भक्ति देख कर उन के अग्रज को यह निश्चय हो गया कि उन का काशी लौट जाना असंभव था। विवश हो कर वे स्वयं वापस चले गए। तुलसीदास के 'रामचरितमानस' के अनुकरण में नंददास ने भी अपने इष्टदेव की श्रीमद्भागवत दशम स्कंध में दी हुई कथा का भाषानुवाद किया जिस पर मथुरा के कथावाचक ब्राह्मणों ने गोसाईं जी से आपत्ति की क्योंकि नंददास के ग्रंथ की लोकप्रियता के कारण उन की आजीविका की हानि होती थी। फलस्वरूप गोसाईं जी की आज्ञा से नंददास ने रास-लीला के अंश तक तो रख लिया और अवशिष्ट ग्रंथ यमुना जी को समर्पित कर दिया। उपर्युक्त 'प्राचीन वार्ता-रहस्य' के छठे प्रसंग में नंददास की मृत्यु का वर्णन है। एक बार मानसी गंगा के समीप बादशाह अकबर ठहरे हुए थे। तानसेन ने उन के सामने नंददास का प्रसिद्ध पद—'देखो री देखो नागर नट नृत्यत कालिंदी के तट.....नंददास गावत तहां निपट निकट'[१] गाया। अकबर ने बीरबल द्वारा नंददास को बुलवाया और उन से इस पद का अभिप्राय बतलाने को कहा। अकबर के डेरे पर एक वैष्णव सेविका भी थी जिस से नंददास का विशेष स्नेह था। नंददास ने अकबर से

---

[१] 'पदावली', पृ० ३३३

कहा कि आप अपने डेरे की अमुक लौंडी से इस पंक्ति का अर्थ समझ सकते हैं। जब अकबर वहाँ से उठ कर उक्त सेविका के पास गए और उस से अपना प्रश्न पूछा तो वह पछाड़ खा कर गिर पड़ी और इधर नंददास जी भी अपने धर्म के रहस्य को गोप्य रखने के अभिप्राय से शरीर छोड़ कर लीला को प्राप्त हुए। इस विवरण के अतिरिक्त गो० हरिराय जी के 'भावप्रकाश' से यह ज्ञात होता है कि नंददास श्रीनाथ जी की दिवस की लीला में 'भोज' सखा के अवतार थे और "रात्रि की लीला में श्रीचंद्रावलीजी की सखी 'चंद्ररेखा' इनको नाम है"[1]।

सोरों, ज़िला एटा, में पाई जाने वाली कुछ अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रतियाँ प्रकाश में आई हैं[2] जिन से एक ओर तो वार्ताओं के कुछ विवरणों की पुष्टि होती है, दूसरी ओर वल्लभ-संप्रदाय में प्रविष्ट होने के पहले कवि के प्रारंभिक पारिवारिक जीवन की बातों का ज्ञान होता है। इन पोथियों में 'रामचरितमानस' की 'अरण्यकांड' तथा 'बालकांड' की सं० १६४३ की दो प्रतियाँ हैं जिन की पुष्पिकाओं से तुलसीदास तथा नंददास के भ्रातृ-भाव और नंददास तथा कृष्णदास के पिता-पुत्र होने का समर्थन होता है। कृष्णदास कृत 'सूकरक्षेत्रमाहात्म्य' की प्रति का रचना-काल सं० १६७० तथा लिपि-काल सं० १८७० है। इस ग्रंथ के अंत में कृष्णदास ने अपनी वंशावली दी है जिस से ज्ञात होता है कि आधुनिक सोरों के समीप ही रामपुर ग्राम में सनाढ्य शुक्लों का एक परिवार रहता था। इस परिवार के पूर्वज नारायण पंडित थे। उन के चार पुत्र थे—श्रीधर, शेषधर, सनक तथा सनातन। सनातन के पुत्र परमानंद तथा प्रपौत्र आत्माराम तथा जीवाराम थे। इन में आत्माराम के पुत्र तुलसीदास तथा जीवाराम के नंददास थे। नंददास के एक छोटा भाई चंद्रहास भी था। उन के पुत्र

---

[1] 'प्राचीन वार्ता-रहस्य' पृ० ३२६

[2] डा० माताप्रसाद गुप्त : 'तुलसीदास', पृ० ८०

कृष्णदास थे जो 'सूकरक्षेत्रमाहात्म्य' के रचयिता थे। सं० १८२९ में रचित मुरलीधर की 'रत्नावली' से नंददास तथा तुलसीदास के अपने सजातीय स्मार्त वैष्णव गुरु नृसिंह की पाठशाला में शिक्षित होने की सूचना मिलती है। इस ग्रंथ की एक मुद्रित प्रति के साथ 'दोहा रत्नावली' की भी एक प्रति प्रकाशित हुई है जो तुलसीदास की धर्मपत्नी रत्नावली की कृति है और जिस में नंददास के तुलसीदास का अनुज होने का समर्थन स्वयं रत्नावली करती है—

मोइ दीनों संदेश पिय, अनुज नंद के हाथ।
रतन समुझि जनि पृथक मोइ, जो सुमिरत रघुनाथ ॥

'रत्नावली लघु दोहा संग्रह' के समस्त दोहे 'दोहा रत्नावली' में संगृहीत हैं। अंतिम ग्रंथ कृष्णदास कृत 'वर्षफल' है[1] जो ज्योतिष का ग्रंथ है और जिस का रचना-काल सं० १६५७ है। 'सूकरक्षेत्रमाहात्म्य' की भाँति इस ग्रंथ में भी कृष्णदास लिखते हैं कि वे उसी रामपुर ग्राम के रहने वाले थे जिस का नाम वदल कर उन के पिता ने 'स्यामपुर' कर दिया था[2]।

---

[1] श्री दीनदयालु गुप्त : "महाकवि नंददास का जीवन-चरित्र", हिंदुस्तानी, जुलाई १९४०, पृ० ३०३

[2] ऊपर दिए हुए वहिर्साक्ष्यों के साथ ही बाबा वेणीमाधव के 'मूल गोसाईं चरित' का भी उल्लेख किया जा सकता है। बाबा जी ने नंददास को कान्यकुब्ज ब्राह्मण बतलाया है और एक ही गुरु शेषसनातन के पास विद्याध्ययन करने के कारण नंददास तथा तुलसीदास को गु -भाई माना है। इस ग्रंथ की भ्रमात्मक ऐतिहासिकता तथा इस की तिथियों की अशुद्धता आदि के इतने प्रचुर प्रमाण डा० माताप्रसाद गुप्त ने दिए हैं (दे० 'तुलसीदास', पृ० ४०-५६) कि इस के वृत्तों को कपोलकल्पित मान लेने में कोई आपत्ति न होनी चाहिए।

वार्ताओं में दिए हुए कवियों के वृत्तों के संबंध में विद्वानों ने अनेक प्रकार की शंकाएँ उठाई हैं। डा० धीरेन्द्र वर्मा ने 'दो सौ बावन वार्ता' के गोकुलनाथ जी कृत न होने के तीन पुष्ट कारण बतलाए हैं[1]—

१. इस वार्ता में गोकुलनाथ जी का नाम इस प्रकार प्रयुक्त हुआ है जिस से ज्ञात होता है "कि कोई तीसरा व्यक्ति गोकुलनाथ के संबंध में लिख रहा है।"

२. इस के कुछ प्रसंगों में औरंगजेब द्वारा सं० १७२६ में किए गए अत्याचारों का संकेत है किंतु गोकुलनाथ जी का निधन सं० १७०४ ही में हो गया था।

३. ८४ तथा २५२ वार्ताओं में व्यवहृत व्याकरण के रूपों में वैभिन्य है। "एक ही व्यक्ति अपनी दो रचनाओं में व्याकरण के इन छोटे छोटे रूपों में इस तरह का भेद नहीं कर सकता।"

कुछ दिनों से इन विषमताओं के समाधान करने का प्रयत्न भी किया जा रहा है। 'प्राचीन वार्ता-रहस्य' के प्रकाशक श्री कण्ठमणि जी शास्त्री का कथन है कि सं० १६४५ से सं० १७८० तक वार्ताओं के तीन लिखित 'संस्करण' हुए। सं० १६४५ तथा सं० १६६० के भीतर लिखी हुई प्रतियों में ८४ तथा २५२ वार्ताओं का वर्गीकरण नहीं पाया जाता है। दूसरे 'संस्करण' का रूप सं० १६६४ से सं० १७३५ तक की प्रतियों में देखा जाता है। इस समय ८४ तथा २५२ वार्ताएँ पृथक् कर दी गईं और यह कार्य श्री हरिराय जी के संपादकत्व में हुआ। उन्हीं ने वार्ताओं में "श्री गोकुलनाथ जी कृत" शब्दों का समावेश किया। गोकुलनाथ जी के अनंतर सं० १७३५ से सं० १७८० तक तीसरे 'संस्करण' का समय बतलाया गया है। इस काल में गो० हरिराय जी ने वार्ताओं पर 'भावप्रकाश' लिख कर उन के भावों को अधिक विस्तार तथा स्पष्टता के साथ समझाया है।

---

[1] 'विचारधारा', पृ० ११३-११७

कहा जाता है कि हरिराय जी ने ही औरंगज़ेब के राजत्व-काल के अत्याचारों के उल्लेख बढ़ा दिए होंगे क्योंकि वे उक्त घटना के बहुत समय बाद तक जीवित रहे थे। इन तीनों प्रकार की वार्ताओं तथा कुछ अन्य बहिरंग प्रमाणों के आधार पर श्री दीनदयालु गुप्त ने यह मत स्थिर किया है कि यद्यपि २५२ तथा ८४ वार्ताएँ गोकुलनाथ जी द्वारा लिखित नहीं हैं फिर भी वे उन के द्वारा कथित अवश्य हैं और वे उन के जीवन-काल में ही लिपिबद्ध कर ली गई थीं। काँकरौली के विद्या-विभाग की सं० १६९७ की ८४ तथा 'गोसाईं जी के चार सेवकन की वार्ता' की प्रति के लिपि-काल के समय गोकुलनाथ जी विद्यमान थे।

उपर्युक्त वार्ता साहित्य पर स्वतंत्र रूप से विचार करते समय सब से बड़ी कठिनाई यह है कि १३५ वर्ष के अंतर्गत लिखे हुए तीनों 'संस्करणों' का पाठ हमारे सामने नहीं है। 'प्राचीन वार्ता-रहस्य' में दिया हुआ पाठ सं० १७५२ की भावना वाली प्रति का है। इस के पहले की पोथियों में कवियों के वृत्तों में कौन कौन उल्लेख छूटे हुए हैं अथवा अधिक हैं यह जानना आवश्यक है। सं० १६९७ की प्रति का जो ब्लॉक इस पुस्तक में दिया हुआ है उस में नंददास की वार्ता का प्रारंभिक अंश इस प्रकार है[1]—

"अब श्री गुसांई जी के सेवक नंददास सनोढिया ब्राह्मण तिनके पद गाईयत हे सो वे पूर्व में रहते तिन की वार्ता।"

सं० १७५२ की भावना वाली प्रति में उक्त अंश यों दिया है[2]—

"अब श्रीगुसांईजी के सेवक नंददासजी सनाढ्य ब्राह्मण, रामपुर में **रहते, जिन के पद** अष्टछाप में **गाइयत हैं तिनकी वार्ता।"**

'रामपुर' तथा 'अष्टछाप में' ये शब्द सं० १६९७ की प्रति में नहीं हैं। इसी प्रकार अन्य अंतरों का होना भी संभव है। इन अंतरों से अपरिचित

---

[1] 'प्राचीन वार्ता-रहस्य', वक्तव्य, पृ० ११ के सामने

[2] वही, पृ० ३२६

होने पर हमारा वार्ता साहित्य का अध्ययन अधूरा ही कहा जायगा। 'संस्करण' शव्द किस निश्चित अर्थ में लिखा गया है इसे भी हम भली प्रकार नहीं जानते। उक्त तीनों संस्करणों का जो समय दिया गया है वह जिस आधार पर अवलंवित है वह भी ज्ञातव्य विषय है। सं० १६९७ की वार्ता से प्राचीन किसी भी प्रति का उल्लेख नहीं किया गया है। इस से यह विदित होता है कि सं० १६४५ से सं० १६९० तक के प्रथम 'संस्करण काल' के स्थिर करने का कोई दूसरा ही आधार होगा। जो हो, जहाँ तक नंददास जी की वार्ता का संवंध है हम इतना दृढ़तापूर्वक कह सकते हैं कि सं० १६९७ में उन का सनाढ्य ब्राह्मण तथा तुलसीदास जी का छोटा भाई होना प्रसिद्ध था। इस वार्ता का रचयिता अथवा लिपि-कार चाहे जो रहा हो, गोस्वामी तुलसीदास जी की मृत्यु (सं० १६८०) के १७ वर्ष बाद इस उल्लेख का मिलना एक महत्त्वपूर्ण वात है।

सोरों में पाए जाने वाले ग्रंथों की वहिरंग तथा अंतरंग परीक्षा डा० माताप्रसाद गुप्त ने की है[1]। गुप्त जी के अनुसार वालकांड की पुष्पिका की अंतिम पंक्ति "वासी नंददास पुत्र कृष्णदास हेत लिषी रघुनाथदास ने कासीपुरी में" के ऊपर एक आड़ी रेखा खिची हुई है। इस पंक्ति के नीचे पुनः तीन रेखाएँ खींची गई हैं। ऐसा जान पड़ता है कि इन तीन रेखाओं को यह सूचित करने के लिए खींचा गया है कि ग्रंथ की समाप्ति इस पंक्ति के पहले न हो कर इस के बाद में हुई है। इस पंक्ति का हस्तलेख ऊपर की पंक्तियों के लेख से मेल नहीं खाता है। अरण्यकांड की पुष्पिका में सं० १६४३ के '१६४' अंकों पर दुवारा स्याही फेरी गई है। ऐसा अनुमान होता है कि पहले इन अंकों के स्थान पर कुछ और अंक थे जिन्हें मिटा कर '१६४' लिख दिया गया है। 'सूकरक्षेत्रमाहात्म्य' के विषय में डा० गुप्त ने यह वतलाया है कि इस के शब्दों की शिरोरेखाएँ पृथक् कर के लिखी

---

[1] 'तुलसीदास', पृ० ८६-९५

गई हैं। सं० १८७० के आसपास की लिखी हुई पोथियों के शब्दांत के वर्णों को सटा कर लिखने की ही प्रथा पाई जाती है। सं० १८२९ में कवि मुरलीधर विरचित 'रत्नावली' की "विचार-शैली" तथा "शब्द-विन्यास" में कुछ आधुनिकता बनलाई गई है। 'रत्नावली' के साथ प्रकाशित 'दोहा रत्नावली' में रत्नावली यह कहती है कि सं० १६२७ में तुलसीदास जी उसे छोड़ कर चले गए थे। इस कथन के अनुसार यह कल्पना करनी पड़ेगी कि गृह-त्याग के पश्चात् व्रजभाषा-भाषी तुलसीदास जी ने चार वर्षों में ही 'रामचरितमानस' ऐसे प्रौढ़ ग्रंथ की रचना कर ली होगी जो संभव प्रतीत नहीं होता है। इस संबंध में एक और आपत्ति की गई है। सं० १६२७ के पहले के विलासमय जीवन का वर्णन 'रत्नावली' में प्राप्त होता है। 'रामाज्ञा प्रश्न' की रचना-तिथि सं० १६२१ है और उस ग्रंथ में इस बात के स्पष्ट उल्लेख मिलते हैं कि उस के लिखते समय कवि संसार से विरक्त हो गया था। अतएव सं० १६२७ में गृह-त्याग की बात भ्रामक प्रतीत होती है।

डा० गुप्त की विस्तृत समीक्षा का जो सारांश ऊपर दिया गया है उस से यह स्पष्ट है कि सोरों की अधिकांश सामग्री जितनी महत्त्वपूर्ण है उतनी ही संदिग्ध भी है। जिन पोथियों के संवतों के अंकों से छेड़छाड़ हुई है, जिन की लिपि-शैली को प्राचीन मानने का हमारे पास एक भी प्रमाण नहीं है, जिन की भाषा में आधुनिकता है तथा जिन के उल्लेख अंतर्साक्ष्यों से मेल नहीं खाते हैं, उन्हें स्वतंत्र रूप से प्रमाण कोटि में लेना युक्तियुक्त नहीं प्रतीत होता है। अभी तक सोरोंपक्ष में जो कुछ लिखा गया है उस से इन शंकाओं का समाधान नहीं होता है।

इस प्रकार सं० १६९७ की 'गोसाईं जी के चार सेवकन की वार्ता' में नंददास तथा तुलसीदास के भ्रातृ-भाव का जो उल्लेख मिलता है वह अकेला ही पड़ जाता है। साथ ही वह संपूर्ण ग्रंथ भी हमारे सामने नहीं ,जिस से उस की पूरी परीक्षा की जा सके। एक और बात भी अत्यंत

विचारणीय है। नाभादास जी तुलसीदास तथा नंददास दोनों के ही समकालीन थे। उन्हों ने दोनों कवियों का वर्णन किया है, किंतु किसी कवि के वर्णन में उन्हों ने इस भ्रातृ-भाव का निर्देश नहीं किया। यदि वास्तव में यह संबंध था तो नंददास के वर्णन में 'चंद्रहास अग्रज सुहृद' के स्थान पर उन्हें कदाचित् 'तुलसीदास अनुज सुहृद' लिखना चाहिए था। अतएव वस्तुस्थिति यह ज्ञात होती है कि जब तक और कोई नई सामग्री प्रकाश में न आवे तब तक इस विवादग्रस्त विषय का निराकरण होना कठिन है।

वार्ताओं तथा प्रसिद्धि के अनुसार यह प्रायः निश्चित सा माना जाता है कि गो० विट्ठलनाथ जी ने नंददास को अष्टछाप में रख कर समादृत किया था, किंतु 'श्री गोवर्द्धननाथ जी के प्राकटच की वार्ता' के मुद्रित संस्करण[1] के पृष्ठ २७ पर एक उल्लेख इस प्रकार है—

"जब श्री गोबर्धननाथजी प्रगट भये तब अष्ट सखा हू भूमि पें प्रगट भये अष्ट छापरूप होयकें सब लीलाको गान करत भये........ तिनके नामकी छप्पय श्रीद्वारकानाथजी महाराज कृत—

सूरदास सो तो कृष्ण तोक परमानद जानो।
कृष्णदास सो ऋषभ छीतस्वामी सुबल बखानो॥
अर्जुन कुंभनदास, चत्रभुजदास विशाला।
विष्णुदास सो भोजस्वामी गोविंद श्रीदामाला॥
अष्टछाप आठो सखा श्रीद्वारकेश परमान।
जिनके कृत गुन गान करि निज जन होत सुथान॥"

इस छप्पय में नंददास के नाम के स्थान पर विष्णुदास का नाम दिया है। इस विषय पर विचार करते समय यह भी द्रष्टव्य है कि प्राकटच की वार्ता भी उन्हीं गोस्वामी हरिराय जी की लिखी हुई बतलाई जाती है

---

[1] श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई (१९०५ ई०)

जिन्हों ने अष्ट सखाओं की वार्ताओं पर 'भावप्रकाश' लिखते हुए नंददास के संबंध में लिखा है कि "जिन के पद अष्टछाप में गाइयत हैं"[१]।

कवि कृत प्रसिद्ध ग्रंथ

फ़्रांसीसी विद्वान् तासी ने अपने इतिहास (१८७० ई०) में नंददास के निम्नलिखित ग्रंथों का उल्लेख किया है[२]—

१ पंचाध्यायी
२ नाममंजरी
३ अनेकार्थमंजरी
४ रुक्मिनी मंगल
५ भँवरगीत
६ सुदामा चरित्र
७ विरह मंजरी
८ प्रबोधचंद्रोदय नाटक*
९ गोवर्द्धन लीला*
१० दशमस्कंध
११ रासमंजरी*
१२ रसमंजरी
१३ रूपमंजरी
१४ मानमंजरी

'शिवसिंहसरोज' (१८८३ ई०) में दो नए ग्रंथों के नाम हैं—

१५ दानलीला*

---

[१] **'प्राचीन वार्ता-रहस्य', पृ० ३२६**

[२] **'इस्त्वार दा ला लितेरत्यूर एँदूई ए एँदुस्तानी', भाग २, द्वितीय संस्करण, पृ० ४४५**

१६ मानलीला*

डा० ग्रियर्सन कृत 'मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ़ हिंदोस्तान' (१८८९ ई०) में उल्लिखित सात ग्रंथ दी हुई सूची के अंतर्गत ही हैं। 'मिश्रबंधु-विनोद' के द्वितीय संस्करण (१९२६ ई०) में ६ नए नाम दिए गए हैं—

१७ हितोपदेश*
१८ ज्ञानमंजरी*
१९ नामचिंतामणिमाला
२० नासिकेत पुराण
२१ श्यामसगाई
२२ विज्ञानार्थप्रकाशिका*

स्वर्गीय पं० रामचंद्र शुक्ल के इतिहास के परिवर्द्धित संस्करण (१९४० ई०) में एक नया नाम दिया है—

२३ सिद्धांतपंचाध्यायी

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, की प्रकाशित तथा अप्रकाशित खोज रिपोर्टों में चार नए ग्रंथों का उल्लेख है—

२४ जोगलीला*[1]
२५ फूलमंजरी*[2]
२६ रानी मंगौ*[3]
२७ कृष्णमंगल*[4]

श्री द्वारकेश पुस्तकालय, काँकरौली, द्वारा निम्नलिखित एक अन्य हस्त-लिखित ग्रंथ प्राप्त हुआ है—

---

[1] खो० रि० सन् १९०६-०८, संख्या २०० (डी)
[2] खो० रि० सन् १९२९-३१
[3] वही
[4] खो० रि० सन् १९३५-३७

२८ रासलीला*

डा० माताप्रसाद गुप्त द्वारा दो मुद्रित ग्रंथों की सूचना मिली है—

२९ बाँसुरीलीला*[1]

३० अर्थचंद्रोदय*[2] (पद्यबद्ध शब्दकोष)

उपर्युक्त सूची में दिए हुए ग्रंथों में * चिह्न वाले ग्रंथों के नंददास कृत होने में अनेक कठिनाइयाँ हैं, उन का संक्षिप्त विवेचन नीचे दिया जा रहा है।

'नाममंजरी' (२), 'मानमंजरी' (१४) तथा 'नामचिंतामणिमाला' (१९) एक ही ग्रंथ के तीन नाम हैं। 'प्रबोधचंद्रोदय नाटक' (८), 'रास-मंजरी' (११), 'मानलीला' (१६), 'ज्ञानमंजरी' (१८), 'विज्ञानार्थ-प्रकाशिका' (२२), 'बाँसुरीलीला' (२९) तथा 'अर्थचंद्रोदय (३०), के नाम ही नाम सुने गए हैं। 'रासमंजरी' कदाचित् 'रसमंजरी' का ही परिवर्तित नाम है। 'विज्ञानार्थप्रकाशिका' को मिश्रबंधुओं ने छतरपुर में कहीं देखा था। उन के अनुसार यह ग्रंथ किसी संस्कृत ग्रंथ की भाषाटीका है। 'अर्थचंद्रोदय' संभवतः 'अनेकार्थ' अथवा 'मानमंजरी' का ही दूसरा नाम होगा क्योंकि यह भी 'पद्यबद्ध शब्दकोष' बतलाया गया है।

'सुदामा चरित्र' (६) की एक आधुनिक प्रति पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी के हस्तलेख में लिखी हुई काशी नागरी प्रचारिणी सभा के अधिकारियों से प्राप्त हुई है। खोज में अभी तक इस ग्रंथ की कोई भी प्रति प्रकाश में नहीं आई है। सभा की प्रति की परीक्षा करने पर ऐसा ज्ञात होता है कि यह छोटा सा ग्रंथ कवि की प्रारंभिक कृति है क्योंकि नंददास की काव्य-

---

[1] प्रकाशक तथा मुद्रक अब्दुर्रहमान खाँ, कानपुर, २९. १०. ८०, प्रथम संस्करण, पृ० १८, मूल्य)॥

[2] प्रकाशक छोटीलाल, फ़तेहपुर सीकरी, मुद्रक श्रेष्ठ प्रेस, आगरा, १४. ५. १७, मूल्य ।-)॥

शैली से साम्य होने के साथ ही इस ग्रंथ में पर्याप्त शिथिलता दृष्टिगोचर होती है। इस की यदि कुछ पोथियाँ प्राप्त हो सकें तो इस के कवि कृत होने अथवा न होने के संबंध में निश्चय किया जा सकता है। परिशिष्ट १ (घ) में सभा से प्राप्त 'सुदामा चरित' की प्रति की प्रतिलिपि दी गई है।

'नासिकेत पुराण' (२०) नामक गद्य ग्रंथ के भी कवि कृत होने के संबंध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। सभा की खो० रि० सन् १९०९-११, संख्या २०८ (ए), में नीमराना के 'माधव स्कूल' के हिंदी अध्यापक पं० प्यारेलाल के नाम से इस ग्रंथ की सं० १८१३ की एक प्रति का उल्लेख मिलता है। इस की दो खंडित प्रतियाँ डा० भवानी शंकर याज्ञिक से प्राप्त हुई हैं जिन में एक का लिपि-काल अज्ञात है तथा दूसरी सं० १८५५ की लिखी है। एक अन्य प्रति लेखक को भरतपुर राज्य पुस्तकालय में मिली है जिस की पुस्तकालय संख्या '१०ग' है और जो सं० १७९५ की लिखी है। इन तीनों पोथियों में ऐसे उल्लेख विद्यमान हैं जिन से यह प्रकट होता है कि नासिकेत की कथा नंददास अपने मित्र अथवा शिष्य से कह रहे हैं। कवि की प्रामाणिक कृतियों में भी इस मित्र के दर्शन होते हैं जिस से यह धारणा होती है कि इस ग्रंथ के रचयिता भी नंददास होंगे। प्राप्त तीनों प्रतियों की भाषा में बहुत अधिक भिन्नता है। एक ही बात को तीनों ने बहुधा इतने अंतर से लिखा है कि साधारणतया इन के पाठ को स्थिर करना बहुत कठिन हो जाता है। परिशिष्ट १ (ङ) में इस ग्रंथ के तीन उद्धरण दिए गए हैं। इन में से (१) व (२) डा० याज्ञिक की उस प्रति से उद्धृत हैं जिस का लिपि-काल अज्ञात है। उद्धरण (३) भरतपुर राज्य पुस्तकालय की सं० १७९५ की प्रति से लिया गया है।

'गोवर्द्धनलीला' (९) की एक प्रति पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी से लेखक को मिली है जो उन्हीं के हस्तलेख में लिखी है। जैसा कि ग्रंथ के नाम से प्रकट है इस में कृष्ण के गोवर्द्धन-धारण की कथा वर्णित है। यह

कथा कवि कृत 'दशम स्कंध', अध्याय २४ व २५ में भी है। 'दशम स्कंध' की कथा और इस ग्रंथ के वर्णन को मिलाने से यह प्रायः निश्चित सा हो जाता है कि ये दोनों कथाएँ एक ही हैं। अध्याय २४ व २५ की लगभग ४० पंक्तियाँ साधारण अंतर के साथ इस ग्रंथ में भी हैं। संभवतः 'दशम स्कंध' की इस लीला को कभी पृथक् रूप से लिखा गया था और पीछे से किसी ने आदि और अंत में कुछ चौपाइयाँ जोड़ कर इसे ग्रंथ का रूप दे दिया था। नीचे इस ग्रंथ के तीन उद्धरण दिए जाते हैं जो क्रमशः आदि, मध्य और अंत से लिए गए हैं—

श्री गुर चरन मनाओं, गिरि गोबरधन लीला गाओं।
कल मल हरनीं मंगल करनी, मन हरनी श्री सुक मुन बरनी।
जग्ग करन जब गोप कलोले, तिन प्रत साँमल सुन्दर बोले।
तात कहौ यै बात कहा है, भुमन माँहि आनंद महा है।
सैन कबउ कर मकरै ढूकी, सो असाइ कर मकरै लूकी।
मंद मंद हंस नंद कही तब, बात तात सौं कही अपुन सब।
मघवा है मेघन कौ राजा, यै उद्यम सब उनके काजा।
बरखें जल तृन उपजै भारी, गाँइन के गन होंईं सुखारी।
तब बोले निज नाम उमाँहें, मुरलीधर गिरधर भयौ चाँहें।
जहँ यै गिरि गोबरधन सोहै, इन्द्र बराक या आगें को है।

× × ×

कान्ह कही तुम देखौ काजा, प्रगट भयौ है गिर कौ राजा।
जितनों भोजन ब्रज ते आयौ, गिर रूपी हरि सबरौ खायौ।
भई परतीत आँनद उर भारी, करैं प्रदिच्छन नर औ नारी।
इक मूरत हरि भोजन करई, इक लोगन सँग फेरी फिरई।
फिरत जु छबि बाढ़ी तिहँ काला, गोबरधन मनु पैहैरी माला।
गिरि वर कह्यौ कछू भय नाहीं, फूले गोप न अंग समाहीं।
सुन्यों इन्द्र मेरौ जग मेंटा, यै मद मत्त नंद कौ बेटा।

ताके बल मो सों करखाती, हरि है कहा ? गोप का बाती।
जो कोऊ उन पच्छ करचारे, तो रन चँहें सुख सीइँ अपारै।
झूंठहि की जो नाउ बनावै, झूंठ माँठ कौ कुँटम चढ़ावै।
ऐसेंई गोप श्री कृष्ण भरोसें, महा बैर कीनों हैं मो सें।
अब देखौ कैसौ सिखराऊँ, गोकुल गाँमहिं खोद बहाऊँ।
बोले मेघन के गन सोई, जिनके जल जग परलें होई।

× × ×

निकसे सब जब गिरधर भाँख्यौ, गोबरधन फिर तहँ ही राख्यौ।
प्रेम भरीं बनता जुरि आँई, वारें अभरन लेत बलाई।
घुर रही जसुमत लेत बलाई, इत घुर रह्यौ बड़ौ बल भाई।
ऊपर ठाड़ौ नंद अनंदै, चूंमत अपनों आँनद कंदै।
यै नागर नगधर की लीला, सुधा सींअ सम सुन्दर सीला।
मन कम बचन याहि अनुरागै, ताहि मुकत अति फीकी लागै।
अरथ धरम औ कामजीत सुख, निपट कटुक ते कौंन धरै मुख।
केवल अधिकारी रस जानें, अल बिन कमलन को पैंचाँनैं।
नवल किसोर सुन्दर गिरधारी, स्रवन नैंन मन अमृत भारी।
नंददास कौं इतनों कीजै, पावन गुन गावन रत दीजै।

'दानलीला' (१५) तथा 'रासलीला' (२८) नाम की दो पोथियाँ देखने में आई हैं। इन में से पहले ग्रंथ की प्रति काशी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के विद्यार्थी श्री महावीर सिंह गहलौत से प्राप्त हुई है। इन ग्रंथों की भाषा-शैली तथा काव्योक्तियाँ कवि की प्रामाणिक कृतियों से इतनी भिन्न हैं कि इन्हें नंददास कृत मानने में विशेष अड़चन पड़ती है। इन के रचयिता 'नंददास' 'रासपंचाध्यायी' अथवा पंचमंजरियों आदि के नंददास से सर्वथा भिन्न प्रतीत होते हैं। रास आदि के वर्णन में कवि ने अपने ग्रंथों में जिस चुनी हुई शब्दावली तथा जिन बँधी हुई उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं आदि का प्रयोग अनिवार्य रूप से किया है वे इन शिथिल रचनाओं में

दृष्टिगोचर नहीं होती हैं। 'दानलीला' बहुत छोटी सी रचना है अतः उसे पूर्ण रूप में उद्धृत किया जा रहा है। 'रासलीला' आकार में उस से कुछ बड़ी है अतएव श्रीद्वारकेश पुस्तकालय, काँकरौली, की प्रति के आदि तथा अंत से उस के दो उद्धरण दिए जाते हैं।

"श्रीगणेशाय नमः।। अथ दानलीला लिष्यते।। अहो प्यारी वृंदा विपिनि सुहावनो अरु वंसी वट की छाह हो प्यारी राधा दधि लै नीकसी कन्हैया रोकी आय हो वृषभानु लडैती दान दे १ अहो प्यारे सबै सयाने साथ के अरु तुमहु सयाने लाल हो अहो प्यारे लिषो देषावो साव मेरे कव दान लियौ पशुपाल हो नदराय लला घर जान दें २ अहो प्यारी वहुत दिना वचि जात हो मेरो दाव वन्यौ है आजु हो अहो प्यारी दान दियें विन जाहुगी हौं तो समुझि लेहुगो आजु हो वृषभानु लडैती ३ अहो प्यारे कवके तुम दांनी भये अरु कव हम दीनो दान हो अहो प्यारे हम गोकुल की ग्वालिनी तुम नंद महर के कान्ह हो नदराय लला घर जान दे ४ अहो प्यारी लै आये तौ लैहिगे कोइ नई न करिहैं आज हो अहो प्यारी नित अहिराय पठावही अरु दै वीडी वृजराज हो।। वृषभान लडैती दा० ५ अहो प्यारे कहा हम लादैं जात हैं अरु कहा हमरैं हैं वैल हो अहो प्यारे तुम टेढें ठाढे भये अरु रोकि मही की गैल हो।। नदराय लला ६ अहो प्यारी अंग अंग वैल सुहावने अरु भरें रतन के भार हो अहो प्यारी नायक रूप लादैं रही अरु जोवन लादै जात हो।।वृषभानु।। ७ अहो प्यारे रतन जटित मेरी इडुरी अरु ये मोतिन के हार हो अहो प्यारे सो तुम चाहो दान लै कारी कामरि वोढन हार हो नदराय लला घर जान दै ८ अहो प्यारी वृह्मा तानों पूरियौ अरु वीन्यौ है इंदू महेस हो अहो प्यारी सो हम ओढे कामरी जाकौ पार न पायौ सेस हो वृषभानु ९ अहो प्यारे जसुदा वाधे दावरी दामोदर गोपाल हो अहो प्यारें हाहा करि हमही चलीं तुमहीं छुडावन हार हो नदराय लला घर जान दै १० अहो प्यारी गरव करो जिन ग्वालिनी वैठी जमुना जल न्हान हो अहो प्यारी चीर चुराये जात हों तुम सव मिल हाहा षाय हो।। वृषभानु

०॥११ अहो प्यारे याही तें कारे भये अरु लैलै अैसो दान हो अहो प्यारे क्यौं छूटौगे भार सौ काहू तीरथ हू नही जाय हो नंदराय लला०॥१२॥ अहो प्यारी गौरज गगा न्हात हो अरु जपत गौवन कौ नाम हो अहो प्यारी परम पुनीत अरु लेत हों अैसो दान हो ॥वृषभानु० १३॥ अ ॥ × × (प्यारे ?) गुजराती डाकौतिया वहु लेत गृहन में दान हो अहो प्यारे तिनमें हो तुम सामरे वृषभान ववा की आन हो नदराय लला० १४ अहो प्यारि हम दानी वहु भांति के अरु जैसी विधि कोउ देत हो अहो प्यारी तैसी विधि हम लेत हैं नंदराय ववा की आन हो वृषभान लडैती० १५ अहो प्यारे देस हमारे वाय कौ ताकी वांह वसै नदराय हो अहो प्यारे घास रषायौ सामरे तुम सुषहि चरायौ गाय हो नदराय लला० १६ अहो प्यारी देस तुम्हारे वाप कौ अरु दीनौ वास वसाय हो अहो प्यारी सव संकलप्यौ ता दिना जव पियरे कीनौ हाथ हो वृषभानु लडैती० १७ अहो प्यारे दान लै दान लै दान लै कछ गाय बजाय रिझाय हो अहो प्यारे महुवर मेहेरी दई××ति सुकुमार हों नंदराय लला० १८॥ अहो प्यारे नट×सावरे जैसे छंद पढत हे भाट हो अहो प्यारे मिस ही मिस झगरों भयो श्री वृन्दावन सुष पायहों वृषभान लडैती० १९ अहो प्यारे चतुर चतुर दोऊ मिले अरु कीने हास विलास हो अहो प्यारे वृन्दावन लीला रची नंददास वलि वलि जाय हो ॥ इति श्री नंददास कृत दानलीला संपूर्णम ॥ शुभंभूयात् ॥ संवत १९१५ ॥"

रासलीला

"श्रीगोपीजनवल्लभायनमः ॥ ॥ राग सामेरी ॥ साखी ॥ निगम चार नेति नेति कहे ॥ कोउ न जाँनत पार ॥ सो प्रभु व्रज में खेलहि ॥ गोपिन प्रांन आधार ॥१॥ शोभासिंधु अगाध्य जल कवी जन बरनी न जांयः ॥ शिवसनकादिक शुक नारद मुनि ॥ शेष सहस्त्र मुख गांय ॥२॥

वैकुंठ तजि व्रज में बसे हरी गोपिन कुं दीयो दांन ।। सकल अंग सहित प्रगटित सखी कृष्नस्व ये भगवांन ।।३।। चकवा चाहत चंद कुं कमल मधुप गुंजार ।। चातुक जलधर मीन जल त्यौं हरि प्रांन आधार ।।४।। कोस चौरासी व्रज्य भलो कमल विकसीत वहु जात ।। कुंज निकुंज द्रुम बेलि बिच बिच क्रीडत सांवल गात ।।५।। जांई जुई चंपक मोगरो केवरो अनेक सुगंध्य प्रफुल्लित बन बीराजही त्रिविध पवन बहे मंद ।।६।। हंस मोर चकोर शुक चातुक कोकि गांन ।। खग मृग पंखी राजही अति प्रफुलित भगवांन ।।७।। नटवर वेष धरयो हरी मस्तक मुगट विशाल ।। पीत वसन मकराकृति कुंडल उर सोहें बनमाल ।।८।। ढाल ।। उर सोहे बन माला ।। प्रभु चंचल नेंन बिशाला ।। भृगुटी धनुष सो भांय लोचन शर मन बेधांय ।। भाल तिलक अति शोभे ।। अलक मधुप चित चोभे ।। कुंडल रवि शशि य्योती (जोती) ।। नकबेसरी लटकतु मोती शर दशाशि मुख राजे ।। छबि देखी मन्मथ लाजे ।। चाल्य ।। लाजें मन्मथ निरखि शोभा कोटि कांम उद्योतही ।। अरुन अधर ही दंत दाडिम चिवुक ही राज्यो तिही ।।१।। कंठ कौस्तुभ मनी ज ल ह ल गुंज मुक्ता माल ही ।। बनमाल अरू वेंज यंति माला रत्न हार बिशाल ही ।।२।। स्यांम पीत अे मानुं जलधर पीत पट घन दामिनी ।। अजांन भुज कर पोंहोंची× द्रु मोरली सोहामनी ।।३।। किंकिनी कटि मधुर वाजे रत्न कंचन सों जरे ।। रुनझुन नूपुर घुघरु घमके। रहे हरी वन मध्य खरे ।।४।। सुंदर चरन सरोज कोमल चंद्रमा नव अंगुरी ।। नंददास दयाल व्रजपति वेनु वजावें श्रीहरि ।।५।।"

× × ×

"आंओ बेठो स्कंध उपर जब नंद नंदन हसी कही ।। सावधांन होय जब चढन लागी ।। नेंननी देखें नही ।। विरह दुख अति सिंधु मानु(?) हरी बिनां एक पल क्यौं रहु ।। एह घोर बन मे अकेली तजी गए कहो बिरहोनी काहा कहु ।। तारी दें दें हसी भाम्यनी तुम हम सब एकत भई ।। सकल बन में ढुढती सब मिलि यमुनां त्रट गई ।। लोचन जल मुष गुन

गांवें ॥ उच्चें स्वरतु पुकारही ॥ मंडली रच बंठी अबला कृष्न कृष्न उच्चारही ॥ दीनदयालु दया मनु जांनि ॥ बोहोत दुष पांई सबें ॥ बिरह दुख अति सह्यो न जांई ॥ त्रिया दरस दीजे अबें ॥ मंडली मध्य प्रभु प्रगटे ॥ श्याम तन शोभा घनी ॥ कोटि काम उद्योत नष शिष विराजित त्रिभुवन धनी । देष दोरच्च सबें पलटांई ॥ गोपिन मन भायो कियो ॥ अलि घन देय के नीरखें ॥ शीतल भई सब दुष गयो ॥ परमारथ एह भक्त जांनु धंन्य गोपिन तूम षरी ॥ एसी प्रीत्य कहु नही देषी ॥ प्रसन्न मुष हसि कें कही ॥ रास मंडल फिरी रच्यो हरी यमुना पुलिन बिराजही ॥ कंठ बाहु देत चूंबन कोटि कंदर्प लाजही ॥१०॥ मधुरे स्वर आलापति गांवति मिलवति तांनही ॥ हस्तक भेद देखावनी मध्य निरतत श्री भगवांन ही ॥ धरनि नभ शशि पशु पंखी जीव स शीतल भये दई आज्ञा स्यामसुंदर सुंदरी सब भुवन गये ॥ सुरि नर मुनि पावें नही निगम नेति नेति नेति कहें ॥ नंददास दयाल हरि कों अगाध्य यश कवि काहा कहे ॥ इति श्री नंददास जी कृत रासलीला संपूर्ण ॥"

'राजनीति हितोपदेश' (१७) की तीन हस्तलिखित प्रतियों का पता चला है—दो प्रतापगढ़ राज्य के पुस्तकालय में सुरक्षित हैं[1], तीसरी छतरपुर के किन्हीं बाबू जगन्नाथप्रसाद के पास बतलाई जाती है[2]। लेखक ने पहली दो प्रतियों की परीक्षा की है। इन में एक प्रति अंत से खंडित है, दूसरी सं० १९३३ की लिखी है। इस की पृष्ठ-संख्या २८० है और इस के आदि अथवा अंत में किसी कवि के नाम का उल्लेख नहीं है। पुष्पिका में लिपि-कार ने ग्रंथ को नंददास कृत बतलाया है—

"जौ लौं सुर घर कनक गिरि फिरि सूर्य औ चंद ।
तौ लौं नाराएन कथा सुनौ सुजान अनंद ॥

---

[1] खो० रि० १९२६-२८ ई० (अप्रकाशित)

[2] खो० रि० १९०५ ई०, संख्या ३६

इति श्री हितोपदेसे (स्वा)मी नंददास कृते चतुर्थ कथा समाप्त..."

छतरपुर की प्रति का जो उद्धरण सभा की रिपोर्ट में दिया है उस के अंतिम दोहे में 'अनंद' के स्थान पर 'नंद' पाठ है—

जौ लौ सुर घर कनक गिरि फिरि सूरज औ चंद ।
तौ लौ नारायन कथा सुनौ सुजन जन नंद ॥

तुकांत के विचार से 'नंद' पाठ अधिक स्वाभाविक प्रतीत होता है। यह ग्रंथ दोहा-चौपाई में लिखा गया है और नारायण पंडित कृत 'हितोपदेश' नामक संस्कृत ग्रंथ का उल्था है। इस के मंगलाचरण से ही इस के प्रसिद्ध नंददास कृत होने में संदेह होता है—

सिद्धि साधु के काज मो सो हर करै कृपाल ।
गंग फेन की लीक सी सिर ससि कला विशाल ॥

वल्लभ संप्रदाय में शिव का स्थान भगवान् के प्रमुख भक्तों में है, उन्हें उपास्य-देव के रूप में नहीं ग्रहण किया गया है। नंददास के किसी ग्रंथ के मंगलाचरण में शिव की स्तुति नहीं है। नीतिपरक रचनाओं की ओर भी कवि का कोई अनुराग लक्षित नहीं होता है। मुरली के मादक आह्वान तथा गोपियों की अगाध विरह-व्यथा में डूबे हुए कवि-हृदय का ध्यान कभी चूहे और बिल्ली द्वारा कही हुई इन कथाओं की ओर भी गया होगा इस की कल्पना अत्यंत दुरूह है। इस ग्रंथ की भाषा-शैली प्रौढ़ अवश्य है किंतु वह नंददास की शैली से नितांत भिन्न है। अतएव यह ग्रंथ किसी दूसरे नंददास का ही कहा जायगा। नीचे इस ग्रंथ के दो उद्धरण दिए जाते हैं जो प्रतापगढ़ राज्य पुस्तकालय में सुरक्षित प्रतियों से लिए गए हैं—

"श्री गणेशायनमः। दोहा॥ सिद्धि साधु के काज मो सो हर करै कृपाल। गंग फेन की लीक सी सिर ससि कला विशाल ॥१॥ सुनु हित हित उपदेश यह देत वचन रचनानि। देवन की वानी लहै राजनीति पहिचानि ॥२॥ अजर अमर की भांति सो विद्या धनहि वढाउ। मीचु मनो

झोटी गहे देत न वार लगाउ ॥३॥ विद्या धन सव धनन मे संत कहत सरदार ॥ मोल चढो नहि घटत घर किये न पैए मार ॥४॥ विद्या देत विनीत करि विनौ वडाई देत । वडे भये धनु पाइए दान भोग धन हेत ॥५॥ शस्त्र शास्त्र विद्या दुविध धनु औ धर्म न जाइ । विरधाई पहिले हंसी दूजी सदा सोहाइ ॥६॥ दारुन विपति समुद्र सो विद्या नही समान । लै पहुचावै नीचहूं लाभ भाग परिमान ॥७॥ विद्या नदी नदी त्र पु नी च हि मिलवै हाल । दारुन दानि दया करै होइ जु भागु कृपाल ॥८॥ प्रथमहि वाको नाउ जो धरो नए घट डारि । वाल कथा छल कहत हौ राजनीति सव झारि ॥९॥ मित्र लाभ फिरि सुहृद को भेदरु विग्रह संधि । पंच तंत्र से ग्रंथ पढि चारि कथा में वंधि ॥१०॥ चौपाई ॥ भागीरथी तीर एक ग्राम । पटना कहत ताहि को नाम ॥ नृपति सुदरसन मोहत तामे । स्वामी के गुन वरनो जामे ॥ एक काल काहू द्वै दोहा । पढे सुने राजा मन मोहा ॥ जासो सब संसै मिटै अनदेषो सो देषु ॥ पढिवो पोढी आंषि है अपढ अंध करि लेषु ॥११॥ चोपाई ॥ जोवन धन प्रभुता अविवेक । एको अनरथ करै अनेक । एक ठौर जो उपजै चारि । कछू दिनन में डारै मारि ॥ यह विचारि राजा भो दीन । सुत मेरो विद्या को हीन ॥ केहि विध ए मेरे सुत पढही । राजनीति सो दिन दिन वढही ॥ कौन काज ऐसे सुत कीन्हे । जो न पढै नहि धर्महि चीन्हे ॥ कानी आंषी केवल पीरा । नित उठि आवै कीचर नीरा ॥ दोहा ॥ एकै साधु पढचो भलो पुत्र सिंह सरदार । कुल उजियारो चंद्र ज्यों करै धरै सिर भार ॥१२॥ गुनी गनत नहि जाहि की लीक सु अगमनि लोनि । पुतरौती सुत ताहिते होति सुवंध्या कौनि ॥१३॥"

× × ×

"ताते मेरे मन यह आई । तोसों वात कहों यह भाई ॥ असु मंद गरुवो× जानी । तौ लों कानक तराजू आनी ॥ सतिऐ कहै भेद हजारु । सतिहि की दीजै पनि भारु ॥ ताते सति पथ करि लीजै । कचन संधि दुहुन करि दीजै ॥ चक्रवाक सर्वग्यहु कही । राषी वात गीध की

सही ।। तव फिरि अलंकार उपहार । दे गीधहि मोतिन के हार ।। विदा करी मंत्री लै चल्यौ । चक्रहि संग कियो हलभल्यौ ।। गीध मोर सों भेंट कराई । कहो चक्रवाक पियहि राई ।। चित्र वरन अभरन ह दीन्हो । चक्रवाक को आदर कीन्हो ।। कीन्ही विदा गीध दै साथ । करि सनमान आपने हाथ ।। कीन्हीं संधि मिटी ×× । आयौ राह हंस के कटकै ।। दीरघदरसी तव यह कह्यौ । राजइ हांनहि कारज रह्यौ ।। विंध्याचल चलिए चढि धाई । जाइ अपने घर सुष पाइ ।। दुनौ गए आपने राज । सुष सों करैं आपनो काज ।। विस्नुसर्म कालक सो कही । आयसु करी सुनो चही ।। राजपुत्र बोले जिय जानि । विस्नुसर्म को आदर मानि ।। दुज वरु जो राजा को चही । सोई कथा आप यह कही ।। दूजो भयौ जन्म अवतार । सुनियौ राज रंग व्यवहार ।। गयौ जो ग्यानु फेरि अब भयौ । विस्नुसर्म तब देत असीस । संधि करो सव धरा धरीस ।। विपति दूरि साधन की जाइ । मुदित न कीरति सदां सोहाइ ।। नीति नई नारी लगु जगी । चुंवन करैं मंत्रि मुष लागी ।। मंत्री × सदा मन धरैं । महाराज सुष अन × करै । दोहा ।। जौं लौं गोरि गिरीस को × × × × × जौं लौं सुरघर कनक गिरि फिरि सूर्य औ चन्द ।। तौं लौं नाराएन कथा सुनौ सुजान अनंद ।। इति श्री हितोपदेसे (स्वा)मी नंददास कृते चतुर्थ कथा समाप्त सुभमस्त् । सम्वत १९३३ ।। साके ।। १७९।। मिती पूस कृस्न पक्षे ११।। सुम्वार लिखितं जो प्रति देष सो लीषं मम दोष न देअते ।। श्री राम राम × × । श्री रामदूत हनिवताय नमः ।"

'जोगलीला' (२४) के नंददास कृत होने का एकमात्र उल्लेख सभा की सन् १९०६-०८ की रिपोर्ट, संख्या २०० (डी) में हुआ है । सन् १९३८-४० की अप्रकाशित रिपोर्ट में इस ग्रंथ की सूचना संदिग्ध रूप से 'उदय' कवि के नाम से भी दी गई है । काशी के आर्यभाषा पुस्तकालय में संख्या २९८ पर इस ग्रंथ की एक प्रति सुरक्षित है । इस के अतिरिक्त जिल्द संख्या

७६७/१३ तथा ३०३/१३ की दो पोथियाँ डा० भवानीशंकर याज्ञिक से प्राप्त हुई हैं। सभा की प्रति का प्रथम तथा अंतिम छंद इस प्रकार है—

एक समै मन मित्र मोहि अज्ञा यह दीनी।
याही ते मति उँकति जोगलीला तव कीनी॥
शिव सनकादिक सारदा नारद सेस महेश।
देहु बुधिबर ऊँदै उँर अक्षर ऊँकति विशेस॥

कपट रूप करि किते भांति कहु भेष बनावै।
गोपी गोप गुपाल कौ नित ष्याल षिटावै॥
रूप सिरोमणि राधिकां रसिक शिरोमनि स्यांम।
निपट वसौं ऊँर मै सदां करि शंकेत सधाम॥ स्याम स्यामा सहित॥

याज्ञिक जी की दोनों प्रतियों में 'निपट वसौं ऊँर' के स्थान पर "बसत उदै उर" पाठ मिलता है। मंगलाचरण के छंद में शिव सनकादिक की स्तुति चिंत्य है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है नंददास आदि वल्लभ संप्रदाय के भक्तों की रचनाओं में इन्हें गौण स्थान दिया गया है। 'देहु बुधिबर ऊँदै उँर' में 'उदै' की श्लिष्टता के कारण दो प्रकार से अर्थ किया जा सकता है—(१) उदय के हृदय में श्रेष्ठ बुद्धि दो (२) हृदय में श्रेष्ठ बुद्धि का उदय दो (करो)। अंतिम छंद के 'बसत उदै उर मै सदा' आदि के अनुरोध से कदाचित् पहला अर्थ लगाना ही समीचीन होगा। 'उदय' कृत अन्य ग्रंथों में भी 'उदै उर' का प्रयोग हुआ है। डा० याज्ञिक से प्राप्त 'रामकरुना नाटिक' तथा 'वीरचिन्तामणि' नामक 'उदय' के ग्रंथों से दो उदाहरण दिए जाते हैं—

सुमिरि राम छवि चंद काम पूरन सुषसागर।
पूरन कला प्रकास उदै उर होत उजागर॥
करै हेत कर जोरि कै करौं कविन परनाम।
बरनहु बल हनुमान कौ लछिमन को संग्राम॥ राम करुना करै।

हसि हसाइ सुष पाई न्हाई ईतरांति अमानी ।
अप अपने घर गई निडर काहु नही जानी ।।
यह लीला क्रीला (क्रीड़ा?) सहैत गुवाल बाल जल माल ।
बसहु उदै उर मै सदा चीर चोर नंदलाल ।। करत सब ष्याल जी ।।

'जोगलीला' की उक्त तीनों प्रतियों के पाठ में नंददास का नाम कहीं नहीं आया है। केवल सभा की प्रति के अंत में 'इति श्री नंददास कृत जोगलीला संपूर्ण' लिखा हुआ है। ऐसा जान पड़ता है कि 'भँवरगीत' आदि नंददास के ग्रंथों से बहुत अधिक साम्य रखने के कारण इस ग्रंथ का संबंध नंददास से जोड़ दिया गया है। उदयनाथ 'कवींद्र' (रचना-काल सं० १८०० के लगभग) कालीदास त्रिवेदी के पुत्र और दूलह के पिता थे। ये काव्यक्षेत्र में नंददास से विशेष प्रभावित हुए थे। ोहा-रोला-टेक वाले छंदों की शैली पर इन्हों ने कई ग्रंथ लिखे हैं जो कदाचित् अप्रकाशित ही हैं। नंददास ने अपने एक मित्र के आग्रह से कुछ ग्रंथों की रचना की थी। संभवत: इसी से प्रभावित हो कर ही उदय ने लिखा है—

'एक समय मन मित्र मोहि अज्ञा यह दीनी'

आर्यभाषा पुस्तकालय, काशी, की प्रति के आधार पर 'जोगलीला' से कुछ अवतरण दिए जाते हैं। इन्हें देखने से यह विदित हो जायगा कि उदय ने 'स्यामसगाई' तथा 'भँवरगीत' की शब्दावली भी यत्र-तत्र अपना ली है—

ईक दिन नंदकुमार ग्वाल मिलि मतों उंपायो ।
नंदगाम ते निकरि भोर ईक भेष बनायो ।।
तुम सव गायन पै रहौ मै बरसानै जाऊं ।
मैं कवहू देष्यौ नही कैसों है व(ह) गाऊं ।। भूप बृषभान कौ ।।
यह कहि मोहन जबै रूप जोगी कौ कीनों ।
कांनन मुद्रां मेलि तिलक जव आंडौ दीनों ।।

जटा मुकुट माथै धरचौ जहरामहुरा लाई ।
सींगी सेली पहरि कै लीनी भसम रमाय ।। रूप धरि कपट कौ ।।

× × ×

बरसानै के बाग जाय जव अलष जगायौ ।
पसु पंछी बस भये सुनत रस नांद बजायौ ।।
धरि धूनी मोंनी बने पलक दिये दृग डारि ।
बैठे तरवर के तरै जप जोगासन मारि ।। कपट को कोथरा ।।

× × ×

कहन लगी करि जोरि कुमरि की सषी सयानी ।
द्रग षोलौं महांराज षडी बड गोप घरांनी ।।
क्रपा द्रष्टि करि कै अवै हरौ सबै संताप ।
गोप राज रांनी ईतै जोगराज हौ आप ।। ताप त्रीय कों हरौ ।।
बडी बेर कछू भई तनक तव पलक उंघारे ।
चितवनि करि तिनि ओर कपट के बचन ऊंचारे ।।
को हों तुम करिहौ कहां क्यौ आई हम पास ।
हम जोगी जासौ रहै सहजै सदां उंदांस ।। मित्र हम कोन के ।।

× × ×

जोग बुरौ जौ होई कहौ संकर क्यौ धारै ।
जोग जतन ते रतन रूप परवृंह्म निहांरै ।।
मोह नदी की धार मै वह्यों जांत संसार ।
जोग करै उंतरै तेई निर्गुन नाम अधार ।। सार है यही ।।
निर्गुन जो तुम कहौ संगुन बिन कैसे पावै ।
छाया पकरै कहां अफलफ करतल आवै ।।
सगुन सलौने रूप कौ सुगम प्रेमपथ पांई ।
आगि देहि वा अलष कै अगम पंथ मै जाई ।। नांथ ईन हाथ ही ।।

× × ×

कहति कुमरि की मांत तांत तुम पूरें जोगी ।
देषि कुमरि कौ हांथ कहौ संजोग बियोगी ।।
करी सगांई नंद कै कुमरि कान्ह कौ जांनि ।
ईनै उंनै रस होईगौ कहों रेष पहिचानि ।। सुलछन हाथ के ।।

'फूलमंजरी' (२५) में राधा-कृष्ण का वर्णन दोहों में किया गया है। प्रत्येक दोहे में किसी न किसी पुष्प का नाम होने के कारण इस का नाम 'फूलमंजरी' रक्खा गया है। नागरी प्रचारिणी सभा की सन् १९२९-३१ की अप्रकाशित रिपोर्ट में मास्टर श्रीराम, ग्राम भीखमपुर, पो० फ़तेहाबाद, ज़िला आगरा, के नाम से इस की एक प्रति की सूचना दी गई है। उक्त स्थान जाने पर लेखक को ज्ञात हुआ कि मास्टर श्रीराम का स्वर्गवास हो गया है अतएव यह प्रति देखी न जा सकी। सभा की रिपोर्ट में जो उद्धरण दिया हुआ है उस के अंतिम दोहे में किसी कवि की छाप नहीं है। पुष्पिका में यह निर्देश अवश्य है—"इति श्री फूल मंजरी नंददास किरत संपूर्ण समापतं"। इस की दूसरी प्रति रामहरी जौहरी की एक पोथी में पाई जाती है[१] और उस का लिपि-काल सं० १७९३ है। सभा की रिपोर्ट की प्रति की भाँति इस में भी ३१ दोहे हैं किंतु मूल ग्रंथ के पाठ में अथवा आदि-अंत में किसी लेखक का नाम नहीं है। रामहरी जौहरी नंददास के ग्रंथों से विशेष रूप से परिचित थे। नंददास की अन्य कृतियों के साथ एक ही जिल्द में इस ग्रंथ को लिखाते हुए भी उन्हों ने इस के रचयिता के नाम का उल्लेख नहीं कराया है, इस से यही विदित होता है कि या तो वे इसे नंददास कृत नहीं समझते थे अथवा उन्हें इस ग्रंथ के कर्त्ता का नाम निश्चित रूप से ज्ञात न था। एक तीसरी प्रति (जिल्द संख्या ६७५/५६) डा० भवानीशंकर याज्ञिक से प्राप्त हुई है। इस प्रति में एक दोहा अधिक है और उस से यह सूचित होता है कि ग्रंथ-कर्त्ता का नाम पुरुषोत्तम है।

---

[१] दे० 'रूपमंजरी' की 'ड०' प्रति का परिचय।

नंददास कृत सभी ग्रंथों में उन की छाप अवश्य पाई जाती है। प्रथम दो प्रतियों में इस 'छाप' के न होने से तथा तृतीय पोथी में निश्चयपूर्वक पुरुषोत्तम नाम मिलने से यही अनुमान होता है कि यह ग्रंथ नंददास का नहीं है। डा० याज्ञिक की प्रति के आधार पर इस के १० दोहे उद्धृत किए जाते हैं—

सीस मुकट कुंडल झलक संग सोहत व्रजवाल।
पहरै माल गुलाव की आवत है नंदलाल ॥१॥
चंपक वरन सरीर सुष नैन चपल द्रग मीन।
जव दुलहनि तव रूप लषि लाल भये आधीन ॥२॥
फूलि रही जहा विविधि रति वहौत सघन वन वेलि।
कुंज पहौप उर माल धरि करत कुंज मध केलि ॥३॥
सेत वरन सोभा अधिक मानौ मधु की धूप।
लसत राधि(का) कुवरि पै कर केवरौ अनूप ॥४॥

× × ×

नंद नंद वसुदेव कुवर मेरे जीवन मूल।
वेर वेर तो सौ कहौ आव निवारी फूल ॥१६॥
किस्तूरी सौधौ अगर है चंदन ता पास।
ताकौ अग्र जु रतन कहै पाडल की वास ॥१७॥

× × ×

तुम जर हाई जाय सही महा दुषत है वाय।
और ष्याल सब छाडि कै इह करनौ हित लाय ॥२९॥
कहत फिरत सब सषीन मै सौतिन लोचन सूल।
आज लाल हम है दयौ सूरजमुषी कौ फूल ॥३०॥
पीतांवर की छवि बनी सोहत स्याम सरीर।
कुसम केतकी मुकट धरि आवत है वलवीर ॥३१॥
पहौपवंध धरि ग्रंथ है कह्यौ पहौपन कौ नाम।
परसोतम याकौ भजै लै लै पहौपन नाम ॥३२॥

'रानी मंगौ' (२६) नाम की एक पोथी का परिचय नागरी प्रचारिणी सभा की अप्रकाशित खोज रिपोर्ट सन् १९२९-३१ में नंददास के नाम से हुआ है। यह पोथी ग्राम राटौटी[1], डाकखाना होलीपुरा, जिला आगरा के निवासी ठा० प्रतापसिंह के पास है। जिस जिल्द में यह प्रति है उस में इस के पहले जयदेव कृत 'गीतगोविंद' तथा पीछे गंगग्वाल कृत 'दानलीला' लिखी हुई है। 'रानी मंगौ' ग्रंथ पत्र २९ से प्रारंभ होता है। इस के बाद पत्रों में संख्याएँ नहीं पड़ी हैं तथा उन में से कुछ जिल्द से अलग भी हो गए हैं। अन्य बस्तों में खोजने पर लेखक को इस प्रकार के कई पत्रे प्राप्त हुए। संदर्भ तथा तुकांत की सहायता से पत्रों का क्रम निश्चित कर लेने पर यह आश्चर्यजनक बात मालूम हुई कि न तो ग्रंथ के मूल पाठ में और न 'अथ-इति' के साथ ही किसी रचयिता का नाम दिया हुआ है। सभा की रिपोर्ट में 'रानी मंगौ' का अंतिम उद्धरण इस प्रकार है—

"× × × **अरी वृषभान गोप को कहा डर मानौं। दानी दान ल्यौ सब जांनु। अहो बहौत भांति के दान कहावै। तुम कौन भांति के दानी आये एक गहन वेद वा ले यो। जल मे पौसि लोक सब देई। एक अमावस संकई** मंगै अगरसिरी अपने पद रज इनकी प्यारी। **रानी मंगौ। नंददास।**"

इस ग्रंथ की अंतिम ४ पंक्तियाँ तथा पुष्पिका इस प्रकार है—

ये नारी निरमल जग पांवन जो इन कौ जस गांनैं।
इनहि आसिवे रहसि उपासीक बात महल की जांनैं॥
देव असुर रिषि बधु नाग नर बधू जोड़ी जोड़ी हरि कौं प्यारी[2]।
रानी मंगै अगरसिरी अपनैं पद रज इन की धारी॥

इति श्री रांनी मंगौ संपुरन समापता॥ अथ दानलीला......॥

---

[1] प्रसिद्ध नाम 'पछाँहगाम'।

[2] इस शब्द के स्थान का कागज़ फटा है। जो कुछ अवशिष्ट है उस से यही अनुमान होता है कि यहाँ पर 'प्यारी' पाठ रहा होगा।

दोनों उद्धरणों की तुलना करने से ज्ञात होता है कि रिपोर्टर महोदय ने पुष्पिका का संक्षिप्त रूप 'रानी मंगौ' दे कर 'नंददास' शब्द बढ़ा दिया है जो कि स्पष्ट ही निराधार है। पुष्पिका के पहले का पद्यांश भी भिन्न है, केवल हलके टाइप में दी हुई पंक्ति दोनों में समान है। बात यह है कि 'मंगै' से ले कर 'अथ दान लीला. . . .' आदि शब्द पोथी के दाहिने पत्र पर लिखे हुए हैं। यह पत्र जिल्द में जुड़ा है। 'रानी मंगौ' के बाद में लिखी हुई गंगग्वाल कृत 'दानलीला' का एक पत्र संयोगवश उक्त पत्र के पहले आ गया था। छंद तथा विषय आदि की दृष्टि से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह पत्र उस स्थान का नहीं है। रिपोर्टर महाशय का ध्यान इस ओर नहीं गया। इसी से उन का अंतिम उद्धरण 'दानलीला' का हो गया है यद्यपि 'मंगै' से ले कर 'धारी' तक का वाक्यांश 'रानी मंगौ' का ही है। 'धारी' शब्द के स्थान पर रिपोर्ट में 'प्यारी' शब्द दिया गया है। 'दानलीला' की समाप्ति इस प्रकार होती है—

षोरि सांकरी राधा रांनी। दान चुकावत मोहन दांनी ॥
ता दिन के मिस भेटा भई। प्रगटी प्रीति परस्पर नई ॥
जो यह लीला सुनैं सुनावै। नंद कुंवर ताहि निकट षिलावै ॥
गंगग्वाल अपनौ कर लीनौं। अपनौं झुठौ मांषन दीनौं ॥
बेर बेर कह्यौ समुझाय। गंगग्वाल मेरौ जसु गाय ॥

सभा की रिपोर्ट के उद्धरण में भी इस काव्यांश के समान 'चौपई' अथवा 'चौपाई' छंद प्रयुक्त है परंतु प्रति के अशुद्ध होने के कारण उस में अंतिम पंक्तियों के तुक में गड़बड़ी हो गई है।

'रानी मंगौ' लगभग ९० पंक्तियों का एक बड़ा पद है। इस का रचयिता कोई बहुत ही उदार हृदय राधावल्लभी जान पड़ता है क्योंकि राधावल्लभी तो राधा की ही उपासना तक सीमित रहते हैं, पर यह व्यक्ति लक्ष्मी, पार्वती, ब्रह्मानी, सची, कौशिल्या, सुमित्रा तथा सीता आदि सभी देव-वधुओं से कृपा-याचना करता है। ऊपर दी हुई अंतिम पंक्तियों के

अतिरिक्त इस ग्रंथ से कुछ और अवतरण दिए जाते हैं—

मैं जुवती जाचन ब्रत लीन्हौं ।
जहि जही जौनि जांऊं तहि तहि अंक भुजा पर दीन्ही ।।
पुरिष जाति बौहौ दांन मांन दे तिन तन नैकु न हेरौं ।
बेसरि बलय महावर मंडित इन कौ अलप न फेरौं ।।
राज सिंघासन हैं रव हाथी ल्यौं नही नर कर वोट ।
अंगिया डडिया लहगा मुदरी इन कौ मेरैं कोट ।।

× × ×

बरसांनैं व्रषभांन गोप कैं कीरतिदा सुभ नारी ।
जिन कैं उदर मुकटमनि राधा सोयी बंदति चरन बिहारी ।।

× × ×

जगिपतनी ललितादिक गोपी सब की क्रिपा मनाऊं ।
रास रसिक रिनियां ह्वै इन कौ भिछिक कहांऊं ।।

× × ×

रुकमनी आदि सकल पटरांनी इहै अनुग्रह कीजै ।
जनम जनम सीता पदपंकज रति मति डिढि करि दीजै ।।

'कृष्णमंगल' (२७) नामक ग्रंथ का उल्लेख सभा की सन् १९३५-३७ की अप्रकाशित रिपोर्ट में इटावा के ब्रह्म प्रेस के अध्यक्ष पं० वेदनिधि शास्त्री के नाम से हुआ है। यह वास्तव में 'ग्रंथ' न हो कर २० पंक्तियों का एक पद मात्र है जिस का नंददास कृत होना अनिश्चित है। सभा की रिपोर्ट के अनुसार यह पद इस प्रकार है—

जनमें श्री कृष्ण मुरारि भक्ति हित कारने ।
मथुरा लियो अवतार गोकुल झूलै पालने ।।
तिथि अष्टमी बुधवार भादौं बदि की करी ।
रोहिणी नक्षत्र आधी रात जनम लियो शुभ घरी ।।

धनि देवकी वसुदेव जहाँ प्रभु अवतरे।
धन्य यशोदा बावा नन्द महा घर पग धरे॥
धन्य धन्य सुर नर मुनि सब जय जय करैं।
दुंदुभि बजत प्रकाश सुमन वर्षा करैं॥
व्रजवासी गोरस भरि कांर ल्यावहीं।
दधिकाँदौ बावा नंद सु कीच मचावहीं॥
बाजत ताल मृदंग वीन अरु बाँसुरी।
निरतत गोपी ग्वाल चरणचित चावरी॥
यशुमति चीर पहिराय नौरंग भई ग्वालिनी।
सुन्दर वदन निहारि चकृत भई भामिनी॥
श्री वलभद्र जी के वीर असुर दल खंडना।
भक्तवत्सल महाराज यादव कुल मंडना॥
शंकर धारत है ध्यान सु गोद खिलावही।
सो मुख चूमति माइ सु पलना झुलावहीं॥
श्री नन्ददास सनेह चरण चित ल्यावहीं।
हरि गुण मंगल गाय गोविंद गुण गावहीं॥

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि नंददास कृत प्रसिद्ध ३० ग्रंथों में दो[१] 'मानमंजरी नाममाला' के ही भिन्न नाम हैं, सात[२] अप्राप्य हैं, दो[३] का कवि कृत होना संदिग्ध है, एक[४] प्रधानतया कवि कृत 'दशम स्कंध'

---

[१] 'नाममंजरी'
'नामचिंतामणिमाला'
[२] 'प्रबोधचंद्रोदय नाटक'
'रासमंजरी'
'मानलीला'
'ज्ञानमंजरी'
'विज्ञानार्थप्रकाशिका'
'बाँसुरी लीला'
'अर्थचंद्रोदय'
[३] 'सुदामा चरित'
'नासिकेत पुराण'
[४] 'गोवर्द्धन लीला'

के अध्याय २४ व २५ से लिया गया है अतएव वह कवि की स्वतंत्र कृति नहीं है, तीन[१] किसी अथवा किन्हीं अन्य अप्रसिद्ध नंददास की कृतियाँ हैं, एक[२] उदयनाथ 'कवींद्र' की रचना है, दो[३] के रचयिता अज्ञात हैं तथा एक[४] कोई ग्रंथ न हो कर एक पद मात्र है। इन उन्नीस ग्रंथों को उपर्युक्त सूची से निकाल देने पर ग्यारह ग्रंथ ऐसे रह जाते हैं जिन्हें हम कवि की प्रामाणिक कृतियाँ मान सकते हैं—रूपमंजरी, बिरहमंजरी, रसमंजरी, मानमंजरी नाममाला, अनेकार्थमंजरी, स्यामसगाई, भँवरगीत, रुक्मिनी मंगल, रासपंचाध्यायी, सिद्धांत पंचाध्यायी तथा दशम स्कंध। इन ग्रंथों के अतिरिक्त मुद्रित तथा हस्तलिखित प्रतियों से नंददास की छाप वाले २८३ पद भी संगृहीत किए गए हैं। संपादन संबंधी कठिनाइयों के कारण इन में से केवल ३५ पद ही कवि की ११ कृतियों के साथ 'पदावली' शीर्षक के अंतर्गत मूल पाठ में रक्खे गए हैं। शेष पद परिशिष्ट १ (ग) में संकलित हैं।

संपादित ग्रंथों का आधार

प्रस्तुत संस्करण में उपर्युक्त प्रामाणिक ग्रंथों को संपादित कर के प्रकाशित किया जा रहा है। नीचे संपादन सामग्री का विवेचन किया गया है।

रूपमंजरी

इस ग्रंथ की पाँच प्रतियों का उपयोग हुआ है :—

१ क—यह मुद्रित प्रति ठाकुरदास सूरदास तथा तुलसीदास नरोत्तम-

---

[१] 'दानलीला'
'हितोपदेश'
'रासलीला'
[२] 'जोगलीला'
[३] 'फूलमंजरी'
'रानी मंगौ'
[४] 'कृष्णमंगल'

दास द्वारा शुद्ध कर के 'पांचे मंजुरीओ' ग्रंथ में सं० १९४५ में प्रकाशित हुई थी जिस की एक प्रति स्थानीय 'भारती भवन' पुस्तकालय में सुरक्षित है और जिस की पुस्तकालय संख्या 'उपदेश १३९' है। इस ग्रंथ में मंजरियों का क्रम इस प्रकार है—'विरहमंजरी', 'रसमंजरी', 'मानमंजरी', 'अनेकार्थ मंजरी' तथा 'रूपमंजरी'। इस क्रम तथा पाठ के संबंध में कुछ भी ज्ञात नहीं है। इस संस्करण के पाठ प्रायः अशुद्ध हैं और उन में गुजरातीपन प्रचुर मात्रा में है। हस्तलिखित प्रतियों द्वारा पुष्ट होने पर ही इस के पाठों को मूल पाठ में स्थान दिया गया है।

२ ख—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, के कार्यालय में नंददास कृत दस ग्रंथ मथुरा के पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी की हस्तलिपि में लिखे हुए सुरक्षित हैं। इन ग्रंथों के नाम इस प्रकार हैं—रासपंचाध्यायी, स्याम-सगाई, भँवरगीत, रुक्मिनीमंगल, सुदामा चरित तथा पंच-मंजरियाँ। ये ग्रंथ हस्तलिखित प्रतियों की प्रतिलिपि मात्र नहीं हैं वरन् चतुर्वेदी जी द्वारा संपादित रूप में हैं। मूल पाठ के नीचे कहीं कहीं पाठांतर भी दिए हैं किंतु जिन प्रतियों के आधार पर इन का संपादन हुआ है उन का कोई उल्लेख इस संग्रह में नहीं है।

इस संग्रह की अन्य चार मंजरियों के समान 'रूपमंजरी' की इस प्रति का पाठ भी 'क' में दी हुई मंजरी की अपेक्षा अधिक शुद्ध है। प्राप्त हस्तलिखित पोथियों से प्रायः मेल न खाने के कारण तथा संपादन की मूलाधार प्रतियों के संबंध में पूर्ण अनभिज्ञता होने के कारण इस के पाठों को मूल पाठ के रूप में नहीं ग्रहण किया जा सका है। पाठांतरों में इन का उल्लेख अवश्य कर दिया गया है।

३ ग—भरतपुर के राजकीय पुस्तकालय में सुरक्षित। इस की पुस्तकालय संख्या '२० क' है। यह ज्येष्ठ बदी ९, भृगुवार, सं० १८२० की लिखी हुई है यद्यपि देखने में आधुनिक प्रतीत होती है। इस पोथी का पाठ प्रायः अशुद्ध है।

४ घ——भरतपुर के राजकीय पुस्तकालय में सुरक्षित। पुस्तक संख्या '१५ क' है। इस जिल्द में नंददास कृत 'रस', 'रूप', तथा 'बिरह' मंजरियों के साथ सेनापति कृत 'कवित्तरत्नाकर' की पहली 'तरंग' दी हुई है जिस की पुष्पिका से विदित होता है कि यह पोथी सं० १८३२ में किसी ठाकुरदास मिश्र द्वारा लिखी गई थी।

'रसमंजरी' की प्रति के प्रारंभ के २५ पृष्ठ खंडित हैं और अवशिष्ट अंश तथा अन्य दोनों मंजरियाँ विशेष रूप से अशुद्ध हैं। अतएव कुछ चुने हुए स्थलों की परीक्षा के बाद इन्हें छोड़ दिया गया है।

५ ङ——गत वर्ष इस प्रति की तथा इस के साथ एक ही जिल्द में पाए जाने वाले नंददास के अन्य ग्रंथों की सूचना काशी के बाबू ब्रजरत्नदास जी ने "नंददास-कृत अनेकार्थमंजरी तथा नाममाला" शीर्षक लेख में प्रकाशित की थी[१]। नंददास संबंधी पोथियों में इस जिल्द का एक विशिष्ट स्थान है। इस पुस्तकाकार जिल्द की पत्र-संख्या २४८ है। इस में १६ ग्रंथ हैं——रासपंचाध्यायी, फूलमंजरी, रूपमंजरी, बिरहमंजरी, रसमंजरी, मानमंजरी, अनेकार्थमंजरी, कृष्णसिद्धांतपंचाध्यायी, मनोरथबल्लरी, नंद-लीला, श्रीराधाजू की जन्म लीला, मोतीलीला, दानलीला, विदग्धमाधव, श्री गीतगोविंद सटीक भाषा तथा रुक्मिनीमंगल। इन में से 'नंदलीला', 'श्री राधाजू की जन्म लीला' तथा 'मोतीलीला' गंगग्वाल कृत, 'दानलीला' खरगसेन कृत तथा 'विदग्धमाधव' रूपसनातन कृत हैं। 'फूलमंजरी' और 'मनोरथवल्लरी' में रचयिता का नाम नहीं दिया है। अवशिष्ट आठ ग्रंथ नंददास के हैं। इस जिल्द में चार स्थानों पर तिथियाँ दी हैं——'फूलमंजरी' के अंत में सं० १७९३, आसोज बदी ११, 'मानमंजरी' के अंत में सं० १८३५ फाल्गुन सुदी १५, 'नंदलीला' के अंत में सं० १८२९, आषाढ़ बदी ५ तथा 'विदग्धमाधव' के अंत में सं० १८२४, आसोज बदी ७ रविवार लिखा

[१] हिंदुस्तानी (अप्रैल-जून), सन् १९४१

हुआ है। इस में 'जुगल' तथा 'महात्मा हरिचंद सवाई' नामक दो लिपि-कारों का उल्लेख है किंतु हस्तलेखों से यह स्पष्ट है कि किसी तीसरे व्यक्ति ने भी इस के कुछ अंशों को लिखा था। 'विदग्धमाधव' तथा 'रुक्मिनीमंगल' की पुष्पिकाओं से यह भी ज्ञात होता है कि यह जिल्द जयपुर निवासी हरीराम जौहरी नामक किन्हीं सज्जन की थी तथा अंतिम ग्रंथ लिखे जाने के समय वे वृंदावन में थे।

इस जिल्द की 'रूपमंजरी' की प्रति से मूल पाठ निर्धारित करने में विशेष सहायता ली गई है। पाठों की शुद्धता के अतिरिक्त इस के कुछ पाठ ऐसे हैं जो अन्य पोथियों में नहीं पाए गए।

इन पोथियों के अतिरिक्त अजयगढ़ रियासत के किन्हीं पं० भगवान-दीन के नाम से एक प्रति का उल्लेख पाया जाता है[१]। उक्त सज्जन से पत्र-व्यवहार करने पर कोई उत्तर न मिला। पटियाला पब्लिक लाइब्रेरी में एक अन्य प्रति का पता चला था[२]। वहाँ के अधिकारियों ने इस प्रति को भेजा भी किंतु खेद है कि यह उस समय प्राप्त हुई जब 'रूपमंजरी' छप चुकी थी। इस प्रति की जिल्द के साथ ही 'विरहमंजरी' की भी एक प्रति है।

बिरहमंजरी

इस ग्रंथ के संपादन में छः प्रतियों का उपयोग हुआ है :—

१ क—ठाकुरदास सूरदास द्वारा 'पांचे मंजुरीओ' में प्रकाशित प्रति[३]।

२ ख—पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी द्वारा संपादित तथा नागरी प्रचा-

---

[१] खो० रि० सन् १९०६-०८, सं० ३०१ (ए)

[२] खो० रि० (पंजाब), सन् १९२२-२४, सं० ७२ (सी)

[३] दे० 'रूपमंजरी' की 'क' प्रति का परिचय

रिणी सभा में सुरक्षित[१]।

३ ग—जिल्द संख्या २९४/१४[२]। डा० भवानीशंकर याज्ञिक से प्राप्त। इस जिल्द में अन्य कवियों की सात रचनाओं के साथ नंददास की चार मंजरियाँ निम्नलिखित क्रमानुसार हैं—'मानमंजरी', 'अनेकार्थमंजरी', 'रसमंजरी', तथा 'विरहमंजरी'। इस जिल्द का अंतिम ग्रंथ मतिराम कृत 'ललितललाम' है जिस की पुष्पिका से विदित होता है कि वह भरतपुर के किन्हीं "चिरंजीव लाला बुधवसिंह जी" के पठनार्थ "जगंनाथ मिश्र" द्वारा श्रावण वदी ९, रविवार सं० १८१८ में लिखा गया था। इसी समय अथवा इस से कुछ पहले की लिखी हुई उक्त चारों मंजरियाँ मानी जा सकती हैं। ब्रज-प्रदेश में लिखी हुई होने के कारण इस प्रति के शब्दों के रूप अधिक मान्य माने गए हैं और प्रायः मूल पाठ में इन्हीं को ग्रहण किया गया है।

४ घ—जि० सं० २५४/५६। डा० भवानीशंकर याज्ञिक से प्राप्त। इस प्रति का पाठ नितांत अशुद्ध है। 'ग' से मिलते-जुलते होने के कारण ही इस के पाठों को समझा जा सका है। इस का लिपि-काल तथा लिपि-स्थान अज्ञात है।

५ ङ—जि० सं० ६४८/५६। डा० भवानीशंकर याज्ञिक से प्राप्त। इस के अंत में "१७२५ पुस सुदे" लिखा हुआ है जिस से यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि दी हुई संख्या संवत् ही की द्योतक है। पाठ की दृष्टि से यह प्रति 'ग' तथा 'घ' से साम्य रखती है।

६ च—भरतपुर के राजकीय पुस्तकालय में सुरक्षित। पुस्तकालय संख्या '७, ८ ख'। इस जिल्द की चतुर्भुजदास कृत 'मधुमालती' की पोथी

---

[१] दे० 'रूपमंजरी' की 'ख' प्रति का परिचय।

[२] बटे के नीचे के अंक बस्ता-संख्या के सूचक हैं, ऊपर के अंक पुस्तक-संख्या के हैं।

में सं० १८४८ पड़ा हुआ है। यह "राजा श्री ५ पौहौपसिंह जी चिरंजीव" पठनार्थ केशवराम द्वारा लिखी गई है। इस में ग्रंथारंभ में चार ऐसे दोहे दिए हैं जो अन्य किसी भी प्रति में नहीं पाए गए। इन्हें यथास्थान पाठांतरों में दिया गया है।

७ छ—बाबू व्रजरत्नदास के पास सुरक्षित[1]।

नागरी प्रचारिणी सभा की प्रकाशित रिपोर्टों में इस ग्रंथ की दो प्रतियों की सूचना दी गई है[2]। सन् १९२९-३१ की अप्रकाशित रिपोर्ट में भी दो प्रतियों का उल्लेख है—(१) लिपि-काल सं० १८१४, पं० श्रीराम शर्मा, पो० बटेसरा, ग्राम मई, जिला आगरा। (२) लिपि-काल सं० १८६१, पं० मवासीलाल शर्मा, अछनेरा, आगरा। पत्र-व्यवहार करने पर केवल पं० मवासीलाल शर्मा का उत्तर प्राप्त हो सका जिस से विदित हुआ कि उन के पास वह प्रति अब नहीं है।

रसमंजरी

इस ग्रंथ की पाँच प्रतियाँ उपलब्ध हुई हैं:—

१ क—'पांचो मंजुरीओ' में प्रकाशित[3]।

२ ख—इस प्रति[4] ने ग्रंथ के अंत में चार प्रकार की दूतियों का वर्णन दिया है जो अन्य प्रतियों में नहीं प्राप्त होता है।

३ ग—इस प्रति[5] ने 'मुग्धा खंडिता' के बाद में दिया हुआ नायिका-भेद छोड़ दिया है जिस का कारण स्पष्ट नहीं है।

---

[1] दे० 'रूपमंजरी' की 'ङ' प्रति का परिचय

[2] खो० रि० १९०२ ई०, सं० ७० तथा खो० रि० १९०९-११ ई०, सं०, २०८ (एफ़)

[3] दे० 'रूपमंजरी' की 'क' प्रति का परिचय

[4] दे० 'रूपमंजरी' की 'ख' प्रति का परिचय

[5] दे० 'बिरहमंजरी' की 'ग' प्रति का परिचय

४ घ—'रसमंजरी' में कुछ स्थल ऐसे हैं जो 'रूप' तथा 'बिरह' मंजरियों में भी साधारण पाठ-भेद के साथ मिलते हैं। इस प्रति[1] ने इन स्थलों को प्रायः छोड़ दिया है।

५ ङ—श्री द्वारकेश पुस्तकालय, काँकरौली, से प्राप्त। बंध-संख्या ७५ तथा पुस्तक-संख्या १४। इस में केवल दो पत्र हैं। 'रसमंजरी' के जिस थोड़े से अंश का पाठ इन पत्रों में मिलता है उस से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह प्रति अपने मूल रूप में अत्यंत उपयोगी सिद्ध होती।

एक अन्य प्रति का उल्लेख काशी के स्व० छुन्नीलाल वैद्य के नाम से सभा की खोज रिपोर्ट सन् १९०९-१२, सं० २०८ (ई) में पाया जाता है। वैद्य जी के संग्रह की समस्त पुस्तकों को देखने पर भी इस प्रति का कोई पता न चल सका।

मानमंजरी नाममाला

इस ग्रंथ की छः प्रतियों की परीक्षा की गई है:—

१ अ—'नंददास कृत अनेकार्थमंजरी तथा नाममाला' शीर्षक प्रयाग विश्वविद्यालय की 'यूनिवर्सिटी स्टडीज़' सन् १९३९ में प्रकाशित तथा श्री बलभद्रप्रसाद मिश्र, एम० ए० और श्री विश्वम्भरनाथ मेहरोत्रा, एम० ए०, द्वारा संपादित।

'नाममाला' की इस प्रति के अंतिम दोहे की संख्या २९९ है। छापे की भूल के कारण 'धर्मराज नाम' शीर्षक दोहे में दोहा-संख्या देने से रह गई है। इस भूल को सुधारने से मूल पाठ में ३०० दोहे हो जाते हैं। परिशिष्ट में १६ दोहे और पाए जाते हैं जो या तो "केवल किसी एक ही प्रति में मिल सके हैं" अथवा "बिलकुल अस्पष्ट एवं अशुद्ध हैं।" इस संस्करण के दोहे वर्णानुक्रम के अनुसार रक्खे गए हैं।

---

[1] दे० 'रूपमंजरी' की 'ङ' प्रति का परिचय

२ आ—यह प्रति सं० १८१८ से कुछ पहले की लिखी हुई मानी जा सकती है[१]। इस के अंतिम दोहे की संख्या २६६ है। इस में 'मुक्ता' तथा 'ढाक' शीर्षक दोहों की संख्या ४० तथा २३० दी है जो अशुद्ध है और क्रम से ३९ तथा २२९ होनी चाहिए। साथ ही 'दिसा' (दो० सं० १८४), 'समूह' (दो० सं० १९५) तथा 'केतकी' (दो० सं० २५१) नामक तीन दोहे क्रमशः दोहा संख्या २१५, २०२ तथा २५८ पर दोहरा दिए गए हैं। इन भूलों को सुधारने से इस प्रति में २६१ दोहे रह जाते हैं। इस का पाठ साधारणतया शुद्ध है और अन्य प्राचीन पोथियों से साम्य रखता है।

३ इ—जि० सं० ७६६/१४। डा० भवानीशंकर याज्ञिक से प्राप्त। इस जिल्द के प्रथम पत्र की संख्या ३५ है जिस से यही अनुमान किया जा सकता है कि इस प्रति के पहले कोई अन्य ग्रंथ लिखा रहा होगा। ऐसा जान पड़ता है कि इस जिल्द के प्रारंभ तथा अंत की दाहिनी और बाईं ओर के कुछ पत्रे समान रूप से निकाल लिए गए हैं। पत्र ३५ से ७१ तक 'नाममाला' दी हुई है और तत्पश्चात् 'अनेकार्थध्वनिमंजरी' नामक संस्कृत का ग्रंथ दिया है जिस की पुष्पिका इस प्रकार है—"इति श्रीकाश्मीराम्नाये महा क्षपणक कवि विरचिते अनेकार्थध्वनिमंजर्यां पदाधिकारः समाप्तः॥ शुभमस्तु॥ संवत् १७२५ वर्षे पौष वदि १० शुक्रे लिषतं लाभपुरे शुभमस्तु॥"

यह प्रति आधुनिक पुस्तकाकार रूप में लिखी है। कागज़, स्याही तथा लिखावट के आधार पर इसे लगभग पौने तीन सौ वर्ष प्राचीन मानना आश्चर्य का विषय होगा।

इस प्रति में 'शर' तथा 'बंधूक' नाम के दो दोहे क्रमशः दोहा-संख्या ७१-१६४, २३१-२६७ पर समान रूप से मिलते हैं। इस प्रकार इस के अंतिम दोहे की संख्या २८५ न हो कर २८३ होनी चाहिए। इस प्रति का

---

[१] दे० 'बिरहमंजरी' की 'ग' प्रति का परिचय

पाठ प्रायः अशुद्ध है। बिना अन्य पोथियों का सहारा लिए इस के अनेक दोहों का अर्थ स्पष्ट नहीं होता। तथापि यह मानना पड़ेगा कि 'मानमंजरी' की समस्त ज्ञात प्रतियों में यह प्राचीनतम है।

४ उ—जि० सं० १७५/१४। डा० भवानीशंकर याज्ञिक से प्राप्त। यह पोथी क्वार बदी ५, बुधवार, सं० १८७६ में किन्हीं वैष्णव सीताराम के लिए लिखी गई थी। दोहा-संख्या की अशुद्धियों को सुधारने से यह पता चलता है कि अंतिम दोहे की संख्या २६८ न हो कर २६२ होनी चाहिए। पाठांतरों की दृष्टि से यह प्रति 'आ' से विशेष साम्य रखती है।

५ ऊ—श्री द्वारकेश पुस्तकालय, काँकरौली, से प्राप्त। यह पोथी सं० १६१६ में किसी मोहनलाल द्वारा लिखी गई थी। आधुनिक होते हुए भी इस के अधिकांश दोहे प्राचीन प्रतियों से मेल खाते हैं।

६ ए—जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है इस प्रति[1] के अंत में इस का लिपि-काल फाल्गुन सुदी १५, सं० १८३५ दिया आ है और यह किसी 'जुगल' नामक व्यक्ति द्वारा लिखी गई थी। इस प्रति में ३२५ दोहे हैं। दोहा ३२० तथा ३२१ में एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण सूचना दी गई है—

दो सत पैंसठ ऊपरें, दोहा श्रीनंददास।
रामहरी बाकी किये, कोष धनंजय तास॥
संतन की बानी बड़ी, रामहरी मतिमंद।
अपने समझन कों लिखे, बन ते बिच दिए संद॥

जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं जिस जिल्द में यह प्रति पाई जाती है वह जयपुर निवासी रामहरी अथवा हरीराम जौहरी के निज की थी। रामहरी जी ने 'मानमंजरी' की अपनी इस प्रति में स्वरचित ६० दोहों को पृथक् रूप से न रख कर उन्हें यथास्थान नंददास के दोहों के साथ मिला कर लिखवाया है और इस बात का कोई निर्देश नहीं किया कि उन के बनाए

---

[1] दे० 'रूपमंजरी' की 'ङ' प्रति का परिचय

हुए दोहे कौन हैं। इस स्थिति में मूल तथा प्रक्षिप्त दोहों को अलग करने के लिए यह आवश्यक है कि इस के दोहों का मिलान प्राचीनतर प्रतियों से किया जाय। इस संबंध में हमारे सामने यह कठिनाई उपस्थित होती है कि प्रक्षिप्त दोहों के रचना-काल का हमें कोई ज्ञान नहीं। प्रति के अंत में दिया हुआ संवत् इस प्रति की प्रतिलिपि का है। उस से प्रक्षिप्त अंशों के रचना-काल पर प्रकाश नहीं पड़ता है।

नागरी प्रचारिणी सभा की सन् १९२९-३१ की अप्रकाशित खोज रिपोर्ट से रामहरी द्वारा रचित छः ग्रंथों की सूचना प्राप्त हुई—१. बोध बावनी, २. बोध विलास, ३. लघुनामावली, ४. लघुशब्दावली, ५. रस-पचीसी तथा ६. सतहंसी। इन में से ३ व ४ को छोड़ कर अन्य सभी ग्रंथ मौलिक रचनाएँ न हो कर अन्य कवियों की कृतियों के संग्रह मात्र हैं तथा उन की सहायता से प्रस्तुत विषय के संबंध में केवल इस बात का उल्लेख किया जा सकता है कि नंददास की कृतियों से रामहरी विशेष रूप से परिचित थे जैसा कि 'रसपचीसी' के इस अंतिम दोहे से विदित होता है—

> **बृंदाबन जमुना पुलिन, राधाकृष्ण बिहार।**
> **नंददास सत कबिन की, बानी करै अहार॥**

'लघुनामावली' तथा 'लघुशब्दावली' में 'मानमंजरी' तथा 'अनेकार्थ-मंजरी' की भाँति पर्यायवाची तथा अनेकार्थी शब्दों पर दोहे मिलते हैं। 'लघुनामावली' के मंगलाचरण में रामहरी ने नंददास की 'नाममाला' का स्मरण भी किया है—

> **नंददास नामावली अमरकोश के नाम।**
> **इन तें जे वितरक्त औ लिषे हेत घनस्याम॥**

इस ग्रंथ का रचना-काल इस प्रकार दिया है—

> **अब्द षंड जुग चारि तिस श्रावण शुक्ला तीज।**
> **रामहरी ब्रजबास करि सदा कृष्ण रंग भीज॥**

'चारि तिस' से ३४ का अर्थ लगाया जा सकता है। 'अब्द' का 'वर्ष', 'पंड' का '६', 'जुग' का '२' अर्थ करने से १८ की संख्या प्राप्त होती है और फलतः ग्रंथ का रचना-काल सं० १८३४ ठहरता है। 'लघुशब्दावली' में दिए हुए रचना-काल से इस कथन की पुष्टि भी होती है—

बेद राम बसु कलानिधि, संबत मास जु क्वार।
शुक्ल पक्ष पून्यौं सरद, बृंदाबन गुरवार॥

इस में वेद '४', राम '३', वसु '८' तथा कलानिधि '१' के अंकों को वामगति से पढ़ने से १८३४ निकल आता है। वृंदाबन में कालीदह पर निवास करने वाले बाबा बंसीदास की कुटी पर जाने पर लेखक को यह पता चला कि ऊपर दिए हुए छः ग्रंथ कुछ अन्य कवियों की रचनाओं के साथ जिस जिल्द में मिलते हैं उस की 'लघुशब्दावली' की प्रति के अंत में यह गद्यांश भी दिया हुआ है—"फागुन सुदी १५ संवत् १८३५ **हरीरांम जोंहरी नें लिषी** अति प्रीति सों।" सभा के रिपोर्टर ने न जाने क्यों इस आवश्यक उद्धरण को अपनी रिपोर्ट में स्थान नहीं दिया। यह तिथि वही है जो 'मानमंजरी' की 'ए' प्रति के अंत में दी हुई है और इस से इस बात का पता चलता है कि 'लघुनामावली' तथा 'लघुशब्दावली' जिन की रचना रामहरी ने सं० १८३४ में की थी उन्हीं की प्रतिलिपि उन्हों ने स्वयं फाल्गुन सुदी १५, १८३५ में की और इसी समय उन्हों ने 'मानमंजरी' की 'ए' प्रति में नंददास कृत दोहों के साथ अपने दोहों को मिलवाया था।

'लघुनामावली' तथा 'मानमंजरी' की इस प्रति के समान दोहों के संबंध में आगे विचार किया जायगा।

प्रस्तुत संस्करण के परिशिष्ट ३ में 'मानमंजरी' में 'क' से ले कर 'छ' तक के सात नामों द्वारा सूचित पाठांतर पाए जाते हैं। ये नाम 'मानमंजरी' की उन हस्तलिखित प्रतियों के हैं जिन का उपयोग 'अ' के संपादन में किया गया था और जो 'अ' के मूल पाठ के नीचे दिए हुए पाठांतरों से लिए गए हैं। इन में से 'ख' का लिपि-काल सं० १९०५, 'घ' का सं० १९०६, 'ङ'

का सं० १८७५, 'च' का सं० १६६६ है[१]। 'क' के विषय में कुछ ज्ञात नहीं है। 'ग' तथा 'छ' प्रतियों को डा० धीरेन्द्र वर्मा ने 'अ' के संपादन के लिए जोधपुर के राजकीय पुस्तकालय में सुरक्षित दो हस्तलिखित प्रतियों की प्रतिलिपि करवा कर मँगवाया था। लेखक को उन्हीं से ये दोनों प्रतिलिपियाँ प्राप्त हुई हैं। 'ग' में 'मानमंजरी' का वह रूप मिलता है जो उसे शुद्ध कर के किसी गंगादास नामक व्यक्ति ने दिया था। गंगादास ने सं० १८८० में 'मानमंजरी' के दोहों को दस वर्गों में बाँटा था—'देवता वर्ग' 'नमस्कारादि वर्ग', 'राजा और मनुष्य वर्ग', 'धातु और शृंगार वर्ग', 'पक्षी वर्ग', 'जल वर्ग', 'पर्वत और पशु वर्ग', 'पृथ्वी वर्ग', 'वन वर्ग', तथा 'अति आदि फुटकर वर्ग'। इस प्रति में कवि कृत दोहों में परिवर्तन करने के अतिरिक्त बीच बीच में चौपाइयाँ भी जोड़ दी गई हैं। इस की छंद-संख्या ४०० है। 'छ' प्रतिलिपि आधुनिक होते हुए भी प्राचीन शैली में बड़े ही सुंदर अक्षरों में लिखी गई है। इस से मूल प्रति की तिथि आदि का कोई परिचय नहीं मिलता। इस में 'मानमंजरी' में २६६ तथा 'अनेकार्थ-मंजरी में ११८ दोहे हैं।

'मानमंजरी' की चार मुद्रित प्रतियों की भी परीक्षा की गई है। लीथो की छपी एक प्रति काशी के आर्यभाषा पुस्तकालय में सुरक्षित है। मुखपृष्ठ न होने के कारण इस के मुद्रक तथा प्रकाशक का नाम नहीं ज्ञात होता है। इस प्रति की 'नाममाला' में २६७ तथा 'अनेकार्थ' में १५२ अंतिम दोहा-संख्या है। स्थानीय 'भारती भवन' में 'अनेकार्थ और नाममाला' नाम से दो मुद्रित प्रतियाँ मिलती हैं जिन की पुस्तकालय संख्या 'उपदेश ३' है। इन में से एक काशी के हरिप्रकाश यंत्रालय में अमीरसिंह द्वारा मुद्रित हुई थी। इस में 'नाममाला' तथा 'अनेकार्थ' के अंतिम दोहों की संख्या क्रमशः २७८

---

[१] **'एलाहाबाद यूनिवर्सिटी स्टडीज़', १६३६ ई०, 'अनेकार्थमंजरी तथा नाममाला', भूमिका, पृ० (ञ)**

व १५८ है। इस प्रति में मुद्रण-संवत् नहीं है। हरिप्रकाश यंत्रालय से मुद्रित एक दूसरा संस्करण आर्यभाषा पुस्तकालय, काशी, में सुरक्षित है। उस में मुद्रण-संवत् १९३३ दिया है। तीसरी प्रति सं० १९२२ में काशी के लाइट प्रेस द्वारा मुद्रित हुई। इस में 'नाममाला' तथा 'अनेकार्थ' की अंतिम दोहा-संख्या २६७ तथा १५५ है। अंतिम प्रति 'पांचे मंजुरीओ' में प्राप्त होती है और उस में 'नाममाला' तथा 'अनेकार्थ' में ३०१ तथा ११६ दोहे हैं।

इन प्रतियों की अंतिम दोहा-संख्या प्रायः शुद्ध नहीं है। विस्तार-भय से इन की अशुद्धियों का उल्लेख नहीं किया गया है। उपर्युक्त प्रतियों के अतिरिक्त सभा की खोज रिपोर्टों में इस ग्रंथ की कुछ अन्य प्रतियों के विवरण दिए हैं जिन में से यहाँ तीन प्राचीनतम प्रतियों का ही उल्लेख किया जाता है। प्रकाशित रिपोर्टों में खो० रि० सन् १९१७-१९, संख्या ११९ (ए) पर सं० १७८२ की लिखी एक प्रति की सूचना दी गई है जिस की दोहा-संख्या २६१ है। सन् १९२३-२५ तथा १९२९-३१ की अप्रकाशित रिपोर्टों में क्रमशः सं० १८१२ तथा १८१४ की दो प्रतियों के उल्लेख हैं। पहली प्रति के विवरण में अन्वेषक ने प्रति में पाए जाने वाले विभिन्न नामों की एक सूची दी है जिस के प्रथम १२ नाम 'अनेकार्थ' के हैं, अवशिष्ट 'मानमंजरी' के हैं। कदाचित् इन्हीं पहले के एक दर्जन नामों को देख कर उन्हों ने 'अनेकार्थ' का शीर्षक दे कर इस प्रति का विवरण दिया है। सं० १८१४ की प्रति के अंत के उद्धरण से यह ज्ञात होता है कि उस में २७१ दोहे हैं।

'मानमंजरी' की पाठ संबंधी इस सामग्री से परिचय प्राप्त कर लेने के बाद यह प्रश्न उठता है कि उल्लिखित प्रतियों में कौन ऐसी प्रति अथवा प्रतियाँ हैं जो कवि की मूल कृति के निकटतम पहुँचती हैं। स्वभावतः ज्ञात प्राचीनतम प्रति होने के कारण हमारा ध्यान सर्वप्रथम 'इ' की ओर जाता है जो सं० १७२५ में लिखी गई थी और जिस में २८३ दोहे हैं। इस

के चार नामों के दोहे विशेष कठिनाई उपस्थित करते हैं। इस में 'सीघ्र' नाम पर दो दोहे मिलते हैं—

> **आसु तरस सहसा झटत तुरत तूर्न द्रुत होइ।**
> **क्षर सावर तुर क्षप्र अरत छुरय रंहस सोइ[1]॥**
> **बाज बेग जब रभस रभ अवलंबत उताल।**
> **चपल चली चातुर अली आतुर लखि नंदलाल॥**

'आ' में 'सीघ्र' पर केवल एक दोहा है—

> **आसु झटत द्रुत तूर्न लघु छिप्र सत्तुर उत्ताल।**
> **तुरत चली चातुर अली, आतुर दिखि नंदलाल॥**

साधारणतया 'इ' के दोनों दोहों का मूल रूप 'आ' के दोहे में लक्षित होता जान पड़ता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ अधिक पर्यायवाची नामों का समावेश करने के लिए 'आ' के दोहार्द्ध में आवश्यक परिवर्तन कर के तथा दो अन्य दोहार्द्ध गढ़ कर दो दोहों की रचना कर ली गई है। इस के विपरीत यह भी कल्पना की जा सकती है कि 'इ' के प्रथम दोहे के दोहार्द्ध में आवश्यक परिवर्तन कर के तथा उस के दूसरे दोहार्द्ध तथा दूसरे दोहे के प्रथमार्द्ध को छोड़ कर 'आ' के दोहे की रचना कर ली गई होगी। किंतु इस प्रकार की कल्पना नितांत असाधारण होगी। प्राचीन साहित्य में दूसरे की रचना को परिवर्द्धित करने के अनेक उदाहरण मिलते हैं, उसे काट-छाँट कर छोटा करने के उदाहरण यदि उपलब्ध भी हो सकें तो वे अपवाद स्वरूप ही माने जाएँगे। 'घर' नाम पर दोनों प्रतियों के दोहों का एक अन्य उदाहरण भी ध्यान देने योग्य है—

---

[1] **यह अस्पष्ट पंक्ति 'अ' में इस प्रकार है—**

> **छिप्र सु सत्वर तुच्छ लघु राज्ञा रंभा सोइ**

इ— सदन सकेत निकेत ग्रह गेह वेस्म संकेत।
लगन धिब्न पद[1] आसपद आलय निलय निकेत ॥
मंदिर मंडप आयतन वसत निकाय स्थान।
भवन भूप व्रषभांन के गई सहचरी जान ॥

आ—सदन सकेत निकेत ग्रह आलय निलय यस्थान।
भवन भूप व्रषभांन कें गई सहचरी जान ॥

'आ' के दोहे को परिवर्द्धित करने की प्रवृत्ति इस उदाहरण में कुछ अधिक स्पष्टता से परिलक्षित होती है। इसी प्रकार 'कंचन' तथा 'समूह' नामों के दोहों के उदाहरण भी विचारणीय हैं। प्राप्त हस्तलिखित प्रतियों में केवल 'ऊ' ने जो सं० १८७६ की है इन नामों में से दो में 'इ' से मिलता जुलता पाठ दिया है। 'घर' तथा 'समूह' नाम पर उस ने भी 'आ', 'ऊ' और 'ए' के समान एक ही दोहा दिया है।

अन्य पोथियों से तुलना करने पर 'इ' में दूसरे प्रकार की असमानताएँ भी मिलती हैं। 'रोमराजी', 'अरुन', 'कुंद' 'लघुभ्राता' और 'मनोहर' के नामों पर इस में एक एक दोहा मिलता है। दूसरी पोथियों में ये नाम ही नहीं हैं। साथ ही 'ग्रीव' 'भृकुटी', 'अंधकार', 'अर्द्धरात्रि', 'राजबल्ली' तथा 'बिबाह', इन छः शीर्षकों को इस ने बिलकुल छोड़ दिया है। उपलब्ध सभी पोथियों में ये दिए गए हैं। इन्हें छोड़ देने से संदर्भ में कुछ अपूर्णता भी आ गई है। इस प्रति का 'पान' शीर्षक दोहा अन्य प्रतियों से बिलकुल भिन्न है।

इन असमानताओं के रहते हुए केवल प्राचीनतम प्रति होने के कारण इसे असंदिग्ध मान लेना युक्तिसंगत नहीं है जब तक इस का पक्ष समर्थन करने वाली कुछ और समसामयिक अथवा इस से भी अधिक प्राचीन प्रतियाँ न मिल जायँ।

---

[1] अयन धिस्न पुनि (अ)

प्रस्तुत विषय का अध्ययन 'ए' प्रति के आधार पर भी किया जा सकता है। 'ए' का लिपि-काल सं० १८३५ है। इस के उन दो दोहों को ऊपर उद्धृत किया जा चुका है जिन में रामहरी इस बात का उल्लेख करते हैं कि 'ए' में नंददास कृत २६५ दोहे हैं। उन दो दोहों के साथ ही 'ए' के अंत में तीन दोहे और ऐसे हैं जिन्हें रामहरी कृत मान लेने में कठिनाई नहीं हो सकती है। वे ग्रंथ-माहात्म्य के रूप में जोड़े गए हैं—

मांन बिना नहि नेह कछु नेह बिना नहि मान।
लोंन संग लागै रुचिर जे हैं रस मिष्टान॥
जैतौ नेह तित मान वन नितहि मेह विन भांन।
रसना रस छुवत कठिन मान सरकरा जान॥
बिन जाने घनस्याम के आवागमन न जाइ।
तातें हरि गुरु वैष्नव ब्रज निसि दिन चित लाइ॥

'ए' के ३२५ दोहों से इन पाँच दोहों को पृथक् करने पर मिलवाँ दोहों की संख्या ३२० रह जाती है। 'लघुनामावली' में १०२ दोहे हैं और वे रामहरी के निज के हैं। नंददास के दोहों से वे पृथक् हैं—

शिर धरि श्रीराधारमन पद भट्ट गोपाल सहाइ।
कोश धनंजय आदि औ कछुक नाम कहाइ॥
नंददास नामावली अमरकोश के नाम।
इन तें जे वितरक्त औ लिषे हेत घनस्याम॥

'लघुनामावली' के ४८ दोहे लगभग उसी रूप में 'ए' में पाए जाते हैं। रामहरी के स्वरचित इन ४८ दोहों को 'ए' के उक्त ३२० दोहों से बाद देने पर 'ए' में २७२ दोहे नंददास कृत माने जाने चाहिए। यदि रामहरी की दी हुई २६५ की संख्या में किसी प्रकार की भूल नहीं है तो 'ए' के अवशिष्ट दोहों में सात और दोहे रामहरी कृत समझे जाएँगे। 'लघुनामावली' तथा 'ए' के आधार पर उन सात दोहों का पता लगाना संभव नहीं है। 'लघुनामावली' के दोहों की परीक्षा करते समय एक आश्चर्यजनक बात

ज्ञात हुई जिस का उल्लेख कर देना आवश्यक है। 'लघुनामावली' में 'जन्म' का दोहा इस प्रकार दिया है—

भव उदगम उद्भव जनन जनि उत्पति सब ग्रांम ।
जन्म सफल जग जब भलो भजि मनमोहन स्यांम ।।

इसी दोहे का थोड़ा परिवर्तित रूप 'ए' में भी है—

भव उद्भव उद्गम जनन जन उतपति हे भाम ।
जन्म सफल तब ही जबै भजियै सुंदर स्याम ।।

लगभग इसी रूप में 'इ' ने भी यह दोहा दिया है—

भव उदभव उदगम जनन जन उतपति हे भाम ।
जन्म सुफल तब ही जबहि भजीए सुंदर स्याम ।।

'जन्म' शब्द के बाद ही 'रस' नाम का यह दोहा 'लघुनामावली' में दिया है—

सारध मधुरँग पुष्परस कुसुमसार मकरंद ।
रस के जांननहार इक भजि लै रे नंदनंद ।।

यह दोहा भी साधारण पाठ-भेद के साथ 'इ' में मिलता है ।

'इ' के पाठ के प्रामाणिक होने के विषय में दो मत हो सकते हैं परंतु उस का लिपि-काल सं० १७२५ न मानने का हमारे पास कोई प्रमाण नहीं है । इस स्थिति में यही कहना पड़ेगा कि 'लघुनामावली' के रचना-काल के १०९ वर्ष पहले जिन दो दोहों का अस्तित्व मिलता है वे रामहरी कृत नहीं हो सकते । यदि 'इ' से प्राचीन अथवा उस की समसामयिक पोथियों में भी ये दोहे प्राप्त हों तभी यह कहा जा सकेगा कि नंददास कृत इन दोहों को रामहरी ने अपने निजी ग्रंथ में चला दिया होगा अन्यथा यह कल्पना करनी पड़ेगी कि किसी दूसरे की कृति से उन्हों ने इन्हें ले लिया होगा । जिस व्यक्ति ने नंददास के प्रायः सभी दोहों को अपने उल्लेख द्वारा पृथक् रक्खा उस ने उन के अथवा किसी दूसरे के केवल दो दोहों के संबंध में उस नीति का क्यों अनुसरण नहीं किया यह आश्चर्य का विषय अवश्य है ।

'आ' प्रति के पाठ की परीक्षा करने पर यह संतोष होता है कि उस में कोई विशेष आपत्तिजनक बात नहीं मिलती है। जैसा कहा जा चुका है 'इ' के परिवर्द्धित रूप वाले दोहे उस में नहीं हैं। 'आ' के 'ग्रीव', 'भृकुटी', 'अंधकार', 'अर्द्धरात्रि', 'राजबल्ली', तथा 'विवाह' शीर्षक जिन छः दोहों को 'इ' ने नहीं दिया वे 'उ', 'ऊ' और 'ए' में पाए जाने के अतिरिक्त अप्रकाशित खोज रिपोर्ट १९२३-२५ में सं० १८१२ की प्रति की नामों की सूची में भी पाए जाते हैं, केवल 'भृकुटी' नाम उस में नहीं है। 'आ' के २६१ दोहे, 'लघुनामावली' के दोहों को बाद देने पर, 'ए' के अवशिष्ट २७२ दोहों में समान रूप से पाए जाते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि अधिकांश प्रस्तुत सामग्री 'आ' के विरुद्ध न जा कर उस के पक्ष का समर्थन करती है।

'मानमंजरी' के पाठ के संबंध में एक धारणा प्रायः रूढ़ि सी हो चली है और वह यह है कि इस में कवि कृत फुटकर दोहे संगृहीत हैं। कवि के सामने कोई निश्चित क्रम अथवा सिद्धांत न था। इसी भ्रमात्मक दृष्टिकोण से प्रभावित हो कर गंगादास नामक किसी व्यक्ति ने समस्त दोहों को दस वर्गों में बाँट दिया था तथा 'अ' में सारे दोहों को अकारादि-क्रम से रख दिया गया है। 'मानमंजरी' के प्रस्तुत संस्करण के दोहों का क्रम 'आ', 'उ' आदि सभी पोथियों से साधारण अंतरों के साथ मेल खाता है। सच तो यह है कि केवल क्रम की दृष्टि से पोथियों अथवा पहले की छपी प्रतियों में कोई महत्त्वपूर्ण अंतर नहीं पाए जाते। मंगलाचरण के बाद के दोहे में कवि ने उल्लेख किया है कि हमारे दोहों के अर्थ मानवती राधा पर घटित होते हैं—

गुंथनि नाना नाम की, 'अमरकोस' के भाइ।
मानवती के मान पर, मिलैं अर्थ सब आइ॥

इस के बाद मान-माहात्म्य का स्मरण कर 'सखी' नाम का दोहा इस प्रकार दिया गया है—

बयसा, सैरिन्धी, सखी, हितू सहचरी आहि ।
अली कुँवर नँदलाल की, चली मनावन ताहि ॥

सखी आतुर कृष्ण की दशा के कारण सरस्वती का आराधन करती हुई शीघ्रतापूर्वक वृषभान के घर पहुँचती है जिस के पास की रौप्य गोशालाओं, उज्वल अट्टालिकाओं तथा वैभव की वस्तुओं का वर्णन करते हुए कवि इस बात का उल्लेख करता है कि सिद्धांजन लगाए रहने के कारण सखी अलक्षित रूप से घर के भीतर प्रवेश करती है—

कज्जल, गज पाटल, मसी, नाग, दीपसुत सोइ ।
लुकअंजन दृग दै चली, ताहि न देखै कोइ ॥

मानिनी राधा के एकांतावास में पहुँचने पर कुछ क्षणों तक सखी उस की छवि देखती है और पुनः जल द्वारा आँखों का लोकांजन धो कर प्रकट हो जाती है—

पानी नैंन पखारि कैं, अंजन हाँतौ कीय ।
प्रगट भई पिय की सखी, निपट ससंकित हीय ॥

प्रच्छन्न रूप से पिय की सखी को अपने पास आया देख कर राधा अत्यंत क्रुद्ध हुई—

पीता, गौरी, कांचनी, रजनी, पिंडा नाम ।
हरदी चूनौ परत ज्यौं, यौं तिंहि दिखि भई भाम ॥

क्रोध के कुछ शांत होने पर सखी उसे मनाने के प्रयत्न में संलग्न होती है और अंततोगत्वा अपने कार्य में सफल हो कर राधा-कृष्ण का मिलन करा देती है—

गो, हृषीक, खं, करन, गुन, इंद्री ज्यौं असु पाइ ।
यौं राधा-माधव मिले, परम प्रेम-रस पाइ ॥

कथा के इस हलके आवरण में दोहों का साधारण उलट फेर संभव माना जा सकता है किंतु 'इंद्री' शीर्षक दोहा अकारादि-क्रम के अनुसार

'सखी' नाम के पहले रक्खे जाने से संदर्भ में कैसी गड़बड़ी पैदा कर देता है यह सहज ही में देखा जा सकता है।

'मानमंजरी' के सभी दोहों में दो बातें लक्षित होती हैं। उन के कुछ अंश में पर्यायवाचियों की सूची दी गई है तथा कुछ में उपर्युक्त कथाक्रम का निर्वाह थोड़े बहुत रूप में किया गया है। जिन नामों की सूची लंबी थी उन में एक अथवा दो दोहे अधिक बढ़ा कर संदर्भ संबंधी सामग्री जोड़ दी गई है। ऐसा कोई नाम ग्रंथ में न मिलेगा जिस में केवल एक प्रकार की ही सामग्री हो। इस बात को ध्यान में रख कर 'आ' के दोहों को जब हम देखते हैं तो दो नामों के संबंध में कठिनाई उपस्थित होती है। 'हस्ती' नाम पर 'आ' में यह दोहा है—

हस्ती दंती द्विरद धुव पद्मी बारन ब्याल।
कुंजर इभु कुंभी करी तंबेरम सुंडाल॥

इस दोहे में केवल पर्यायवाची शब्द ही हैं। इस के साथ संदर्भ से संबंधित एक दूसरा दोहा 'अ' ने दिया है—

सिंधुर अनगय नाग हरि गज सामज मातंग।
इत गयंद घूमत खरे रंजित नाना रंग॥

यह दोहा 'इ', 'उ' आदि सभी पोथियों में है और जैसा अभी कहा गया है जिस प्रणाली का कवि ने सभी दोहों में अनुसरण किया है उस से मेल भी खाता है।

'पाप' नाम पर भी 'आ' में केवल एक दोहा है—

पाप महाबन दवन दव जाकौ रंचक नाम।
तासौं तू कपटी कहै तोहि कहा कहौं भाम॥

इस दोहे में कथा वाला भाग तो मिलता है किंतु पर्यायवाची शब्दों की सूची नहीं मिलती। दूसरी प्रतियों में इस दोहे के पहले इस प्रकार का दोहा उपलब्ध है—

ऐन बृजिन दुकृत दुरित अघ मलीन मसि पंक।
किल्वष कल्मष कलुष पुनि कस्मल समल कलंक॥

'हस्ती' तथा 'पाप' नाम के इन दो दोहों को कवि कृत मान लेना उचित जान पड़ता है। 'भय' नाम का एक तीसरा दोहा 'आ' में न पाए जाने पर भी मूल पाठ में सम्मिलित कर लिया गया है। संदर्भ की दृष्टि से विशेष आकर्षक होने के अतिरिक्त कुछ प्रतियों ने इसे दिया भी है।

इस प्रकार 'मानमंजरी' के मूल पाठ में २६४ दोहे रक्खे गए हैं[1]। परिशिष्ट १ (क) में 'अ' के आधार पर इस ग्रंथ के ३४ संदिग्ध दोहे संगृहीत हैं।

---

[1] प्रस्तुत संस्करण के प्रेस जाते समय 'मानमंजरी' की सं० १७५८ की एक प्रति की सूचना डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय से प्राप्त हुई। यह प्रति स्थानीय "म्युनिसिपल म्यूजियम" में सुरक्षित है। इस की साधारण परीक्षा करने से विदित हुआ कि इस में भी 'इ' प्रति के 'सीघ्र', 'घर', 'कंचन', तथा 'समूह' नाम के परिवर्द्धित रूप वाले दोहे नहीं हैं। 'इ' के नए शीर्षकों में 'अरुन' तथा 'लघुभ्राता' के दोहे इस प्रति में हैं। 'रस' नाम का दोहा जिसे रामहरी ने स्वरचित 'लघुनामावली' में रक्खा है वह 'इ' की भाँति इस प्रति में भी प्राप्त है यद्यपि यहाँ वह कुछ अशुद्ध रूप में है। प्रति के अंत में 'माला' शीर्षक दोहे के बाद "अथ प्रभु के नाम" लिख कर कृष्ण के विभिन्न नामों तथा उन की महत्ता का वर्णन करने वाली लगभग ३० चौपाइयाँ दी हैं जिन के अंत में नंददास की छाप भी पड़ी है। यह काव्यांश कवि कृत नहीं प्रतीत होता है।

स्थानीय हिंदी साहित्य सम्मेलन के संग्रह में भी 'मानमंजरी' की एक प्रति प्राप्त है जो देखने में अत्यंत प्राचीन और जीर्ण है। पुष्पिका के स्थान पर प्रति खंडित है। 'इ' के संबंध में ऊपर जो आपत्तियाँ की गई हैं वे इस प्रति पर नहीं लागू होतीं। प्रस्तुत संस्करण से इस प्रति में कुछ दोहे अधिक अवश्य हैं।

खेद है इन दोनों प्रतियों का समुचित उपयोग इस संस्करण में नहीं किया जा सका।

'इ' प्रति ने ४, ५, तथा ६ संख्यक दोहों को छोड़ कर अवशिष्ट सभी दोहे दिए हैं। 'उ' ने दोहा १, ७, २७, २८, २६, ३०, ३१, 'ऊ' ने दोहा ४, ५, २२, २३ तथा 'ए' ने दोहा १, २, ७, १०, ११, १३, १४, १५, १८, २२, २३, ३४ दे कर अवशिष्ट दोहे छोड़ दिए हैं। ३४ संदिग्ध दोहों के अतिरिक्त परिशिष्ट २ (क) में इस ग्रंथ के २२ प्रक्षिप्त दोहे भी संकलित हैं और उन का पाठ भी 'अ' के आधार पर ही है। ये दोहे 'मानमंजरी' की आधारभूत किसी भी हस्तलिखित प्रति में नहीं मिले फलतः इन के कवि कृत होने की संभावना नहीं है।

इस ग्रंथ के कई नाम प्रतियों में पाए जाते हैं—'मानमंजरी', 'नाममंजरी', 'नाममाला', 'नामचिंतामणिमाला', 'मानमंजरी नाममाला'। इन में से अंतिम नाम अधिक सार्थक प्रतीत होता है क्योंकि राधा का मान तथा पर्यायवाची शब्दों की माला, दोनों ही ग्रंथ के मुख्य वर्ण्य विषय हैं।

अनेकार्थमंजरी

इस ग्रंथ की चार प्रतियों की परीक्षा की गई है:—

१ अ—यह पोथी सं० १८१८ से कुछ पहले लिखी गई थी[1]। इस में ११७ दोहे हैं।

२ आ—यह प्रति 'मानमंजरी' की 'ए' प्रति के साथ पाई जाती है अतएव इस का लिपि-काल भी सं० १८३५ के आसपास माना जा सकता है[2]। इस में १७५ दोहे हैं। 'मानमंजरी' की 'ए' प्रति के समान ही इस के अंत में भी रामहरी जौहरी ने यह उल्लेख किया है कि मूल 'अनेकार्थ' में १२० दोहे थे। बाक़ी दोहे अपनी रुचि के अनुसार उन्हों ने स्थान स्थान

---

[1] दे० 'बिरहमंजरी' की 'ग' प्रति का परिचय

[2] दे० 'रूपमंजरी' की 'ङ' प्रति का परिचय

पर बढ़ा दिए हैं। अपनी इस ढिठाई की क्षमायाचना भी उन्हों ने नंददास से की है—

बीस ऊपरें एक सौ नंददास जू कीन।
और दोहरा रामहरि कीने हैं जु नवीन॥
श्रीमान श्री नंददास जू रसमद आनँद कंद।
रामहरी की ढीठता छमियो हो जगबंद॥
कोष मेदनी आदि औ कछू सब्द अधिकाइ।
मन रुचि लखि बिच संधि दिय बाँचौ जा चित भाइ॥

इन दीन दोहों को पृथक् कर देने पर इस प्रति में १७२ दोहे रह जाते हैं। रामहरी के अनुसार इन में से १२० दोहे नंददास के तथा अवशिष्ट उन के बनाए हैं।

३ इ—प्रयाग विश्वविद्यालय की 'यूनिवर्सिटी स्टडीज़' में प्रकाशित[१]। इस प्रति में १५८ दोहे हैं जिन में से अंतिम ४ परिशिष्ट रूप में दिए गए हैं। 'मानमंजरी' के दोहों की भाँति इस के दोहों को भी अकारादि-क्रम से रक्खा गया है।

४ उ—इस पोथी का लिपि-काल सं० १९१९ है[२]। इस में ११५ दोहे हैं। इस के दोहों को 'अ' के दोहों से मिलान करने पर यह विदित होता है कि इस ने 'अ' में पाए जाने वाले 'षं' 'नग' तथा 'हरिनी' शीर्षक तीन दोहे और ग्रंथ-माहात्म्य का एक दोहा छोड़ दिया है किंतु इस में 'वर्ण' तथा 'निशा अजा' शीर्षक दो दोहे 'अ' से अधिक हैं।

इन चार पोथियों के साथ ही 'इ' की आधारभूत आठ हस्तलिखित प्रतियों के पाठों पर भी विचार किया गया है। इन में से 'क' को "मालेवार" देश के किसी वासुदेव बाजपेयी ने सं० १८९४ में लिखा था। 'ख' को कालका

---

[१] दे० 'मानमंजरी' की 'अ' प्रति का परिचय
[२] दे० 'मानमंजरी' की 'ऊ' प्रति का परिचय

दास नामक व्यक्ति ने सं० १६०३ में फ़ारसी अक्षरों में लिखा था, 'ग' का लिपि-काल अज्ञात है, 'घ' सं० १८७७ में लिखी गई, 'ङ' "अत्यंत भ्रष्ट" नागरी लिपि में लिखी है, 'च' सं० १६२३ की लिखी हुई है तथा 'छ' टीकमगढ़ के लाला जानकीदास द्वारा सं० १६२१ में लिखी गई थी[१]। अंतिम प्रति 'ज' 'मानमंजरी' की 'छ' प्रति के साथ पाई जाती है[२] और इस के अंतिम दोहे की संख्या ११७ है। इस प्रति ने 'अ' के 'अर्जुन' तथा 'रसना' शीर्षक दो दोहे छोड़ दिए हैं और 'बरन' तथा 'निशा अजा' शीर्षक दो अन्य दोहे दिए हैं।

'मानमंजरी नाममाला' की चार मुद्रित प्रतियों के परिचय के साथ ही 'अनेकार्थ' के भी संस्करणों का उल्लेख किया जा चुका है। इन में से अधिकांश प्रतियों ने १२०वें दोहे के लगभग छाप वाला दोहा दे कर अवशिष्ट दोहे बाद में दिए हैं जिस से यह सहज ही में अनुमान लगाया जा सकता है कि बाद के दोहे कवि कृत नहीं हैं। इन प्रतियों को प्राचीन हस्तलिखित पोथियों से मिलाने पर यह भी ज्ञात होता है कि इन में छाप वाले दोहे के पहले भी प्रक्षिप्त दोहे हैं। 'पांचे मंजुरीओ' की 'अनेकार्थ' की प्रति में केवल ११६ दोहे ही हैं किंतु उस के कुछ दोहे मान्य पोथियों में नहीं हैं।

सभा की प्रकाशित तथा अप्रकाशित रिपोर्टों में 'अनेकार्थ' की अनेक प्रतियों के विवरण मिलते हैं। प्राचीनता की दृष्टि से तीन प्रतियों का उल्लेख किया जा सकता है। अप्रकाशित खो० रि० सन् १६२६-२८ में सं० १८२७ तथा सं० १७७६ की दो प्रतियों का परिचय पाया जाता है। पहली प्रति के आदि-अंत के उद्धरणों के साथ ही ग्रंथ के विभिन्न शीर्षकों की एक सूची भी अन्वेषक ने दी है। दूसरी ति 'अनेकार्थ' की ज्ञात प्राचीनतम प्रति है और खानीपुर, बक्शी का तालाब, लखनऊ, के ठा० रणधीर

---

[१] दे० 'एलाहाबाद यूनिवर्सिटी स्टडीज़', सन् १६३६, "अनेकार्थमंजरी तथा नाममाला" की भूमिका, पृ० (ज)।

[२] दे० 'मानमंजरी' की 'छ' प्रति का परिचय

सिंह के पास उस का विद्यमान होना बतलाया गया है। किंतु ठा० रणधीर ने अपने पत्रोत्तर में लेखक को यह लिखा है कि उन के पास कोई प्रति नहीं है। रिपोर्ट में दिए हुए उद्धरणों से ज्ञात हुआ कि उस के अंतिम दोहे की संख्या ११६ है। वह दोहा इस प्रकार है—

भक्त नाम हरि को जपे निसु दिन और न ध्यान।
जाको पद भगवान को मिलि हितु का बिधि मान ॥

यह दोहा अन्य किसी प्रति में नहीं है। इस के पहले ग्रंथ-माहात्म्य तथा छाप का दोहा है। अवतरणों के अवशिष्ट दोहे अन्य प्रतियों से मेल खाते हैं। यदि इस दोहे को छोड़ दिया जाय तो इस प्रति में ११८ दोहे रह जाते हैं। सन् १९२९-३१ की अप्रकाशित रिपोर्ट में सं० १८१४ की एक प्रति का निर्देश है। इस में अंतिम दोहे की संख्या ११९ है। आदि अंत के अवतरण 'अ', 'आ' तथा 'उ' के दोहों के समान ही हैं।

'अनेकार्थ' की एक अन्य प्रति काशी विश्वविद्यालय के विद्यार्थी श्री महावीर सिंह गहलौत द्वारा लेखक को प्राप्त हुई है। इस प्रति के पहले के तीन पत्र खंडित हैं। अंतिम दोहे की संख्या ११९ है जो अशुद्ध है। इसे ११८ होना चाहिए। आधुनिक होते हुए भी इस प्रति में क्षेपक नहीं है। इस के पृष्ठों पर सुंदर सुनहलेदार चौकोर हाशियों के भीतर दोहे लिखे गए हैं। यह प्रति श्री महावीर सिंह के पितृव्य प्रसिद्ध इतिहासकार श्री जगदीश सिंह गहलौत के संग्रह की है।

'अनेकार्थ' में नंददास कृत कितने दोहे थे इस विषय पर 'आ' प्रति के परिचय में रामहरी के तीन दोहे ऊपर उद्धृत किए जा चुके हैं और हम ने देखा है कि उस के १७२ दोहों में से १२० नंददास के तथा अवशिष्ट रामहरी के हैं। 'अनेकार्थ' की शैली पर सं० १८३४ में लिखे गए रामहरी के निजी ग्रंथ 'लघुशब्दावली' का उल्लेख किया जा चुका है। इस ग्रंथ में १०२ दोहे हैं। इन १०२ दोहों को 'आ' के १७२ दोहों से मिलाने पर ज्ञात होता है कि 'लघुशब्दावली' के ५२ दोहे 'आ' में मिला कर रक्खे गए

हैं। 'आ' से इन ५२ दोहों को निकाल देने पर उस में १२० दोहे बच जाते हैं और इस प्रकार रामहरी का कथन बिलकुल ठीक उतरता है।

'आ' के अवशिष्ट १२० दोहों में 'बरन', 'निसा अजा' तथा 'सिंह' शीर्षक तीन दोहे ही ऐसे हैं जो सं० १८१८ की लिखी 'अ' प्रति में नहीं हैं, शेष ११७ दोहे साधारण पाठांतरों के साथ एक से ही हैं। सं० १८२७ की लिखी प्रति में पाए जाने वाले विभिन्न शीर्षकों की सूची सभा के अन्वेषक ने दी है जैसा कि पहले लिखा जा चुका है। इस सूची में 'बरन' तथा 'निसा अजा' शीर्षक दिए हुए हैं, केवल 'सिंह' शीर्षक नहीं पाया जाता है। 'उ' में भी 'सिंह' को छोड़ कर शेष दोनों नाम पाए जाते हैं। इस प्रकार 'आ' के १२० दोहों में निम्नलिखित दोहे को छोड़ कर शेष ११९ दोहे नंददास कृत माने जा सकते हैं—

सिंह सूर बर रास इक बहुरि सिंघ कों सिंघ।
सिंघ पौरि में दैत्य हत सिंह नाद नरसिंह॥

'मानमंजरी' के समान 'अनेकार्थमंजरी' में किसी प्रकार की कथा का निर्वाह नहीं है। यह अवश्य है कि अनेकार्थी शब्दों को देते हुए कवि ने भगवद्भजन की नीति का बराबर पालन किया है—

गो इंद्री, दिव, बाक, जल, स्वर्ग, बज्र, खग, छंद।
गो धर, गो तरु, गो किरन, गो-पालक गोबिंद॥

विभिन्न नामों के दोहों के क्रम में कोई विशेष सिद्धांत न होते हुए भी 'अ', 'आ' तथा अन्य प्रतियों में दोहों की परंपरा लगभग मिलती जुलती है। प्रस्तुत संस्करण में इस क्रम से कोई भिन्नता नहीं है।

परिशिष्ट २ (ख) में 'अनेकार्थमंजरी' के ३८ प्रक्षिप्त दोहे 'इ' प्रति के आधार पर उद्धृत किए गए हैं[1]। ये दोहे प्रस्तुत अध्ययन की किसी

---

[1] परिशिष्ट २ (ख), पृ० ४६४ पर भूल से इन्हें " 'अ' प्रति से उद्धृत" कहा गया है।

भी हस्तलिखित प्रति में नहीं हैं।

स्यामसगाई

इस ग्रंथ की ग्यारह प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं, जिन में 'ग' से 'झ' तक की सात प्रतियाँ डा० भवानीशंकर याज्ञिक से प्राप्त हुई हैं—

१ अ—दिसंबर सन् १९३१ के 'विशाल भारत' से प्राप्त। संपादक के अनुसार यह प्रति उन्हें स्व० रत्नाकर जी से प्राप्त हुई थी।

२ क—आर्यभाषा पुस्तकालय, काशी, में सुरक्षित। पुस्तक-संख्या ६। इस पोथी का लिपि-काल सं० १८७१ है।

३ ख—इस प्रति[1] का पाठ 'अ' से मिलता-जुलता है।

४ ग—जि० सं० ७००/१४ 'ए'। लिपि-काल सं० १८८८ है। प्रति खंडित है।

५ घ—जि० सं० ७००/१४ 'बी'। इस प्रति का लिपि-काल सं० १८८८ के लगभग है।

६ ङ—जि० सं० १७९/२१। लिपि-काल सं० १८९० है। प्रति खंडित है।

७ च—जि० सं० ६३/१३। इस प्रति के छंदों के प्रारंभ में लिपिकार ने "तौ जी" तथा कहीं कहीं "अरी" भी जोड़ दिया है जिस से यह अनुमान किया जा सकता है कि इस ग्रंथ के छंदों को साधारण ग्रामगीतों के रूप में, कदाचित् विवाहादि अवसरों पर, गाया जाता था।

८ छ—जि० सं० २८/१४। यह प्रति किसी परमसुख मिश्र द्वारा सं० १९१० में लिखी गई थी।

९ ज—जि० सं० ७६४/१४ 'ए'। 'च' तथा 'छ' प्रतियों के समान इस का अंतिम छंद दोहा-रोला में न हो कर चौपई छंद में है। इस में एक उल्लेख-

---

[1] दे० रूपमंजरी की 'ख' प्रति का परिचय

नीय बात यह है कि छाप के स्थान पर नंददास का नाम न हो कर किसी 'तारपान' का नाम दिया है। यह छाप इस ग्रंथ में कैसे आ गई इस विषय में हमें कुछ भी ज्ञात नहीं है।

१० झ—जि० सं० ७६४/१४ 'बी'। यह प्रति खंडित है।

११ ञ—बंध-संख्या २४, पुस्तक-संख्या १। श्री द्वारकेश पुस्तकालय, काँकरौली, से प्राप्त। इस प्रति का लिपि-काल सं० १९१७ है।

संख्या में अधिक होते हुए भी पाठ के विचार से उपर्युक्त कोई भी प्रति विशेष मान्य नहीं है। खो० रि० सन् १९०६-०८, संख्या २०० (ई) तथा खो० रि० १९१७-१९, संख्या ११९ (सी) पर क्रमशः बिजावर राज्य पुस्तकालय तथा श्री देवकीनंदनाचार्य पुस्तकालय, कामवन, के नाम से इस ग्रंथ की दो प्रतियों के उल्लेख हैं। "स्याम-सगाई और रुकमिनी-मंगल" के नाम से अग्रवाल प्रेस, प्रयाग, द्वारा सं० १९९० में प्रकाशित ग्रंथ में 'स्यामसगाई' प्रथम बार पुस्तकाकार रूप में मुद्रित हुई थी।

भँवरगीत

इस ग्रंथ की चौदह प्रतियों की परीक्षा की गई है। 'क' से 'झ' तक की नौ प्रतियाँ तथा 'ड' प्रति डा० भवानीशंकर याज्ञिक से प्राप्त हुई है—

१ क—जि० सं० १९९/५९। इस प्रति में 'जनमुकुंद' की छाप है।

२ ख—जि० सं० ७००/१४। यह प्रति सं० १८८८ की है। लिपि-कार की असावधानी के कारण अंतिम छंद में छाप वाली पंक्ति लिखने से रह गई है किंतु पुष्पिका में इसे 'जनमुकुंद' विरचित कहा गया है।

३ ग—जि० सं० ६८/१३। इस प्रति में कुछ छंदों का क्रम मुद्रित प्रतियों से थोड़ा भिन्न है परंतु उस से ग्रंथ के स्वरूप में कोई उल्लेखयोग्य परिवर्तन नहीं होता है।

४ घ—जि० सं० २८/१४। इस प्रति में 'भँवरगीत' के प्रचलित पाठों से कुछ भिन्नता है किंतु प्रति अशुद्ध है।

५ ङ—जि० सं० १६७/५६। इस प्रति में तिथि इस प्रकार दी है—"श्रावण कृष्नः ५ वार॰रविवार संवत १८॰९॰"—इस से यह निश्चित नहीं हो पाता कि लिपि-कार का अभिप्राय सं० १८०९ से है अथवा १८९० से। 'वार' शब्द के बाद दिए हुए निरर्थक बिंदु को ध्यान में रखते हुए कदाचित् इसे १८०९ पढ़ना ठीक होगा। इस प्रति में 'जनमुकुंद' की छाप है।

६ च—जि० सं० १६५/५६। इस प्रति का पाठ अशुद्ध है।

७ छ—जि० सं० ३३५/५६। इस प्रति का लिपि-काल सं० १८५७ है। यह आदि से खंडित और अशुद्ध है। इस में 'जनमुकुंद' की छाप है।

८ ज—जि० सं० ८००/५६। यह प्रति प्राचीन जान पड़ती है।

९ झ—जि० सं० ५५९/५६। यह प्रति अंत से खंडित है।

१० ट—काशी नागरी प्रचारिणी सभा के कार्यालय में सुरक्षित[1]।

११ ठ—श्री विश्वंभरनाथ मेहरोत्रा द्वारा संपादित तथा प्रयाग के लाला रामनारायणलाल द्वारा प्रकाशित (सन् १९३२)।

१२ ड—जि० सं० १८४/३३। इस प्रति में केवल ४६ छंद हैं। यह अंत से खंडित है।

१३-१४ ढ, ण—भरतपुर राज्य पुस्तकालय में सुरक्षित। पुस्तक संख्या '१७७ क' तथा '१८५ क'। इन दोनों प्रतियों में 'जनमुकुंद' की छाप है। ग्रंथ के कुछ उलझन वाले स्थलों पर ही इन के पाठ का मिलान किया गया है।

नागरी प्रचारिणी सभा की रिपोर्ट सन् १९२०-२२, संख्या ११३ (एफ़) पर 'भँवरगीत' की एक आधुनिक पोथी की सूचना दी है जिस में 'जनमुकुंद' की छाप है। सन् १९२९-३१ तथा सन् १९३८-४० की अ-प्रकाशित रिपोर्टों में लाला सूरजपति, पो० कचौरा, ज़िला आगरा तथा पं० विद्याराम शर्मा, पो० परतापनेर, ज़िला इटावा, के पते से इस ग्रंथ की

---

[1] दे० 'रूपमंजरी' की 'ख' प्रति का परिचय

दो अन्य प्रतियों की सूचना प्राप्त होती है। सभा की रिपोर्ट के उद्धरण के अनुसार पहली प्रति 'भँवरगीत' की मुद्रित प्रतियों से भिन्न ज्ञात होती है। कचौरा घाट जाने पर लाला सूरजपति का कोई पता न चल सका।

'भँवरगीत' की बहुत सी प्रतियों में 'जनमुकुंद' की छाप भी मिलती है। प्राप्त सामग्री से इस बात का निराकरण नहीं होता कि यह नंददास का ही उपनाम था। 'मिश्रबंधुविनोद' में 'जनमुकुंद' के नाम से 'ध्रुवगीता' नामक एक अन्य ग्रंथ का उल्लेख हुआ है[1]।

रुक्मिनी मंगल

इस ग्रंथ की चार प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं—

१ क—जि० सं० १८०/५६। डा० भवानीशंकर याज्ञिक से प्राप्त। इस प्रति में १३१ रोले हैं। इस का लिपि-काल अज्ञात है।

२ ख—'विशाल भारत', जनवरी, १९२९ में प्रकाशित। संपादक के अनुसार यह प्रति उन्हें स्व० रत्नाकर जी से प्राप्त हुई थी और इस के लिपि-कार पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी हैं। इस में भी १३१ रोले हैं।

३ ग—इस प्रति का लिपि-काल सं० १८३५ के लगभग माना जा सकता है[2]। इस में 'रुक्मिनी मंगल' के प्रस्तुत संस्करण के दो प्रारंभिक रोले तथा रोला ५० व १२९ नहीं हैं।

४ घ—बंध-संख्या ८, पुस्तक-संख्या १। श्री द्वारकेश पुस्तकालय, काँकरौली, से प्राप्त। यह प्रति सं० १८९१ की है। इस के बीच के कुछ पत्र खंडित हैं जिस से इस की छंद-संख्या नहीं ज्ञात होती है। इस प्रति के साधारणतया अशुद्ध होने पर भी कुछ स्थलों पर इस से विशेष सहायता मिली है।

---

[1] दे० द्वितीय संस्करण, भाग २, पृ० ४२१

[2] दे० 'रूपमंजरी' की 'ङ' प्रति का परिचय

खो० रि० सन् १६१२-१४, संख्या १२० में एक प्रति की सूचना मिलती है। अप्रकाशित खो० रि० सन् १६२६-३१ में भी होलीपुरा, ज़िला आगरा, के किन्हीं श्री विशेश्वरदयाल के नाम से एक प्रति उल्लिखित है जो कैथी लिपि में लिखी है।

इस ग्रंथ के एक प्रकाशित संस्करण का निर्देश किया जा चुका है[1]।

रासपंचाध्यायी

इस ग्रंथ की चौदह प्रतियों का उपयोग हुआ है। निम्नलिखित प्रथम छः प्रतियाँ ('क' से 'च' तक) डाक्टर भवानीशंकर याज्ञिक द्वारा प्राप्त हुई हैं—

१ क—जि० सं० ५७/५६। इस प्रति में लिपि-काल नहीं दिया है किंतु प्रति विशेष प्राचीन जान पड़ती है। अंतिम रोले की संख्या २१० है जो अशुद्ध है। इसे २१२ होना चाहिए। इस प्रति में प्रयुक्त भाषा के रूपों से यह अनुमान होता है कि इस का लिपि-कार कोई ब्रज-भाषी व्यक्ति ही रहा होगा।

२ ख—जि० सं० १०१/५६। इस प्रति में कई स्थलों पर रोलाओं की संख्या देने में भूल हो गई है। इस के अंतिम रोले की संख्या २६६ होनी चाहिए। यह प्रति असावधानी से किसी साधारण पढ़े-लिखे व्यक्ति द्वारा लिखी गई है फलतः इस में अशुद्धियाँ पर्याप्त मात्रा में पाई जाती हैं। पुष्पिका में संवत् आदि की सूचना नहीं है।

३ ग—जि० सं० १६६/५६। इस प्रति के छंदों के अंत में संख्याएँ नहीं दी हैं। इस में ३०० रोले हैं। पाठ की दृष्टि से यह प्रति 'ख' के निकट पड़ती है। इस का लिपि-काल अज्ञात है।

४ घ—जि० सं० १७०/५६। अनुमान से यह प्रति भी 'क' के समान

---

[1] दे० 'स्यामसगाई' की प्रतियों का परिचय

ही प्राचीन ज्ञात होती है। दोहा-संख्या की अशुद्धियों को ठीक करने पर अंतिम रोले की संख्या २९९ ठहरती है। पंचम अध्याय में रोला २३३ के बाद लगभग अध्याय के अंत तक के छंदों के क्रम में इस प्रति ने बहुत उलट-फेर कर दिया है। इस परिवर्तन का कारण स्पष्ट नहीं है।

५ ङ—जि० सं० १७२/५६। इस प्रति की पुष्पिका एक छप्पय में दी हुई है। यह प्रति भरतपुर के राजा बलमत्त सिंह (बलवंत सिंह?) के समय में 'दीर्घ' (डीग) नगर में सं० १८९७ में लिखी गई। लिपि-कार कोई कवि है जिस का उपनाम 'राम' है। इस में ३४७ रोले हैं। अन्य किसी प्रति में इतने अधिक छंद नहीं हैं। 'घ' की भाँति इस में भी पाँचवें अध्याय के रोलों के क्रम में उलट-फेर मिलता है किंतु 'ङ' में दिया हुआ क्रम 'घ' के क्रम से अधिक साम्य नहीं रखता है।

६ च—जि० सं० १७३/५६। यह पोथी आदि तथा अंत से खंडित है। पाठ की दृष्टि से यह 'क' से बहुत मिलती-जुलती है।

७ छ—पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी द्वारा संपादित[१]। इस प्रति में ३३९ रोले हैं। 'ङ' की भाँति इस की छंद-संख्या भी अधिक है परंतु इस के कुछ छंद 'ङ' में पाए जाने वाले छंदों से भिन्न हैं।

८ ज—यह प्रति स्व० बाबू बालमुकुंद गुप्त द्वारा संपादित तथा कलकत्ते के भारतमित्र प्रेस द्वारा सन् १९०४ ई० में मुद्रित हुई। भूमिका में गुप्त जी ने इस बात का निर्देश किया है कि उन्हों ने मथुरा की सं० १९४५ की लीथो की छपी एक प्रति तथा सं० १८९४ की छपी एक दूसरी प्रति की सहायता से इस प्रति का संपादन किया था। इस में ३२६ छंद हैं—३२२ रोले तथा ४ दोहे। 'रासपंचाध्यायी' के कुछ आधुनिक संस्करण इस प्रति के पाठ से बहुत प्रभावित हुए हैं।

९ झ—आर्यभाषा पुस्तकालय, काशी, में सुरक्षित। पुस्तक-संख्या

---

[१] दे० 'रूपमंजरी' की 'ख' प्रति का परिचय

६। इस प्रति में केवल २११ रोले हैं और इस का लिपि-काल सं० १८७१ के लगभग है। पाठ की दृष्टि से यह प्रति 'क' से साम्य रखती है।

१० ञ—पं० उदयनारायण तिवारी, एम० ए०, साहित्यरत्न, के संपादकत्व में लक्ष्मी-आर्ट-प्रेस, दारागञ्ज, प्रयाग, द्वारा सन् १९३६ में प्रकाशित। प्रकाशक के अनुसार 'पंचाध्यायी' का संपादन पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी द्वारा हुआ है। इस प्रति में ३१३ रोले हैं। इस की पाद-टिप्पणियों में लगभग एक दर्जन प्रतियों के नामों से पाठांतर दिए हैं किंतु प्रतियों के विवरण नहीं दिए गए हैं।

११ ट—भरतपुर राज्य पुस्तकालय में सुरक्षित। पुस्तक-संख्या '१३७ क' है। इस प्रति के तीन पत्र खंडित हैं। यह सं० १८४५ की लिखी हुई है और इस के अंतिम रोले की संख्या २११ है। इस का पाठ 'क' प्रति से अधिक सादृश्य रखता है अतएव इस प्रति के कुछ चुने हुए स्थलों की ही परीक्षा की गई है।

१२ ठ—जिस जिल्द में यह प्रति पाई जाती है उस में इस प्रति के बाद ही 'फूलमंजरी' नामक ग्रंथ लिखा है जिस का लिपि-काल सं० १७९३ है[1]। इस से यह अनुमान किया जा सकता है कि इस का लिपि-काल भी सं० १७९३ के आसपास ही होगा। इस में २०९ रोले हैं जो प्रायः 'क' तथा 'झ' के रोलों से मेल खाते हैं।

१३ ड—यह प्रति बाबू मुरारीलाल केडिया, नंदनसाहु का मुहल्ला, काशी, के 'श्री रामरत्न पुस्तकभवन' में सुरक्षित नंददास कृत 'दशम स्कंध' के साथ पाई जाती है[2]। 'दशम स्कंध' के २८ अध्यायों के बाद लिपि-कार ने 'रासपंचाध्यायी' लिखना प्रारंभ किया है और प्रथम अध्याय की समाप्ति

---

[1] दे० 'रूपमंजरी' की 'ङ' प्रति का परिचय

[2] लेखक को इस प्रति की सूचना ना० प्र० स०, काशी, के अन्वेषक श्री महेशचंद्र गर्ग, एम० ए० द्वारा प्राप्त हुई है।

प्रति उस समय प्राप्त हुई जब कि 'पंचाध्यायी' का प्रस्तुत संस्करण छप रहा था। इस प्रति की जिल्द में नंददास की 'अध्यात्मपंचाध्यायी' तथा कुछ अन्य कवियों के ग्रंथ भी हैं। 'पंचाध्यायी' की प्रति में २०८ रोले हैं और इस का पाठ प्रायः 'क' प्रति से मिलता हुआ है। यह विक्रम की २०वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध की लिखी हुई है।

छंद-संख्या की दृष्टि से 'रासपंचाध्यायी' की उक्त प्रतियों को हम तीन वर्गों में विभक्त कर सकते हैं। 'क', 'च', 'झ', 'ट', 'ठ' तथा 'ड' प्रतियों का एक वर्ग बनाया जा सकता है जिस में 'ठ' की छंद-संख्या २०९ कम से कम है तथा 'ड' की संख्या २१५ अधिक से अधिक है। 'ख', 'ग' तथा 'घ' की छंद-संख्या ३०० के आसपास की है अतएव उन का एक पृथक् वर्ग बनाना उचित होगा। इसी प्रकार 'ङ', 'छ', 'ज' तथा 'ञ' प्रतियों का एक तीसरा वर्ग भी हो सकता है जिस में 'ञ' की छंद-संख्या ३१३ कम से कम तथा 'ङ' की संख्या ३४७ अधिक से अधिक है। प्रत्येक वर्ग की केवल अधिकतम संख्या की तुलना करने पर पहले तथा दूसरे वर्ग में ८५ छंदों का, दूसरे तथा तीसरे में ४७ का और पहले व तीसरे में १३२ का अंतर ज्ञात होता है। कवि की कृति की यह अनेकरूपता ही इस बात की द्योतक है कि वह अपने मूल रूप में नहीं है। प्राचीन प्रतियाँ पहले वर्ग में हैं तथा संख्या में भी अधिक हैं। अतः इस धारणा को बल भी मिलता है। सैकड़ों वर्षों तक प्रतिलिपि-क्रिया होते रहने से असावधान लिपि-कारों की प्रतियों में कुछ छंदों के भूल से छूट जाने की कल्पना युक्तियुक्त है, किंतु लगभग ३५० छंदों के ग्रंथ में १३२ छंदों के छूट जाने का अनुमान लगाना क्लिष्ट कल्पना करना ही कहा जायगा।

उपर्युक्त वर्गों में तृतीय वर्ग का पक्ष सब से निर्बल है। दिए हुए विवरण से विदित होता है कि इस वर्ग की तीन प्रतियाँ—'छ', 'ज', 'ञ', आधुनिक समय के संपादित संस्करण हैं। 'छ' तथा 'ञ' के आधार के संबंध में हमें कुछ भी ज्ञात नहीं है। 'ज' प्रति सं० १८९४ तथा सं० १९४५

की दो प्रतियों पर अवलंबित है। 'ङ' सं० १८९७ की एक हस्तलिखित प्रति है। अतएव प्राचीनता के विचार से कोई प्रति महत्त्वपूर्ण नहीं है। इस वर्ग की प्रतियों का पाठ भी संतोषजनक नहीं है। जैसा कि नीचे दिए हुए उदाहरण से ज्ञात होगा कहीं कहीं इन के छंद संदर्भ के विचार से विशेष आपत्तिजनक प्रतीत होते हैं।

कृष्ण के अंतर्ध्यान होने के बाद 'पंचाध्यायी' के चतुर्थ अध्याय में पुनः प्रकट होने पर गोपियाँ मन में मुसकराती हुई कृष्ण से यह प्रश्न पूछती हैं—कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो अपनी सेवा करने वाले का ध्यान रखते हैं, दूसरे अपनी सेवा अथवा अपने से स्नेह न करने वाले का भी ध्यान रखते हैं किंतु हे कृष्ण! उन व्यक्तियों को हम किस नाम से पुकारें जो अपनी सेवा करने वाले तथा न करने वाले दोनों ही प्रकार के मनुष्यों की उपेक्षा करते हैं[1]। इस प्रश्न के उत्तर में 'ज' प्रति ने 'पंचाध्यायी' की पंक्ति ४३६ के बाद तीन छंद दिए हैं जो स्पष्ट ही 'भागवत' के अनुकरण पर हैं। तीसरे वर्ग की 'ग' प्रति ने भी इन्हें दिया है। वे छंद इस प्रकार हैं—

जे भजते को भजै आपने स्वार्थ के हित।
जैसे पसू परस्पर चाटत सुख मानत चित॥
जे अनभजते भजें वहै धर्मी सुखकारी।
जैसे मात पिता जु करे सुत की रखवारी॥
जे दोउन को तजै तिन्हैं ज्ञानी जानों तिय।
आप्त-काम अथवा गुरु द्रोही अकृतज्ञ हिय॥

'भागवत' में इस उत्तर के साथ दो और श्लोक जुड़े हुए हैं—

"किंतु हे सखियो मैं यद्यपि भजनेवालोंको भी नहीं भजता, तथापि इन चारों में नहीं हूँ, वरन् महादयालु और परम सुहृत् हूँ। मैं उनको नहीं भजता इसलिये वे निरन्तर सब समय मेरा ही ध्यान किया करते

---

[1] **'रासपंचाध्यायी', पंक्ति ४३३-३४**

हैं. . . .तुम्हारा ध्यान मेरी ओर अटल हो जाय, केवल इसीलिये मैं छिप गया था[१]. . . . .।

इन श्लोकों के भावार्थ पर विचार करने से विदित होता है कि कृष्ण के उत्तर का यह महत्त्वपूर्ण अंश है क्योंकि गोपियों ने अपने प्रश्न द्वारा यह ध्वनि निकालने की चेष्टा की थी कि भजने तथा न भजने वाले दोनों प्रकार के व्यक्तियों की उपेक्षा करने वाले कृष्ण भी 'कृतघ्न' तथा 'गुरुद्रोही' आदि हैं। इस आक्षेप को लक्ष्य कर के ही कृष्ण इन श्लोकों में यह कहते हैं कि उन की उपेक्षा के पीछे कुछ रहस्य है। उस के मूल में कृतघ्नता नहीं वरन् प्रेम को प्रदीप्त करने की भावना है। इस आवश्यक अंश को छोड़ देने से गोपियों का प्रश्न वाच्यार्थ प्रधान हो जाता है परंतु वस्तुस्थिति यह है कि उन के प्रश्न का चमत्कार उस के व्यंग्यार्थ में ही सन्निहित है। अत-एव यदि ये रोले कवि कृत होते और उस ने 'भागवत' के उत्तर को अपने ग्रंथ में स्थान दिया होता तो वह कृष्ण की इस सफ़ाई को छोड़ कर उन के उत्तर को अधूरा न रखता।

इस संबंध की एक और बात भी द्रष्टव्य है। उपर्युक्त तीन रोलों के बाद ही अन्य प्रतियों के समान 'ज' में भी यह छंद है—

तब बोले ब्रजराज कुँवर हौं ऋणी तुम्हारे।
अपने मन तें दूरि करौ किन दोष हमारे॥

दिए हुए संदर्भ में 'तब बोले ब्रजराज कुँवर. . . .' का क्या अभिप्राय हो सकता है? इन शब्दों से तो यह प्रकट होता है कि अभी तक कृष्ण मौन थे और कोई दूसरा व्यक्ति बोल रहा था!

'ञ' प्रति को छोड़ कर तृतीय वर्ग की प्रत्येक प्रति में ऐसे छंद हैं जो उस वर्ग की ही अन्य प्रतियों में नहीं हैं। 'ङ' प्रति इस विषय में सब से आगे बढ़ी हुई है। 'पंचाध्यायी' की पंक्ति १७६ के बाद के दो रोलों के

---

[१] **'श्रीमद्भागवतभाषा', निर्णयसागर प्रेस, बंबई, पृ० ९१२**

स्थान पर उस ने दस अतिरिक्त छंद दिए हैं[1]। 'भागवत' के उक्त स्थल के श्लोकों[2] से इन छंदों की तुलना करने पर विदित होता है कि ये छंद भी उन्हीं श्लोकों की कमी की पूर्ति करने के विचार से जोड़े गए हैं। क्षेपककारों के लिए कवि की कृति में मूल रचना के भावों का समावेश कर देने का प्रलोभन स्वाभाविक ही है। तीसरे वर्ग की प्रतियों में यह प्रवृत्ति बहुत अधिक है।

दूसरे वर्ग की 'ख', 'ग' तथा 'घ' प्रतियों के संबंध में सब से प्रमुख कठिनाई यह है कि इन का लिपि-काल अज्ञात है। पाठ की दृष्टि से ये पोथियाँ भी बहुत संतोषजनक नहीं हैं। 'रासपंचाध्यायी' के प्रथम अध्याय से एक प्रसंग विचारार्थ लिया जा सकता है। विश्व-विमोहक मुरली-नाद को सुन कर जब गोपियाँ कृष्ण के पास आईं और उन्हें चारों ओर से घेर कर खड़ी हो गईं तो कृष्ण ने यह कहा—

उज्वल रस कौ यह सुभाउ, बंकहि छबि पावै।
बंक कहनि, अरु चहनि बंक, अति रसहि बढ़ावै[3]॥

इस छंद के बाद के पाँच रोले इस प्रकार हैं—

ये सब नवलकिसोरी, गोरी, भरी प्रेम-रस।
तातैं समुझि न परी, करी पिय परम प्रेम-बस॥
ज्यौं नाइक सब गुननिधि, अरु सुंदर जु महा है।
सब गुन माटी होइ, नैंक जौ बंक न चाहै॥
कैउक बचन कहे नरम, कहे कैऊ रस बर कर।
कैउक कहे त्रिय-धरम, भरम-भेदक सुंदर बर॥

---

[1] दे० परिशिष्ट, पृ० ३५१–५२, दोहा २२–३१

[2] 'श्रीमद्भागवत' १०–२९–१९

[3] 'रासपंचाध्यायी', पंक्ति १७३–१७४

लाल रसाल के व्यंग बचन सुनि थकित भई यौं ।
बाल-मृगिनि की पाँति, सघन बन भूलि परी ज्यौं ॥
मंद परस्पर हसीं, लसीं तिरछी अँखियन अस ।
रूप-उदधि इतराति, रँगीली मीन-पाँति जस ॥

उपर्युक्त छः छंदों में दूसरा, तीसरा तथा चौथा छंद प्रधानतया 'ख' प्रति के आधार पर मूल पाठ में रक्खा गया है। इन तीन छंदों के पूर्वापर का संबंध बहुत समीचीन नहीं है। तीसरे छंद का विचार न तो दूसरे से संबद्ध है और न चौथे से। उस में यह कहा गया है कि सर्व-गुण-संपन्न तथा स्वरूपवान नायक के समस्त गुण व्यर्थ हो जाते हैं यदि उस में वचन-वक्रता तथा कुटिल कटाक्ष फेंकने की किंचित क्षमता भी नहीं है। यह कथन प्रथम छंद की व्याख्या-स्वरूप है क्योंकि उसी छंद की दूसरी पंक्ति में व्यंग्य-कथन तथा बंकिम दृष्टि की महत्ता का निर्देश है। पाँचवें छंद में कृष्ण के व्यंग्य वचनों का उल्लेख है और इस छंद का संबंध भी प्रथम छंद से ही है क्योंकि कृष्ण के व्यंग्य-वचन उसी छंद में हैं। इस के अतिरिक्त छठे छंद के "मंद परस्पर हसीं" शब्द भी ध्यान देने योग्य हैं। कृष्ण के व्यंग्य वचनों को सुन कर पहले तो गोपियाँ कुछ काल तक मार्ग भूली हुई हरिणियों के समान हतबुद्धि हो कर खड़ी रह जाती हैं किंतु पुनः एक दूसरे की ओर देख कर मुसकराने लगती हैं। इस मंद मुसकान का क्या कारण हो सकता है ? प्रथम छंद में कृष्ण कहते हैं कि उत्कृष्ट प्रेम का यह लक्षण है कि वह कुछ कुटिलता होने से ही शोभित होता है। इस कथन द्वारा वे यह प्रेमपूर्ण उपहास ध्वनित करते हैं कि रात्रि में लोक-लाज का सर्वथा परित्याग कर के आई हुई गोपियाँ अत्यंत कुटिल हैं। कदाचित् इस व्यंग्य को समझने पर ही गोपियाँ एक दूसरे की ओर देख कर मुसकराने लगती हैं। दूसरे छंद में यह कहा गया है कि भोली गोपियाँ कृष्ण के अभिप्राय को नहीं समझ सकीं जो बहुत संगत नहीं ज्ञात होता क्योंकि यदि गोपियों ने कृष्ण का अभिप्राय समझा ही न था तो वे किस बात को लक्ष्य

कर एक दूसरे की ओर देख कर मुसकराई।

द्वितीय वर्ग की 'ग' प्रति ने ऊपर उद्धृत तीसरे व चौथे छंद को नहीं दिया है। 'घ' ने चौथे को छोड़ दिया है। प्रथम वर्ग की किसी भी प्रति में ये तीन छंद नहीं हैं। तृतीय वर्ग की अधिकांश प्रतियाँ ही इस विषय में 'ख' का साथ देती हैं। इन बातों से भी उपर्युक्त तीनों रोलों की प्रामाणिकता विशेष विचारणीय प्रतीत होती है।

इस वर्ग की प्रतियों के छंद अन्य प्रकार की कठिनाइयाँ भी उपस्थित करते हैं और उन के संबंध में हमारे निष्कर्ष अधिक दृढ़ हो सकते हैं जैसा कि 'घ' प्रति के इन दो रोलों में देखा जाता है—

मोहन पिय की मल्हकनि ढलकनि मोर मुकट की।
सदा बसौ मन मेरें फरकनि पियरे पट की॥
बदन कमल चित चोर ओर यों राजति अलकनि।
सदा बसौ मन मेरे मंजुल मोर की ढलकनि॥

इन छंदों में से संभवतः एक ही छंद कवि विरचित होगा। प्राचीन प्रतियों में प्राप्त एक रोले का परिवर्द्धित रूप भी इस वर्ग की प्रतियों में मिलता है। 'क' प्रति का एक छंद इस प्रकार है—

तब आरंभित रास उदित उहि कमल चक्र पर।
नमित न कबहूँ होत सबै निर्त्तत बिचित्र बर॥

'घ' में इस के स्थान पर दो छंद हैं—

तब ही यह सुरतरु तर पिय सुंदर गिरिवर धर।
आरंभत अद्भुत सु रास उहि कमल छत्र पर॥
एक काल ब्रज बाल लाल सब चढ़े जोरि कर।
नमित न कितहूँ होय सबै निर्तत विचित्र बर॥

जैसा कि 'मानमंजरी नाममाला' की प्रतियों की परीक्षा करते हुए कहा जा चुका है ऐसे छंदों की प्रामाणिकता अत्यंत संदिग्ध है।

लाल रसाल के व्यंग बचन सुनि थकित भई यों ।
बाल-मृगिनि की पाँति, सघन बन भूलि परी ज्यों ।।
मंद परस्पर हसीं, लसीं तिरछी अँखियन अस ।
रूप-उदधि इतराति, रँगीली मीन-पाँति जस ।।

उपर्युक्त छः छंदों में दूसरा, तीसरा तथा चौथा छंद प्रधानतया 'ख' प्रति के आधार पर मूल पाठ में रक्खा गया है। इन तीन छंदों के पूर्वापर का संबंध वहुत समीचीन नहीं है। तीसरे छंद का विचार न तो दूसरे से संबद्ध है और न चौथे से। उस में यह कहा गया है कि सर्व-गुण-संपन्न तथा स्वरूपवान नायक के समस्त गुण व्यर्थ हो जाते हैं यदि उस में वचन-वक्रता तथा कुटिल कटाक्ष फेंकने की किंचित क्षमता भी नहीं है। यह कथन प्रथम छंद की व्याख्या-स्वरूप है क्योंकि उसी छंद की दूसरी पंक्ति में व्यंग्य-कथन तथा बंकिम दृष्टि की महत्ता का निर्देश है। पाँचवें छंद में कृष्ण के व्यंग्य वचनों का उल्लेख है और इस छंद का संवंध भी प्रथम छंद से ही है क्योंकि कृष्ण के व्यंग्य-वचन उसी छंद में हैं। इस के अतिरिक्त छठे छंद के "मंद परस्पर हसीं" शब्द भी ध्यान देने योग्य हैं। कृष्ण के व्यंग्य वचनों को सुन कर पहले तो गोपियाँ कुछ काल तक मार्ग भूली हुई हरिणियों के समान हतवुद्धि हो कर खड़ी रह जाती हैं किंतु पुनः एक दूसरे की ओर देख कर मुसकराने लगती हैं। इस मंद मुसकान का क्या कारण हो सकता है ? प्रथम छंद में कृष्ण कहते हैं कि उत्कृष्ट प्रेम का यह लक्षण है कि वह कुछ कुटिलता होने से ही शोभित होता है। इस कथन द्वारा वे यह प्रेमपूर्ण उपहास ध्वनित करते हैं कि रात्रि में लोक-लाज का सर्वथा परित्याग कर के आई हुई गोपियाँ अत्यंत कुटिल हैं। कदाचित् इस व्यंग्य को समझने पर ही गोपियाँ एक दूसरे की ओर देख कर मुसकराने लगती हैं। दूसरे छंद में यह कहा गया है कि भोली गोपियाँ कृष्ण के अभिप्राय को नहीं समझ सकीं जो वहुत संगत नहीं ज्ञात होता क्योंकि यदि गोपियों ने कृष्ण का अभिप्राय समझा ही न था तो वे किस वात को लक्ष्य

कर एक दूसरे की ओर देख कर मुसकराई ।

द्वितीय वर्ग की 'ग' प्रति ने ऊपर उद्धृत तीसरे व चौथे छंद को नहीं दिया है। 'घ' ने चौथे को छोड़ दिया है। प्रथम वर्ग की किसी भी प्रति में ये तीन छंद नहीं हैं। तृतीय वर्ग की अधिकांश प्रतियाँ ही इस विषय में 'ख' का साथ देती हैं। इन बातों से भी उपर्युक्त तीनों रोलों की प्रामाणिकता विशेष विचारणीय प्रतीत होती है।

इस वर्ग की प्रतियों के छंद अन्य प्रकार की कठिनाइयाँ भी उपस्थित करते हैं और उन के संबंध में हमारे निष्कर्ष अधिक दृढ़ हो सकते हैं जैसा कि 'घ' प्रति के इन दो रोलों में देखा जाता है—

मोहन पिय की मल्हकनि ढलकनि मोर मुकट की ।
सदा बसौ मन मेरें फरकनि पियरे पट की ।।
बदन कमल चित चोर ओर यों राजति अलकनि ।
सदा बसौ मन मेरे मंजुल मोर की ढलकनि ।।

इन छंदों में से संभवतः एक ही छंद कवि विरचित होगा। प्राचीन प्रतियों में प्राप्त एक रोले का परिवर्द्धित रूप भी इस वर्ग की प्रतियों में मिलता है। 'क' प्रति का एक छंद इस प्रकार है—

तब आरंभित रास उदित उहि कमल चक्र पर ।
नमित न कबहूँ होत सबै निर्त्तत बिचित्र बर ।।

'घ' में इस के स्थान पर दो छंद हैं—

तब ही यह सुरतरु तर पिय सुंदर गिरिवर धर ।
आरंभत अद्‌भुत सु रास उहि कमल छत्र पर ।।
एक काल ब्रज बाल लाल सब चढ़े जोरि कर ।
नमित न कितहूँ होय सबै निर्तत विचित्र बर ।।

जैसा कि 'मानमंजरी नाममाला' की प्रतियों की परीक्षा करते हुए कहा जा चुका है ऐसे छंदों की प्रामाणिकता अत्यंत संदिग्ध है।

प्रथम वर्ग की पोथियों का प्रधान आकर्षण यह है कि उस की 'ड' प्रति 'पंचाध्यायी' की ज्ञात प्रतियों में प्राचीनतम है। वह लगभग ढाई सौ वर्ष प्राचीन है। इस वर्ग की अन्य प्रतियाँ भी विशेष महत्त्व की हैं किंतु इन में भी पारस्परिक असमानताएँ हैं यद्यपि वे समानताओं से अपेक्षाकृत कम हैं। 'ड' प्रति का यह रोला किसी प्रति में नहीं है—

नित्त रास रस मत्त जगु जदपि रस नव रंग भीनो।
तदिप लोक निस्तार हेत करिबें मन दीनो॥

प्रस्तुत संस्करण की पंक्ति ३७७ से पंक्ति ३८४ तक के चार छंद 'ड' प्रति के अतिरिक्त अन्य किसी भी प्राचीन प्रति में नहीं हैं। अन्य पोथियों में भी इसी भाँति का वैभिन्य मिलता है।

प्रथम वर्ग की पोथियों में एक और प्रकार की कठिनाई है। द्वितीय वर्ग के जिन छंदों को इस वर्ग की प्राचीन प्रतियों ने नहीं दिया है उन में से कुछ छंदों का कवि की कृति में न होना सहज ही में स्वीकार नहीं किया जा सकता। उदाहरण स्वरूप 'पंचाध्यायी' के प्रारंभ के शुकदेव-वर्णन से इस रोले को हम ले सकते हैं—

सुंदर पद-अरबिंद, मधुर मकरंद मुक्ति जहँ।
मुनि-मन मधुकर-निकर, सदा सेवत लोभी तहँ॥

इस छंद के पहले के रोलों को पढ़ने से यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि कवि शुकदेव जी का शिख-नख वर्णन कर रहा है। उद्धृत छंद को उस के स्थान से हटा देने पर कवि का वर्णन जानु-वर्णन के बाद समाप्त हो जाता है जो असंभव सा प्रतीत होता है। कवि-परंपरा के अनुसार शिख-नख-वर्णन में चरणारविंदों का वर्णन अत्यंत आवश्यक बात है और कुछ प्राचीन प्रतियों में न होने के कारण इसे प्रक्षिप्त मान लेना उचित नहीं है।

प्रथम वर्ग की पोथियों में न मिलने वाले द्वितीय वर्ग के अन्य छंदों में ऐसे रोलों की संख्या कम नहीं है जो भाव तथा उन के व्यक्त करने की शैली और भाषा आदि के विचार से 'रासपंचाध्यायी' तथा कवि की अन्य

मान्य रचनाओं से घनिष्ट सादृश्य रखते हैं। इस संबंध में दो संभावनाएँ हो सकती हैं। एक तो यह कि स्वयं कवि ने मूल कृति के रचना-काल के बाद किसी समय उस में कुछ नए छंदों का समावेश कर दिया हो और फलस्वरूप आज हमें प्रथम तथा द्वितीय वर्ग की पोथियों के दो रूप मिल रहे हों। प्राचीन साहित्य में ही इस प्रकार से एक ग्रंथ के दो असमान रूपों का एक उदाहरण प्रकाश में आ चुका है—'राम गीतावली' की सं० १६६६ की रामनगर की प्रति में 'विनयपत्रिका' की अन्य पोथियों से लगभग १०८ पद कम हैं जिन्हें बाद में किसी समय उस के यशस्वी लेखक ने बढ़ाया था[1]। दूसरे यह भी असंभव नहीं है कि किसी प्रतिभाशाली तथा चतुर क्षेपक-कार ने कवि के से ही भावों को उस की ही शैली तथा भाषा का सफल अनुकरण कर के कुछ परिवर्द्धन कर दिया हो।

इस प्रकार 'रासपंचाध्यायी' की सामग्री की साधारण परीक्षा करने पर हम परिस्थिति को विशेष उलझी हुई पाते हैं और उस के मूल रूप को स्थिर करने में पर्याप्त अड़चनें दिखलाई पड़ती हैं। फिर भी, जैसा कि ऊपर दिए हुए विवेचन से ज्ञात होता है, तृतीय वर्ग के अधिकांश अतिरिक्त छंदों को हम निश्चित रूप से संदिग्ध कह सकते हैं—उन में से बहुतों को तो प्रक्षिप्त कहना भी ठीक होगा। द्वितीय वर्ग के कुछ छंदों को भी उन के संदर्भ आदि पर विचार करने पर इसी श्रेणी में रक्खा जा सकता है। प्रस्तुत अध्ययन से इस बात की आवश्यकता का अनुभव होता है कि प्रथम तथा द्वितीय वर्ग की प्राचीन पोथियों की बड़ी संख्या में परीक्षा करने पर ही कवि की कृति के मूल रूप के विशेष निकट पहुँचा जा सकता है।

इस संस्करण की 'पंचाध्यायी' में ३०१ रोले हैं। इन के अतिरिक्त ८३ संदिग्ध छंद परिशिष्ट १ (ख) में दिए गए हैं। इन का पाठ विभिन्न प्रतियों के आधार पर है जिस की सूचना यथास्थान दी गई है। अपने शीर्षक के

---

[1] डा० माताप्रसाद गुप्त : 'तुलसीदास', पृ० २०४

छंदों के अतिरिक्त अन्य प्रतियों के शीर्षकों में दिए हुए छंदों को भी प्रतियों ने दिया है। नीचे दी हुई सूची से इस बात का परिचय मिल सकेगा—

प्रति   छंद-संख्या

ग—७६, ८१, ८२, ८३

घ—१, ५८, ७६

ङ—५, ७ से १२ तक, ६८, ७३, ७५, ७६

छ—१, ५, ७, ६, ११, १७, ३५, ३६, ३८ से ४१ तक, ५०, ५१, ७६, ७८, ८१ से ८३ तक,

ज—३५, ३६, ३८ से ४१ तक, ५०, ५१, ६७, ६९ से ७३ तक

ञ—३८ से ४१ तक, ६७, ७०, ७१

परिशिष्ट में दिए छंदों के ऊपर ही यह भी सूचित किया गया है कि वे 'पंचाध्यायी' के प्रस्तुत संस्करण की किस पंक्ति के बाद मिलते हैं। उन के क्रम आदि में भी कहीं कहीं उलट-फेर है और ऐसे स्थलों पर यह कह देने से पूर्ण संदर्भ का बोध नहीं होता कि अमुक छंद अमुक पंक्ति के बाद है किंतु विस्तार-भय से इन बातों का निर्देश नहीं किया जा सका है।

'रासपंचाध्यायी' की प्रतियों में 'सिद्धांत पंचाध्यायी' के भी कतिपय छंद मिश्रित मिले हैं। 'रासपंचाध्यायी' की 'ठ' प्रति ही ऐसी है जिस का लिपि-कार इन दो कृतियों के स्वतंत्र अस्तित्व से परिचित था क्योंकि उस ने एक ही जिल्द में दोनों ग्रंथों को लिखा है। अतः इस विषय में 'ठ' प्रति का ही अनुसरण किया गया है किंतु जो छंद इस जिल्द की प्रतियों में भी समान रूप से दोनों ग्रंथों में हैं उन्हें यथास्थान रक्खा गया है।

सिद्धांत पंचाध्यायी

इस ग्रंथ की चार प्रतियाँ मिली हैं—

१ क—श्रीनाथद्वारा के संग्रहालय में सुरक्षित एक प्रति की प्रति-लिपि। प्रतिलिपि-कार पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी हैं और उन्हीं से लेखक

को यह प्रति प्राप्त हुई है। इस में १३८ रोले हैं। मूल प्रति का लिपि-काल अज्ञात है।

२ ख—इस प्रति का लिपि-काल सं० १८३५ के लगभग माना जा सकता है[1]। यह 'क' की अपेक्षा कुछ अशुद्ध अवश्य है किंतु साधारणतया इस का पाठ 'क' के सदृश ही है।

३ ग—पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी द्वारा संपादित प्रति। इस प्रति के संपादन में चतुर्वेदी जी ने लगभग छः प्रतियों का उपयोग किया है किंतु कारण-वश उन प्रतियों के संवत् आदि के विवरण ज्ञात न हो सके। यह प्रति 'ब्रजभारती' नामक मासिक पत्र में प्रकाशित भी हो चुकी है।

४ घ—पटियाला पब्लिक लाइब्रेरी से प्राप्त। यह प्रति सं० १९३० की लिखी है। 'रासपंचाध्यायी' की प्रतियों के विवरण में यह कहा जा चुका है कि यह प्रति प्रस्तुत संस्करण के प्रेस में जाने के बाद प्राप्त हुई थी। साधारणतया अशुद्ध होते हुए भी इस प्रति के कुछ पाठ ऐसे मिले जो अन्य प्रतियों से नहीं प्राप्त हो सके थे। फलतः थोड़े से स्थलों में मूल पाठ में आवश्यक परिवर्तन कर लिए गए हैं और अवशिष्ट ज्ञातव्य पाठ परिशिष्ट ३ में दिए गए हैं। इस प्रति ने ग्रंथ का नाम 'अध्यात्म पंचाध्यायी' दिया है। 'सिद्धांत पंचाध्यायी' के संपादन में एक दो स्थलों पर 'ग' के पाठांतरों को भी ग्रहण किया गया है।

दशम स्कंध

इस ग्रंथ की पाँच प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं—

१ क—जि० सं० ४५९/१४। डा० भवानीशंकर से प्राप्त। इस प्रति का लिपि-स्थान गोकुल है तथा लिपि-काल सं० १८५७ है। यह साधारणतया शुद्ध है। इस में २९ अध्याय हैं।

---

[1] दे० 'रूपमंजरी' की 'ङ' प्रति का परिचय

२ ख—यह प्रति 'वाणी प्रकाशक मण्डल', अमृतसर, द्वारा सन् १९३२ में मुद्रित हुई थी और विना मूल्य वितरित कर दी गई थी। इसी से यह अब प्रायः अप्राप्य भी है। लेखक को इस की एक प्रति डा० भवानीशंकर द्वारा प्राप्त हुई थी। इस के 'संशोधक' श्री कर्मचन्द गुग्गलानी हैं। इस का संपादन चार प्रतियों के आधार पर हुआ था जिन में प्राचीनतम प्रति सं० १७६४ की थी। इस प्रति की एक विशेषता यह है कि इस में अन्य प्रतियों से अधिक पंक्तियाँ मिलती हैं। कहीं कहीं इस प्रति ने पाठ के क्रम में भी वहुत अंतर कर दिया है। इस में २८ अध्याय हैं। भूमिका में विद्वान् संपादक ने इस ग्रंथ के आधारों पर प्रकाश डाला है।

३ ग—पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी से प्राप्त। इस के ८१, ९८ तथा १५८ संख्यक पत्र खंडित हैं। अंत से खंडित होने के कारण प्रति का लिपि-काल ज्ञात नहीं है किंतु प्रति प्राचीन अवश्य जान पड़ती है। यह विशेष सावधानी के साथ लिखी गई है और इस का पाठ अन्य प्रतियों से बहुत शुद्ध है। अतएव प्रस्तुत संपादन में इस पोथी से विशेष सहायता ली गई है। इस में २९ अध्याय हैं।

४ घ—यह प्रति काशी के श्री रामरत्न पुस्तकभवन के संस्थापक श्री मुरारीलाल केडिया के संग्रह की है। इस का लिपि-काल सं० १७५७ है और ज्ञात प्रतियों में यह 'दशम स्कंध' की प्राचीनतम प्रति है। इस ने भी 'क' के समान वहुत से स्थल छोड़ दिए हैं। खेद है इस प्राचीन प्रति का पाठ बहुत अशुद्ध है। इसी से इस के समस्त पाठ का मिलान नहीं किया गया है।

५ ङ—श्री द्वारकेश पुस्तकालय, काँकरौली, से प्राप्त। इस प्रति का पाठ भी 'घ' के समान ही अशुद्ध है और इस में भी २८ अध्याय हैं। खोज रिपोर्ट सन् १९०१, संख्या ११, तथा खोज रिपोर्ट सन् १९०६-०८, संख्या २०० (बी) में इस ग्रंथ की दो प्रतियों के उल्लेख हैं।

पदावली

नंददास कृत पद निम्नांकित नौ प्रतियों से संगृहीत हैं—

१ क—'कीर्तन संग्रह' भाग १, २ तथा ३। यह ग्रंथ सं० १९९३ में दूसरी बार "धी वीर विजय प्रींन्टीग प्रेस", अहमदाबाद, से मुद्रित हुआ। इस के प्रकाशक तथा संग्राहक लल्लुभाइ छगनमल देसाई हैं। इस वृहत् ग्रंथ के भाग १ में कृष्णजन्माष्टमी से ले कर रक्षाबंधन तक वर्ष के विभिन्न उत्सवों के पद संकलित हैं। भाग २ में वसंत, डोल, होली आदि के तथा भाग ३ में 'मंगला', 'राजभोग', 'उत्थापन' आदि से संबंधित नित्य गाए जाने वाले पद मिलते हैं। वल्लभ संप्रदाय के मंदिरों में इस ग्रंथ का विशेष प्रचार है। ऐसा कहा जाता है कि इस के प्रकाशित हो जाने से मंदिरों के कीर्तनियों में हस्तलिखित पोथियों के रखने का चलन ही उठ गया है। गुजराती वैष्णवों के संरक्षण में मुद्रित होने के कारण इस ग्रंथ के पाठ में, स्वभावतः, प्रादेशिकता की मात्रा बहुत अधिक है।

२ ख—बंगीय साहित्य परिषद् द्वारा प्रकाशित श्री कृष्णानंद व्यासदेव कृत 'संगीत राग कल्पद्रुम' (१९१४ ई०)। इस ग्रंथ से नंददास के १६ नए पद मिले हैं।

निम्नलिखित पाँच पोथियाँ डा० भवानीशंकर याज्ञिक से प्राप्त हुई हैं—

३ अ—जि० सं० २६२/४२। इस पोथी में नंददास के केवल सात पद हैं और इस का लिपि-काल सं० १८४६ है।

४ आ—जि० सं० ६९८/४५। इस पोथी के होली तथा धमार संबंधी पदों में नंददास के लगभग एक दर्जन पद हैं।

५ इ—जि० सं० ५७७/४५। इस पोथी से केवल एक पद मिला है।

६ ई—जि० सं० २६३/४२। इस पोथी का लिपि-काल सं० १८८१ है और इस में नंददास के ४७ पद हैं।

७ उ—जि० सं० ७८७/४५। यह प्रति गुजरात की छपी हुई जान

पड़ती है क्योंकि इस के पदों की अनुक्रमणिका के ऊपर "पदनो नाम" शीर्षक पड़ा है। इस का मुख-पृष्ठ फटा है अतः प्रकाशक आदि के संबंध में कुछ भी ज्ञात नहीं हुआ। 'क' तथा इस प्रति का पाठ एक सा ही है। संभवतः 'क' के संग्राहक ने इस का उपयोग किया है। इस में नंददास के लगभग ४५ पद हैं।

८ ऊ—'नंददास पदावली', संपादक पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी। यह ग्रंथ अभी पूर्णतया छप नहीं सका है। जिस समय लेखक मथुरा गया था इस का केवल 'नित्य कीर्तन' ही छपा था जिस में ११८ पद हैं। चतुर्वेदी जी के अनुसार समग्र ग्रंथ में लगभग ७०० पद हैं।

९ ए—पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी द्वारा प्राप्त। इस प्रति में नंददास के लगभग ३० पद हैं।

ऊपर दी हुई प्रतियों से कवि के २८३ पद प्राप्त हुए हैं। प्रस्तुत संस्करण में कोई भी ऐसी सामग्री मूल पाठ में नहीं दी गई है जो पोथियों द्वारा न प्राप्त हुई हो। इस विचार से इन समस्त पदों को मूल पाठ में नहीं ग्रहण किया जा सकता था क्योंकि इन में अधिकांश पद मुद्रित संस्करणों से संकलित हैं। जो पद पोथियों में मिले भी उन में पाठ की गड़बड़ी इतनी अधिक मिली कि उन का संपादन नहीं हो सका। अतएव मूल पाठ में केवल ३५ पद दिए गए हैं, अवशिष्ट २४८ पद परिशिष्ट १ (ग) में संगृहीत हैं।

फुटकर पदों के वर्गीकरण की समस्या भी सरल नहीं है। 'क' प्रति ने समस्त पदों को 'वर्षोत्सव' तथा 'नित्य कीर्तन' शीर्षकों में वर्गीकृत किया है किंतु इस ग्रंथ में ऐसे अनेक पद हैं जो दोनों शीर्षकों के अंतर्गत समान रूप से मिलते हैं। यह वर्गीकरण प्रधानतया धार्मिक दृष्टि से है और कदाचित् साहित्यिक क्षेत्र में विशेष उपयोगी सिद्ध न होगा। प्रस्तुत संस्करण में मूल पाठ के पदों को विषय के अनुसार कुछ शीर्षकों में विभक्त कर दिया गया है। उन के पीछे कोई निश्चित सिद्धांत नहीं है।

संपादन-विधि

किसी भी ग्रंथ के सब से अधिक संभवित मूल रूप का उद्धार करना ही उस ग्रंथ के संपादन का एकमात्र लक्ष्य होना चाहिए। इस संभवित रूप तक पहुँचने का प्रधान साधन उस ग्रंथ की हस्तलिखित प्रतियाँ हैं। हस्तलिखित प्रतियों में भी जो कवि के रचना-काल तथा निवासस्थान से अधिक निकट हैं उन के पाठों के प्रामाणिक होने की अधिक संभावना है। नंददास के काव्यग्रंथों का प्रस्तुत संपादन यथासंभव ऐसी ही प्रतियों के आधार पर हुआ है। 'रासपंचाध्यायी', 'भँवरगीत' आदि के मुद्रित संस्करणों में ऐसे बहुत से पाठ मिले जिन का पोथियों में कोई अस्तित्व न था। अतएव विवश हो कर इन्हें मूल पाठ से हटा देना पड़ा।

कवि की भाषा के व्याकरण के रूपों को स्थिर करने में पोथियों की प्रवृत्तियों के अध्ययन के साथ ही प्रयोगों की ऐतिहासिकता पर विचार करना भी लाभप्रद सिद्ध होता है—कम से कम प्राचीन तथा आधुनिक प्रयोगों की जानकारी से हमारे निष्कर्षों में अधिक दृढ़ता आ जाती है। इस प्रणाली का जिस रूप में उपयोग हुआ है उस के कुछ व्यावहारिक उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

१. मथुरा तथा भरतपुर आदि स्थानों की प्रतियों में अर्द्ध-विवृत **एँ-ओँ** ध्वनियाँ क्रमशः **ऐ-औ** द्वारा व्यक्त की गई हैं जिस से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि कवि की मूल कृति में भी इन्हें इसी रूप में लिखा गया होगा। कभी कभी पोथियों ने तत्सम शब्दों को भी इसी प्रकार लिखा है जैसे 'तैजमय', 'प्रैम', 'रौम', 'जौति'। उच्चारण की दृष्टि से इन परिवर्तनों का मिलना स्वाभाविक है किंतु पोथियों में ये रूप नियमित रूप से नहीं हैं। फलतः इन्हें प्रश्रय देना उचित नहीं है।

तत्सम शब्दों की **'ङ्', 'ञ्', 'ण्'** आदि अनुनासिक तथा **'श्', 'ष्'** आदि ऊष्म ध्वनियाँ भी नियमित रूप से नहीं प्रयुक्त हुई हैं। 'सङ्ग', 'चञ्चल',

'मणि', 'शास्त्र', 'शेष', 'शुकदेव' आदि प्रचलित शब्द क्रमशः 'संग', 'चंचल', 'मनि', 'सास्त्र', 'सेस', 'सुखदेव' के रूप में अधिक संख्या में मिलते हैं। अप्रचलित या कम प्रचलित शब्दों के संबंध में परिस्थिति भिन्न है। प्रतियों ने 'अश्रप', 'किल्विष', 'शोपन', 'विश्रब्ध', 'निश्चित', 'धिषन', 'श्रमकन', 'आश्रय', को 'अस्रप', 'किल्विस', 'सोसन', 'विस्रब्ध', 'निस्चित', 'धिसन', 'स्रमकन', 'आस्रय' कर के नहीं लिखा है। ऐतिहासिकता के विचार से कवि के समय इन ध्वनियों का उच्चारण चाहे जिस प्रकार से होता रहा हो किंतु जब प्रतियों ने तत्सम रूपों को ग्रहण किया है तब हमें भी इन्हें इसी रूप में रखना चाहिए।

२. परसर्ग **'कौं'** की अनुनासिकता एक विवादग्रस्त विषय है। मान्य प्रतियों ने कर्म-संप्रदान में इसे बहुधा अनुनासिक रूप में रक्खा है किंतु षष्ठी के अर्थ में वे इस के अनुनासिक तथा निरनुनासिक दोनों रूप व्यवहृत करती हैं। प्राचीन ब्रज में कर्म-संप्रदान में दोनों रूप तथा संबंध में निरनुनासिक रूप ही मिलते हैं[1]। आधुनिक ब्रज में भी मथुरा के आसपास संबंध में निरनुनासिक रूप पाए जाते हैं[2]। संभवतः कवि के समय में भी इस अर्थ में निरनुनासिक रूप (अर्थात् 'कौ') का ही चलन रहा होगा। अतः इसे ग्रहण कर लिया गया है।

संज्ञाओं तथा सर्वनामों में 'हि' अथवा 'हिं' प्रत्यय लगा कर अनेक संयोगात्मक रूप विभिन्न कारकों के लिए पोथियों में प्रयुक्त हुए हैं। इन में संज्ञाओं के रूप बहुधा निरनुनासिक 'हि' के योग से बने हैं (जैसे 'अलि बिन **कमलहि** को पहिचानै', 'मन-वच-क्रम जु **हरिहि** अनुसरे')। षष्ठी के अर्थ में सर्वनामों के रूप भी प्रायः निरनुनासिक हैं (जैसे **जिहि** भीतर जगमगत, निरंतर कुँवर कन्हाई', 'सो पुनि **तिहि** संगति निस्तरी'), किंतु

---

[1] डा० धीरेन्द्र वर्मा : **'ब्रजभाषा व्याकरण'**, पृ० १२३, १२५
[2] डा० धीरेन्द्र वर्मा : **'ला लाँग ब्रज'**, पृ० ९८

अन्य कारकों के लिए इन के अधिकांश रूप सानुनासिक मिलते हैं (जैसे 'सुर मुनि रीझत **जिहिं**', '**जिहिं** निरखत नासै', '**मोहिं** नहिं करिहौ दासी', '**इनहिं** निवेसित कीजै')। प्राचीन ब्रज में सूरदास में संज्ञाओं में भी सानुनासिक रूप मिलते हैं[1] (जैसे '**पूतहिं** भले पढ़ावति')। इस ग्रंथ में संज्ञा तथा सर्वनाम के रूपों में एकरूपता न स्थापित कर के पोथियों की प्रवृत्ति का अनुसरण किया गया है।

३. संज्ञा, विशेषण तथा क्रिया के साथ प्रयुक्त केवलार्थक तथा समेतार्थक अव्यय '**हि**' तथा '**हु**' नियमित रूप से मिलते हैं (जैसे '**प्रथमहि** प्रनऊँ प्रेममय', '**सुनतहि** मोहन मुख की बानी', 'सरद कमल **दलहू** तैं नीने')। सर्वनाम के साथ इन रूपों के अतिरिक्त इन के सानुनासिक रूप भी प्रचुरता से प्राप्त होते हैं। बहुधा यह देखा गया है कि अनुनासिक ध्वनियों वाले सर्वनामों के साथ के अव्यय भी अनुनासिक हो गए हैं। प्रतियों ने '**न**' की अपेक्षा '**म**' के बाद के अव्ययों में अधिक अनुनासिक रूप दिए हैं। इस का कारण कदाचित् यह है कि '**म**' के उच्चारण में '**न**' से अधिक सानुनासिक प्रतिक्रिया होती है। इस संस्करण में अनुनासिक ध्वनियों के बाद में आने वाले '**हि**' तथा '**हु**' में अनुनासिकता रक्खी गई है, अन्य रूपों में नहीं (जैसे 'ताकौ प्रभु तुम **हीं** आधार', 'तिन **हुँ** सबै विधि लोपी' इत्यादि; तथा '**जितहि** धरचौ **हीं** **तितही** पायौ', **ताहू** तैं सतगुनी, सहस किधौं कोटि गुनी है')।

भाषा के अन्य प्रयोगों के रूप भी इसी प्रकार निश्चित किए गए हैं। बहुत से ऐसे प्रयोग भी हैं जिन के संबंध में प्रस्तुत अध्ययन से किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा जा सका है जैसे सप्तमी के परसर्ग '**परि**', '**पर**', '**पै**' में कवि द्वारा व्यवहृत रूप बताना कठिन है। इसी प्रकार **हौहि-हौइ**, **मानहुँ-मानौं**, **कान्ह-कान** आदि दोनों प्रकार के रूप इस संस्करण में मिलेंगे।

---

[1] **डा० धीरेन्द्र वर्मा : 'ला लाँग ब्रज', पृ० ६९**

यह सच है कि **'परि'** और **'हौहि'** आदि प्रयोग ऐतिहासिक दृष्टि से प्राचीन हैं किंतु कवि के समय की वास्तविक परिस्थिति का ज्ञान तो तभी हो सकता है जब उस के ग्रंथों की तथा अन्य समसामयिक लेखकों की प्राचीन पोथियों की बड़ी संख्या में एकत्रित कर के समस्त रूपों की गणना की जाय। तभी ठीक स्थिति का पता चल सकेगा। इस संस्करण में प्राप्त पोथियों के भी विभिन्न प्रयोगों के समस्त रूपों की गणना नहीं की जा सकी है। प्रतियों की परीक्षा करते समय जो प्रवृत्तियाँ लक्षित हुईं उन्हीं के आधार पर विचार किया गया है।

कुछ असाधारण प्रयोग भी हस्तलिखित प्रतियों में अधिक मिले जैसे **'हौंइ'** ('बैठे हौंइ साँवरे जहाँ', 'कर्म बुरे जौ हौंहि')। इस के साधारण रूप **हौईं** अथवा **हौंहि** के साथ ही इसे भी मूल पाठ में रख लिया गया है।

प्रस्तुत संस्करण में भाषा की एकरूपता उसी सीमा तक रक्खी गई है जहाँ तक वह पोथियों से पुष्ट हो सकी है। किन्हीं सिद्धांतों का आरोप कर के शब्दों में परिवर्तन नहीं किया गया।

नंददास के किसी ग्रंथ की रचना-तिथि ज्ञात नहीं है। खोज रिपोर्ट सन् १९२०-२२, संख्या ११३ (ए) पर 'नाममाला' की एक प्रति के विवरण में उस की रचना-तिथि सं० १६२४ दी गई है जो स्पष्ट ही भूल है क्योंकि उक्त ग्रंथ के पाठ में कहीं पर भी यह तिथि नहीं है। संभवतः कवि के संभवित कविता-काल के भ्रम से ही इस तिथि को रचना-तिथि के रूप में लिखा गया है। अतएव रचना-काल के आधार पर कवि के ग्रंथों का कोई क्रम निर्धारित नहीं हो सकता है। शैली की प्रौढ़ता के विचार से भी ग्रंथों का क्रम निश्चित करना संभव है परंतु इस आधार में कोई निश्चयात्मकता नहीं हो सकती। इन कठिनाइयों के कारण इस संस्करण के ग्रंथों का क्रम छंद के आधार पर रक्खा गया है। इस के प्रथम पाँच ग्रंथ दोहा-चौपई में हैं, उस के बाद दो ग्रंथ दोहा में, तत्पश्चात् दो दोहा-रोला-टेक के मिश्रित रूप में, पुनः दो रोला छंद में हैं। 'दशम स्कंध' को अपने सिद्धांत के अनुसार

पंचमंजरियों के बाद रखना चाहिए था किंतु उस के विस्तृत रूप के कारण ऐसा नहीं किया गया। अंत में कवि कृत कुछ फुटकर पद संकलित हैं।

परिशिष्ट १ में 'संदिग्ध तथा असंपादित सामग्री', २ में 'प्रक्षिप्त सामग्री', ३ में 'पाठांतर', ४ में 'पदों की प्रथम पंक्ति की अकारादि-क्रम-सूची' तथा ५ में 'शब्दार्थ-कोष' है।

मूल पाठ में प्रत्येक पाँचवीं पंक्ति के सामने उस की क्रम-संख्या के अंक दिए हुए हैं। पाठांतरों के देखने में इस से विशेष सुभीता होगा। पोथियों से प्राप्त समस्त पाठांतरों को देने से ग्रंथ-विस्तार बहुत बढ़ जाता अतएव ऐसा करना संभव न था। मूल पाठ के स्थिर करने में जिन स्थलों पर केवल व्यक्तिगत निश्चय से काम लिया गया है उन के पाठांतर प्रायः दिए गए हैं क्योंकि इन के विषय में मतभेद हो सकता है। इसी प्रकार अर्थांतर वाले पाठांतर भी अनिवार्य रूप से संगृहीत हैं। प्रायः अशुद्ध पाठ पाठांतरों में नहीं हैं किंतु जहाँ मूल पाठ का अर्थ अनिश्चित अथवा अज्ञात है वहाँ शुद्ध-अशुद्ध का विचार न कर के प्राप्त सभी पाठांतर दे दिए गए हैं।

जिस पाठ को किसी दूसरी प्रति ने बिलकुल छोड़ दिया है उस की सूचना × चिह्न द्वारा दी गई है। जिन पाठांतरों के बाद प्रश्नसूचक चिह्न लगा हुआ है वे लिपि की गड़बड़ी के कारण निश्चित रूप से नहीं पढ़े जा सके हैं।

नंददास की रचना में कुछ पंक्तियाँ समान रूप से दो ग्रंथों में मिलती हैं जैसे 'रूपमंजरी' की पंक्ति १०८, १०९, ११० तथा ५४०, ५४१, ५४७ 'रसमंजरी' में भी क्रमशः पंक्ति ५८, ५९, ६० तथा ४२, ४३, ४० पर उसी रूप से मिलती हैं। इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी दिए जा सकते हैं। पोथियों के देखने से यही अनुमान होता है कि स्वयं कवि ने इन्हें इस रूप में रक्खा है। फलतः इस संबंध में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया गया।

काव्य-समीक्षा

काव्यकार को अपनी कला का प्रासाद निर्माण करने में सर्वप्रथम वर्ण्यवस्तु को चुनना पड़ता है। इस कार्य में वह प्राय: अपनी पूर्ववर्ती तथा समसामयिक रचनाओं का थोड़ा-बहुत अवलंब अवश्य ग्रहण करता है। जिन विषयों को अपने उपयोग के लिए वह छाँटता है उन में अपनी वैयक्तिक अभिरुचि, अपनी प्रतिभा तथा अपनी परिस्थिति के अनुकूल जो परिवर्तन आवश्यक होते हैं उन्हें कर लेता है। इस प्रकार से पुरानी बातों को नई रूपरेखा दे कर मानव-हृदय की जटिलताओं, उस की गहराई, उस के सुख-दुख तथा उत्थान-पतन आदि के मार्मिक चित्रों से वह काव्यानंद की धारा प्रवाहित कर देता है। अतएव नंददास की कृतियों की वर्ण्यवस्तु तथा उस के प्रधान आधारों से कुछ परिचय प्राप्त कर लेने से कवि के दृष्टिकोण को समझने में सुगमता होगी।

भगवान् कृष्ण के परम भक्त होने के नाते नंददास की कोई भी रचना ऐसी नहीं है जो किसी न किसी रूप में कृष्ण से संबद्ध न हो। 'रूपमंजरी' में धर्मधीर नाम के किसी राजा की कन्या का चरित्र वर्णित है। विवाह-योग्य होने पर रूपमंजरी के पिता-माता ने किसी ब्राह्मण को उस के योग्य वर खोजने का भार सौंपा। लोभी तथा दुर्बुद्धि ब्राह्मण ने उस का विवाह किसी क्रूर तथा कुरूप राजपुत्र से करा दिया। रूपमंजरी के स्वजन, विशेष रूप से उस की सखी इंदुमती, इस घटना से अत्यंत दुखित हुई। उस ने 'उपपति-रस' द्वारा अपनी सखी के अपार सौंदर्य को सार्थक बनाने का यत्न किया। उस के व्रत आदि के फलस्वरूप रूपमंजरी को कृष्ण ने दर्शन दिए। इस के पश्चात् कवि ने षठ् ऋतुओं तथा उन से पीड़ित रूपमंजरी की विरहावस्था का वर्णन कर के अंत में स्वप्नावस्था में कृष्ण-प्राप्ति करा दी है। इंदुमती भी अपनी सखी की सेवा करते हुए मुक्त हो गई। इस आख्यान में कवि ने पात्रों के व्यक्तित्व का विकास नहीं किया

है जिस से यह निश्चित नहीं हो पाता है कि उस के प्रधान पात्र रूपमंजरी तथा इंदुमती ऐतिहासिक व्यक्ति थे अथवा नहीं। हम पहले देख चुके हैं कि एक वहिरंग साक्ष्य द्वारा 'ग्वालियर की बेटी' रूपमंजरी से कवि की मैत्री होने का उल्लेख मिलता है। कदाचित् रूपमंजरी का वैवाहिक जीवन असफल था और वह अंत में कृष्ण-भक्त हो गई थी। ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि उस से घनिष्टता होने के कारण कवि ने उस के वृत्त को प्रकट न किया हो।

'विरहमंजरी' बारहमासे की शैली पर लिखी हुई रचना है। इस में विरहाकुल ब्रजबाला चंद को दूत बना कर कृष्ण के पास द्वारका से शीघ्र वापस आने का संदेश भेजती है।

'रसमंजरी' भाषा-साहित्य में कदाचित् नायिका-भेद का पहला ग्रंथ है। स्वयं कवि ने 'रसमंजरी' नामक किसी ग्रंथ के अनुसरण करने का उल्लेख किया है। संस्कृत कवि भानुदत्त मिश्र विरचित 'रसमंजरी' से नंददास की 'रसमंजरी' की तुलना करने पर दोनों में बहुत अधिक साम्य मिलता है और यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि का अभिप्राय भानुदत्त के ग्रंथ का अनुसरण करने से ही है। भानुदत्त ने विभिन्न नायिकाओं के लक्षण गद्य में दिए हैं और उन के उदाहरण श्लोकों में। लक्षणों की समीचीनता पर भी उन्हों ने शास्त्रीय ढँग से विवेचन किया है। नंददास ने इन विस्तारों को एकदम छोड़ दिया है। उन्हों ने प्रायः उदाहरणों को ही लिया है। यहाँ दोनों कवियों के ग्रंथों से 'सुरतिगोपना परकीया' का एक उदाहरण तुलनार्थ दिया जाता है जिस से यह ज्ञात होता है कि नंददास का उद्देश्य भानुदत्त के ग्रंथ को रूपांतरित करना ही था—

श्वश्रूः क्रुध्यतु, विद्विषन्तु सुहृदो, निन्दन्तु वा यातरः।
तस्मिन् किन्तु न मन्दिरे सखि ! पुनः स्वापो विधेयो मया ॥

आखोराक्रमणाय कोणकुहरादुत्फालमातन्वती
मार्जारी नखरैः खरैः कृतवती, कां कां न मे दुर्दशाम्[1] ।।
कहै सखी सौं उहि गृह अंतर, अब तैं हौं सोऊँ न सुतंतर।
सास लरो, धैया किन लरो, दैया जो भावै सो करौ।
आखु धरन हित दुष्ट मजारी, मो पै उछरि परी दइमारी।
दै गई तीछन नख दुखदाई, कासौं कहौं दरद सो माई।
इहि छल छतन छिपावै जोई, परकिय सुरतिगोपना सोई[2]।

'मानमंजरी नाममाला' की रचना 'अमरकोश' के आधार पर हुई है। इस में संस्कृत के कुछ शब्दों के पर्यायवाची शब्दों को दोहों में संगृहीत किया गया है किंतु कवि ने अपने विषय का प्रतिपादन अत्यंत रोचक तथा मौलिक ढंग से किया है। उस ने शब्दों के पर्यायवाचियों के साथ साथ मानिनी राधा के मनाने की कथा का कुछ विस्तृत वर्णन दे कर अंत में राधा और कृष्ण का मिलन करा दिया है। इस प्रसंग की अवतारणा से कवि ऐसे नीरस विषय में भी बहुत सरसता आ गई है।

'अनेकार्थमंजरी' में अनेकार्थी शब्दों पर दोहे संगृहीत हैं। 'मान-मंजरी' के समान इस ग्रंथ में किसी प्रकार की कथा तो नहीं है किंतु इस के दोहों में भगवद्भजन के रूप में 'कृष्न', 'गोबिंद'. 'हरि' आदि शब्दों का समावेश अवश्य किया गया है।

'स्यामसगाई' की कथावस्तु अत्यंत सरल है। यशोदा ने राधा के साथ कृष्ण के विवाह का प्रस्ताव कीर्त्ति के पास भेजा। कीर्त्ति ने नटखट कृष्ण से अपनी भोली कन्या का विवाह करना ठीक न समझा। इस प्रस्ताव की अस्वीकृति से माँ को दुखी देख कृष्ण अपने मनमोहक

---

[1] भानुदत्त मिश्र: 'रसमंजरी', पृ० ५३ (प्रकाशक, श्रीकृष्ण निबंधभवन, काशी, १६२६)

[2] 'रसमंजरी', पंक्ति ११०–११४

वेष में बरसाने के बाग में जा बैठे। अपनी सखियों के साथ राधा कृष्ण को देखने आई। प्रथम दर्शन होते ही राधा मूर्च्छित हो जाती है। कुछ चेतना आने पर सखियों ने उसे कृष्ण-प्राप्ति की एक युक्ति बतलाई। उन्हों ने उसे यह सिखलाया कि माँ के इस अवस्था का कारण पूछने पर तुम यही कहना कि मुझे साँप ने काट लिया है। घर जाने पर माँ कन्या की दशा देख कर अत्यंत व्याकुल हुई। राधा की एक सखी को भेज कर कृष्ण बुलाए गए। उन के दर्शन मात्र से राधा की मूर्च्छा जाती रही। कीर्त्ति ने प्रसन्नतापूर्वक राधा-कृष्ण की सगाई निश्चित कर दी। संभवतः इस आख्यानक को लिखते समय कवि 'सूरसागर' से प्रभावित हुआ है क्योंकि राधा को साँप काटने तथा कृष्ण के बुलाए जाने का वर्णन सूरदास ने भी किया है।

'भँवरगीत' की वस्तु का मूलाधार 'श्रीमद्भागवत' दशम स्कंध के अध्याय ४६ व ४७ हैं किंतु दोनों वर्णनों की तुलना करने पर महत्त्वपूर्ण अंतर पाए जाते हैं। 'भागवत' में उद्धव नंद-यशोदा और साथ ही गोपियों के कृष्ण-विरह-जनित संताप को शांत करने जाते हैं। संध्या समय गोकुल पहुँचने पर उन की भेंट पहले नंद जी से होती है। नंद जी कृष्ण के अद्भुत कृत्यों का स्मरण कर प्रेम-विभोर हो जाते हैं। उद्धव उन्हें यह उपदेश दे कर सांत्वना देते हैं कि कृष्ण 'अजन्मा', 'अकर्मा' हैं, वे 'प्रयोजनवश मायामय मनुष्य रूप से अवतीर्ण' होते हैं। उद्धव और नंद की बातचीत होते होते रात बीत जाती है। दूसरे दिन सूर्योदय के प्रकाश में गोपियों ने नंद के द्वार पर सुवर्णमय रथ खड़ा हुआ देखा। उस के बाद ही उन्हें उद्धव के आने की सूचना मिली किंतु नंददास के 'भँवरगीत' में उद्धव के आने का प्रयोजन केवल गोपियों को समझाना है। उस में उद्धव-नंद की भेंट का उल्लेख तक नहीं है। उस की प्रथम पंक्ति है—'ऊधौ कौ उपदेस सुनौ व्रजनागरी'। 'भागवत' में गोपियाँ उद्धव से मिलने पर कृष्ण की स्वार्थ मैत्री पर थोड़ा आक्षेप करती हैं और शीघ्र ही भ्रमर का प्रवेश हो

जाता है। 'भँवरगीत' में कुशल-प्रश्न के पश्चात् निर्गुण-सगुण पर विवाद प्रारंभ हो जाता है और २२ छंदों तक यह विवाद चलता है (छंद ७ से २८ तक)। इस तर्क-वितर्क की कोई चर्चा 'भागवत' में नहीं है। भ्रमर को लक्ष्य कर 'भागवत' में जो उपालंभ कराए गए हैं उन्हें नंददास ने प्रचुर मात्रा में ग्रहण किया है किंतु उन्हों ने उन के क्रम में कुछ अंतर कर दिया है। 'भँवरगीत' में ज्ञान और भक्ति की बात समाप्त होने पर अकस्मात् गोपियों के सन्मुख कृष्ण का स्वरूप आ जाता है और वे उन की कुटिलता पर अनेक प्रेम-पूर्ण आक्षेप करती हैं (छंद २९ से ४२ तक)। इस के बाद कवि ने ४५वें छंद में भ्रमर का प्रवेश कराया है और उस को लक्ष्य करते हुए उपालंभ कराए हैं। 'भागवत' में भी गोपियाँ विष्णु के विभिन्न अवतारों की क्रूरता पर आक्षेप करती हैं परंतु वह भ्रमरोपालंभ के अंत में वर्णित है और वह भी सूक्ष्म रूप में। 'भागवत' में उद्धव कई महीने ठहर कर गोपियों को पूर्ण रूप से संतुष्ट कर देते हैं, 'भँवरगीत' में गोपियों की अटल प्रेम-भावना के सामने वे सिर झुका देते हैं और उन की प्रेम-महिमा की प्रशंसा करते हुए कृष्ण के पास वापस जाते हैं।

रुक्मिणी परिणय की कथा का सूत्रपात 'श्रीमद्भागवत' दशम स्कंध के अध्याय ५२ के मध्य से होता है। जब रुक्मिणी के हठी भाई रुक्मी ने शिशुपाल के साथ उस के विवाह का समस्त आयोजन कर दिया तो वह अत्यंत चिंतित हुई। उस ने एक विश्वस्त ब्राह्मण के हाथ कृष्ण को पत्र भेजा[1]। ब्राह्मण के द्वारकापुरी पहुँचने पर कृष्ण पहले तो संतोष, धर्म तथा सदाचार आदि के पालन का उपदेश करते हैं, पुनः उस के आने का प्रयोजन जान कर उस से रुक्मिणी का पत्र पढ़वाते हैं[2]। तत्पश्चात्

---

[1] पं० रूपनारायण पाण्डेय : 'श्रीमद्भागवतभाषा' (निर्णयसागर प्रेस, बंबई), १०—५२—२६

[2] वही, १०—५२—३६

वे कुंडिनपुर के लिए चल देते हैं। इधर संतान-वत्सल राजा भीष्मक अपनी कन्या के विवाह के अवसर पर अतिथियों की अभ्यर्थना का समस्त प्रबंध संपादित करते हैं। रुक्मिणी कृष्ण के शीघ्र न आने से व्यग्र हो उठती हैं। ब्राह्मण जब वापस आता है तो उस के प्रफुल्लित मुख से ही वह कार्य-सिद्धि की सूचना पा जाती हैं। कुछ समय के उपरांत सैनिकों से घिरी रुक्मिणी देवी-पूजन के लिए जाती हैं। विधिवत् पूजा करने के बाद जब वे मंदिर से बाहर आती हैं तो कृष्ण उन्हें रथ पर चढ़ा कर चल देते हैं। अनेक शस्त्रधारी योद्धा कृष्ण का पीछा करते हैं पर वे सभी पराजित हो कर निराश लौटते हैं। रुक्मी को इस से संतोष न हुआ। वह स्वयं कृष्ण से युद्ध करने जाता है। कृष्ण ने उसे परास्त किया और कुरूप कर के रथ के पीछे बाँध दिया। भाई की इस दुर्गति से दुखी रुक्मिणी के अनुरोध से दयालु बलदेव जी रुक्मी को बंधन-मुक्त कर देते हैं और रुक्मिणी को अपने क्रूर भाई के प्रति सहानुभूति प्रकट करने पर तिरस्कृत करते हैं। अंत में द्वारका पहुँच कर कृष्ण और रुक्मिणी का विवाह हो जाता है।

'रुक्मिनी मंगल' की कथा का मूल ढाँचा 'भागवत' की इस कथा पर ही अवलंबित है किंतु विस्तारों में नंददास ने अनेक काव्योपयोगी परिवर्तन कर दिए हैं। उन्हों ने प्रारंभ में रुक्मिणी की विरहावस्था का वर्णन विस्तार के साथ किया है। रुक्मिणी का पत्रवाहक द्वारकापुरी की भव्य अट्टालिकाओं तथा रमणीय लताओं और कुंजों को देखता हुआ कृष्ण के पास पहुँचता है। वहाँ उसे कृष्ण धर्म तथा सदाचार का व्याख्यान नहीं देते। वे उसे रुक्मिणी का पत्र पढ़ने को देते हैं। रुक्मिणी अपने पत्र में अपने दृढ़ प्रेम तथा अपनी परवशता का ही उल्लेख करती हैं। 'भागवत' की भाँति अपने हरण की युक्ति वे नहीं बतलाती हैं। उसे तो वे कृष्ण के ऊपर छोड़ देती हैं। 'भागवत' में वर्णित विवाहोपलक्ष्य राजा भीष्मक के प्रबंधों को नंददास बिलकुल छोड़ जाते हैं। इस के स्थान पर वे कृष्ण की रूपमाधुरी का पुरवासियों पर जो प्रभाव पड़ा उस का वर्णन करते हैं। देवी-पूजन के

बाद कृष्ण जब रुक्मिणी का हरण कर चल देते हैं तो जरासंध आदि राजा उन का पीछा करते हैं। इन राजाओं तथा यदु-सेना के साथ युद्ध का जो वर्णन 'भागवत' में है उस का संकेतमात्र कर के कवि ग्रंथ समाप्त कर देता है। कृष्ण का रुक्मिणी के सामने ही उस के भाई के वध में उद्यत होना तथा भाई के अपमानित होने से रुक्मिणी के क्षुब्ध होने पर बलदेव का उसे तिरस्कृत करना और ज्ञानोपदेश देना काव्य की दृष्टि से अत्यंत अस्वाभाविक बातें थीं इसी से नंददास ने इन्हें छोड़ दिया है।

'रासपंचाध्यायी' के पाँच अध्याय 'श्रीमद्भागवत' दशम स्कंध के अध्याय २९-३३ पर आधारित हैं। प्रथम अध्याय का प्रारंभ मुरली के मधुर आह्वान से होता है। अपने साथ विहार करती हुई गोपियों के मान उत्पन्न होने के कारण कृष्ण अंतर्धान हो जाते हैं और इसी स्थल पर अध्याय की समाप्ति होती है। नंददास ने इस अध्याय को बहुत परिवर्द्धित कर दिया है। शुकदेव जी का मार्मिक शिख-नख-वर्णन, 'श्रीमद्भागवत' तथा 'पंचाध्यायी' की महत्ता, वृंदाबन का रमणीय चित्रण आदि उल्लेख-नीय परिवर्द्धन इस के प्रारंभ में किए गए हैं। इस अध्याय के समाप्त होते होते कामदेव भी आता है। कृष्ण उस के मन को मथ देते हैं जिस से वह मूर्च्छित हो कर गिर पड़ता है और रति उसे ले कर भाग जाती है। दूसरे अध्याय में गोपियाँ लताओं तथा वृक्षों से कृष्ण का पता पूछती फिरती हैं और उन्मत्तों की भाँति अपने को कृष्ण समझ कर उन की विभिन्न लीलाओं का अनुकरण करती हैं। तृतीय अध्याय में विरहाकुल गोपियों का, चतुर्थ में गोपी-कृष्ण-मिलन का तथा पंचम में रास और जल-क्रीड़ा का आमोद-पूर्ण वर्णन है। इन अध्यायों में कवि ने 'भागवत' की कथा का ही भावानुसरण किया है यद्यपि व्यक्तिगत रुचि के कारण कुछ प्रसंगों के वर्णन घट-बढ़ गए हैं। द्वितीय अध्याय में गोपियाँ कृष्ण की लीलाओं का जो अनुकरण करती हैं वह नंददास की कृति में संक्षिप्त रूप में ही है किंतु पंचम अध्याय में कवि ने रास-विहार तथा जल-क्रीड़ा का जो

वर्णन किया है वह मूल से कहीं अधिक विस्तृत रूप में है।

'सिद्धांत पंचाध्यायी' 'रासपंचाध्यायी' का सहायक ग्रंथ सा प्रतीत होता है। इस ग्रंथ में 'रासपंचाध्यायी' की कथा को कवि एक प्रकार से फिर दोहराता है। विषय साम्य होने के कारण स्वभावतः इस के अनेक स्थल 'रासपंचाध्यायी' से मिलते-जुलते हैं। इस में कृष्ण के देवत्व पर विशेष बल देते हुए कवि रास-विहार की अलौकिक महिमा प्रदर्शित करता है। अपने पाठकों को वह कई बार यह चेतावनी देता है कि रास की कथा में सांसारिक शृंगार के भावों का आरोप करना भूल है। इस ग्रंथ को पढ़ने से यह प्रतीत होता है कि 'रासपंचाध्यायी' की रचना होने के बाद शीघ्र ही उस की आलोचना भी प्रारंभ हो गई होगी और तभी यह ग्रंथ लिख कर कवि ने अपने पक्ष का समर्थन करने की आवश्यकता समझी होगी।

'दशम स्कंध' में 'श्रीमद्भागवत' दशम स्कंध के प्रथम २९ अध्यायों का उल्था है अतः इस का नाम कुछ भ्रामक अवश्य है। 'भागवत' में इस स्कंध में ९० अध्याय हैं और पूर्वार्द्ध की कथा अध्याय ४९ के बाद समाप्त होती है। फलतः इसे 'दशम स्कंध पूर्वार्द्ध' भी नहीं कहा जा सकता है। इस में भगवान् कृष्ण के जन्म से ले कर रास-विहार की प्रारंभिक लीला तक की कथा मिलती है। इस कथा का क्रम मूल के अनुरूप ही है। यद्यपि कुछ स्थलों पर कवि ने मूल कथा का शब्दानुवाद भी किया है तथापि साधारणतया वह भावानुसरण से ही संतोष करता है। 'श्रीमद्भागवत' से तुलना करने पर इस में चार प्रकार के अंतर मिलते हैं—

(१) 'भागवत' के जिन अंशों में शंकराचार्य द्वारा प्रवर्त्तित अविद्या तथा माया के सिद्धांतों का प्रतिपादन अथवा समर्थन होता है उन्हें कवि ने बिलकुल छोड़ दिया है। उदाहरणार्थ 'भागवत' के अध्याय ४ में जब योग-माया कंस को यह सूचना दे कर अंतर्हित हो जाती है कि उस का मारने वाला कहीं अन्यत्र पैदा हो चुका है तब वह आश्चर्यान्वित हो कर अपने

दुष्कृत्यों पर पश्चात्ताप करने लगता है। वह कहता है कि अब मुझे ज्ञात हुआ कि देवता भी झूठ बोलते हैं[1]। तदनंतर वह देवकी और वसुदेव को इस प्रकार समझाता है—

"हे महाभागो तुम दोनो पुत्रों के लिये शोक न करो। उन्होंने जैसे कर्म किये थे वैसा ही फल उनको भोगना पड़ा। सब प्राणी दैव के वशवर्ती हैं, अतएव वे सर्वदा एकत्र नहीं रह सकते। जैसे मिट्टी से घट आदि उत्पन्न होते हैं और नष्ट हो जाते हैं, पर मिट्टी वैसी ही बनी रहती है, उसी प्रकार देहादि की उत्पत्ति और नाश होता है; परन्तु आत्मा अविकृत ही रहता है। जो लोग यथार्थ रूप से इस तत्त्व को नहीं जानते उन्हीं को देहादि असत् पदार्थों में आत्मबुद्धि होती है और इसी भ्रांतबुद्धि से भेद-ज्ञान उत्पन्न होता है[2]. . . .।"

इस समस्त प्रसंग को कवि ने छोड़ दिया है क्योंकि वल्लभ संप्रदाय में इस प्रकार की विचारावली का पूर्ण विरोध किया गया है।

(२) 'भागवत' के कुछ प्रसंगों को कवि ने संभवतः अनावश्यक विस्तार-भय के कारण भी नहीं ग्रहण किया है। तृतीय अध्याय में कृष्ण देवकी से उस के पूर्व जन्म की वह कथा कहते हैं जिस में उन्हों ने उस के तप से प्रसन्न हो कर उस का पुत्र होना स्वीकार किया था[3]। 'दशम स्कंध' के तृतीय अध्याय में वह कथा नहीं है।

(३) 'दशम स्कंध (पूर्वार्द्ध)' के संपादक श्री कर्मचन्द गुग्गलानी ने उक्त ग्रंथ की भूमिका में यह बतलाया है कि नंददास ने अपने ग्रंथ में 'श्रीमद्भागवत' के टीकाकारों के कुछ भावों का भी समावेश कर लिया

---

[1] दे० 'दशम स्कंध', अध्याय ४, पंक्ति २४ तथा 'श्रीमद्भागवतभाषा' १०-४-१७

[2] 'श्रीमद्भागवतभाषा', १०—४—१८-२०.

[3] वही, १०—३—३२-४५.

है। उन के अनुसार 'दशम स्कंध' में श्रीधरस्वामी की 'भावार्थदीपिका', श्रीसनातनगोस्वामी कृत 'वैष्णवतोषिणी' और श्रीमद्वल्लभाचार्य कृत 'सुबोधिनी' से भी कवि ने सहायता ली है। नंददास अपने ग्रंथ को पुष्टि-मार्गीय सभी उपसंप्रदायों में समादृत कराना चाहते थे इसी से उन्हों ने इन आचार्यों के भावों को अपनाया है। यह बतलाया गया है कि वल्लभाचार्य जी के अनुसार 'श्रीमद्भागवत' के दशम स्कंध में 'निरोध' का वर्णन है तथा श्रीधरस्वामी के मत से उस में 'आश्रय' का वर्णन है। 'निरोध' के शब्दार्थ में भी दोनों आचार्यों में मतभेद है। नंददास ने दोनों के मतों का समावेश कर लिया है[1]।

(४) कतिपय परिवर्द्धन 'श्रीमद्भागवत' के वर्णनों को अधिक पूर्ण तथा रोचक बनाने के विचार से भी किए गए हैं जैसे प्रथम अध्याय में मथुरा की प्रशंसा में किंचित विस्तार कर दिया गया है[2]। इसी भाँति कुछ अलंकारिक उक्तियाँ भी यत्र तत्र जोड़ दी गई हैं। ये परिवर्तन सामान्य ही हैं।

प्रस्तुत ग्रंथ के मूल पाठ तथा परिशिष्ट १ (ग) में कवि कृत फुटकर पद संगृहीत हैं। इन में अधिकांश कृष्ण-कथा से संबद्ध विभिन्न अवसरों तथा उत्सवों पर गाए जाने वाले पद हैं। इन में होली, वसंत, झूला आदि आनंदोत्सवों का वर्णन कुछ अधिक विस्तार से मिलता है। गुरु तथा यमुना की स्तुति में भी कुछ गीतात्मक रचनाएँ दृष्टिगोचर होती हैं।

नंददास की रचनाओं की वर्ण्यवस्तु का जो स्थूल परिचय ऊपर दिया गया है उस से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन के काव्य का प्रधान लक्ष्य गोपी-कृष्ण के प्रेम को अंकित करना ही था। उन के भक्त-हृदय के काव्याकाश का क्षितिज गोपियों के निःसीम तथा उमड़ते हुए प्रेमसागर में विलीन

[1] 'दशम स्कंध', अध्याय १, पंक्ति ३५-४८

[2] 'दशम स्कंध', अध्याय १, पंक्ति १२०-१२५

हो जाता है। कवि यह स्पष्टतया स्वीकार करता है कि गोपियों का प्रारंभिक प्रेम वासनामय है[1]—उस के मूल में मानव-हृदय की स्वाभाविक पाशविक वृत्तियाँ अंतर्हित हैं। वह कृष्ण के ईश्वरत्व से नहीं वरन् उन की अनुपमेय रूपमाधुरी मे उन्मत्त होने पर प्रादुर्भूत होता है। परंतु ब्रह्मादि से ले कर कीट पर्यंत में अनुप्रवृष्ट समस्त सृष्टि का सृजन तथा पालन करने वाले परम पुरुष कृष्णचंद्र की ओर उन्मुख होते ही वासनाओं का विष जाता रहता है। उन में मनुष्य को पीड़ित करने की शक्ति ही नहीं रह जाती है। यही नहीं, असत् वृत्तियों के साथ ही सत् वृत्तियाँ भी भस्मीभूत हो जाती हैं। मुरली की मादक पुकार सुनने पर भी जो गोपियाँ गृहत्याग कर कृष्ण से न मिल सकीं उन्हों ने जिस अपार दुःख का अनुभव किया उस के द्वारा करोड़ों वर्षों तक नरक-यातना भुगताने वाले पापों को एक क्षण में भुगत डाला। पुनः प्रियतम की छवि की कल्पना कर के जब उन्हों ने उन का मानसिक परिरंभन किया तो उन्हें उन अनंत स्वर्ग-सुखों का अनुभव हुआ जिस के द्वारा उन के समस्त पूर्वसंचित शुभ कर्मों का पुण्य भी विनष्ट हो गया—

> **परम दुसह श्रीकृष्न-बिरह-दुख ब्याप्यौ जिन में।**
> **कोटि बरस लगि नरक-भोग-अघ भुगते छिन में॥**
> **पुनि रंचक धरि ध्यान पियहि परिरंभ दियौ जब।**
> **कोटि स्वर्ग-सुख भुगति, छीन कीने मंगल सब[2]॥**

इस रीति से पुण्य तथा पाप, दोनों से रहित विकारहीन आत्माएँ परम आत्मा कृष्ण से मिल कर मधुर रस का अखंड अनुभव करती हैं। गोपी-कृष्ण का प्रेम प्रेम ही नहीं है, वह 'परम प्रेम' है। गोपियाँ यदि लोकलाज तथा सांसारिक बंधनों की सुदृढ़ शृंखलाओं को तोड़ कर कृष्ण-

---

[1] 'सिद्धांत पंचाध्यायी', पंक्ति २१७-२१८

[2] 'रासपंचाध्यायी', पंक्ति १२७-१३०

मिलन के हेतु दौड़ पड़ती हैं तो इस में कोई आश्चर्य की बात नहीं है। भगवान् के परम प्रेम के सामने कोई विघ्न-बाधा टिक ही नहीं सकती। इस प्रेम की विशेषता साधन में न हो कर साध्य में परिलक्षित होती है। श्रुतियों द्वारा प्रवर्त्तित कर्मकांड की नीरस क्रियाओं का पालन करने वाला व्यक्ति जिस समय ज्ञान की प्राप्ति कर लेता है क्या तब भी वह उन्हीं अज्ञानमयी क्रियाओं की ओर दृष्टिपात करता है ? स्रुवा आदि यज्ञ-विधियों के संपादन की वस्तुओं का महत्त्व यज्ञ करने के समय तक ही सीमित है। यज्ञ-कर्म करने के फलस्वरूप जब स्वर्ग-प्राप्ति हो जाती है तब इन वस्तुओं की ओर कोई आँख उठा कर भी नहीं देखता—

अरज्या, मरवा, स्रुवा, जग्य-साधन अविसेखै।
सरग जाइ, सुख पाइ, बहुरि को तिन तन देखै[1] ॥

कहा जाता है कि सांप्रदायिक सिद्धांतों के अनुसार गोपी-कृष्ण का प्रेम स्वकीया प्रेम ही है क्योंकि गोपियाँ कृष्ण की विवाहित स्त्रियाँ थीं। पुष्टिमार्गीय आचार्यों का इस विषय में जो भी मत हो, पुष्टिमार्गीय कवियों की रचनाओं में इस बात को नहीं स्वीकृत किया गया है। नंददास ने एक स्थल पर स्पष्ट रूप से कहा है कि परकीया प्रेम ही प्रेम की चरम सीमा है—

रस मैं जो उपपति-रस आही। रस की अवधि कहत कबि ताही[2]।

गोपियों के सामूहिक प्रेम के अतिरिक्त राधा तथा रुक्मिणी के वैयक्तिक प्रेम का भी कवि ने चित्रण किया है। जीवन की साधारण परिस्थितियों के अधिक निकट होने के कारण इस प्रेम की प्रभावोत्पादकता भिन्न कोटि की है। इस में राधा और रुक्मिणी दोनों ही अविवाहित कन्याएँ हैं। दोनों के एकमात्र लक्ष्य कृष्ण हैं। दोनों माता-पिता के अनुशासन में हैं और

---

[1] 'सिद्धांत पंचाध्यायी', पंक्ति २२३-२२४

[2] 'रूपमंजरी', पंक्ति १६६

फलस्वरूप सांसारिक बंधनों के भीतर ही अपने को सीमित रखती हैं। इन सीमाओं के भीतर जिस प्रेम का प्रस्फुटन होता है वह असाधारण श्रेणी का नहीं है। इसी से साधारण मनुष्यों को इसे मनोगत करने के लिए किसी व्याख्या की आवश्यकता नहीं होती है। परंतु नंददास ने इसे अंकित करने के लिए जिन आख्यानों को चुना है उन से इस की थोड़ी सी झलक मात्र दिखलाई पड़ती है। 'स्यामसगाई' तथा 'रुक्मिनी मंगल', जैसा कि नामों से ही प्रकट होता है, राधा-कृष्ण की सगाई तथा कृष्ण-रुक्मिणी परिणय के साथ ही समाप्त हो जाते हैं। कवि के फुटकर पदों में दांपत्य रति की कुछ झाँकियाँ अवश्य देखने को मिलती हैं किंतु वे संख्या में अधिक नहीं हैं। कदाचित् गोपी-कृष्ण के प्रेम के सामने कवि इस प्रेम को अधिक महत्त्व नहीं देता था।

अध्ययन के सुभीते के विचार से शृंगार रस को दो भागों में विभक्त किया जाता है—संयोग तथा वियोग। अन्य कवियों के समान ही नंददास ने भी संयोग शृंगार का उतना विशद वर्णन नहीं किया है जितना वियोग का। 'रूपमंजरी', 'विरहमंजरी', 'भँवरगीत', 'रुक्मिनी मंगल', 'रास-पंचाध्यायी' तथा कुछ फुटकर पदों में विप्रलंभ शृंगार के गंभीर विश्लेषणों की छटा प्रदर्शित की गई है। जैसा कि पहले कहा गया है नंददास का प्रेम प्रधानतया रूपासक्तिमूलक ही है अतएव कृष्ण की रूपमाधुरी का चित्रण कवि ने बड़े विस्तार के साथ किया है। उन के अपूर्व शरीर के जिस अंग पर दर्शक की दृष्टि पड़ जाती है वह वहीं फँस कर रह जाती है—

> **कोटि काम-लावन्य-धाम, अँग साँवरे पिय के।**
> **जे जे जाकी दृष्टि परे, ते भये तित ही के॥**
> **कोउ जो अलक छबि उरझे, अज हूँ नाहिन सुरझे।**
> **ललित लटपटी पगिया, तकि तकि तहँ तहँ मुरझे[१]॥**

---

[१] **'रुक्मिनी मंगल', पंक्ति १६६-१७२**

इसी भाँति एक अंग से पीछा छुटा कर जब लोगों की दृष्टि दूसरे अंग पर पड़ती है तो वहाँ से भी उसे छुटकारा मिलना कठिन हो जाता है। जिस मकान के प्रत्येक स्थान में मनुष्य भरे पड़े हैं उस से चोर चोरी कर के कहाँ भाग कर जा सकता है। यदि एक स्थान से वह किसी प्रकार बच कर निकल भी आता है तो दूसरे स्थान पर पकड़ा जाता है। कृष्ण-छवि-सुधा को चुरा कर लाना भी असंभव है—

> **कोउ और तें और, अंग के लोभ-लुभारे।**
> **भरे भवन के चोर भये, बदलत ही हारे[1]॥**

इस रूपमाधुर्य के स्मरणमात्र से गोपियाँ 'जड़ता' की अवस्था को प्राप्त हो जाती हैं। 'भँवरगीत' में एक स्थल पर कवि ने अत्यंत मार्मिक ढँग से इस बात को प्रदर्शित किया है। उद्धव जी का संदेश सुनने पर गोपियों का ध्यान उस संदेश के अभिप्राय की ओर नहीं आकृष्ट होता। उन के भावुक हृदय में उस संदेश के भेजने वाले कृष्ण के मनोमुग्धकारी रूप का स्मरण हो आता है और वे शिथिल हो कर भूमि पर गिर पड़ती हैं—

> **सुनि मोहन-संदेस, रूप सुमिरन ह्वै आयौ।**
> **पुलकित आनन अलक, अंग आवेस जनायौ॥**
> **बिह्वल ह्वै धरनी परी, ब्रजबनिता मुरझाइ।**
> **दै जल-छींट प्रबोधहीं, ऊधौ बात बनाइ॥**
> **सुनौ ब्रजबासिनी[2]॥**

गोपियों की अशक्तता इतनी बढ़ जाती है कि कृष्ण के बिना उन का जीना ही असंभव सा हो जाता है। जिस मछली के लिए जल ही जीवन है वह भला उस के बिना कैसे जी सकती है—

---

[1] **'रुक्मिनी मंगल'**, पंक्ति १८३-८४

[2] **'भँवरगीत'**, पंक्ति २६-३०

कोउ कहै अहो दरस देत, फिरि लेत दुराई।
यह छलबिद्या कहौ कौन पिय तुमहिं सिखाई ॥
हम सब रस-आधीन हैं, तातैं बोलत दीन।
जल बिन कहौ कैसें जियै, पराधीन जो मीन ॥
बिचारौ रावरे[1] ॥

इस परवशता को भूल जाने के निमित्त वे अनेक प्रकार की कल्पनाएँ करती हैं। कभी तो वे मथुरा का राजत्व पाने पर कृष्ण पर उपालंभ करती हैं, कभी उन की निष्ठुरता की चर्चा करती हैं, कभी उद्धव जी का अपने वाक्‌प्रहारों द्वारा सत्कार करती हैं किंतु इन सब से भी उन की विरहाग्नि कम नहीं पड़ती और हठात् उन्हें पुनः अपनी वास्तविक स्थिति का ज्ञान हो आता है और वे सब की सब एक साथ रो पड़ती हैं—

ता पाछे इक बार ही, रोईं सकल ब्रज-नारि।
हा करुनामय नाथ हो ! केसव, कृष्न, मुरारि ॥
फाटि हियरौ चल्यौ[2] ॥

इस करुण क्रंदन के सामने उद्धव जी को अपनी ज्ञान-गरिमा फीकी जँचने लगी। वे गोपियों के प्रेम की प्रशंसा करते हुए वापस जाते हैं और कृष्ण के गुणों को भूल कर गोपियों की कीर्त्ति का गान करने लगते हैं।

विरह-व्यंजना की यह गंभीरता 'रासपंचाध्यायी', 'सिद्धांत पंचाध्यायी', 'रुक्मिनी मंगल' आदि कवि की अन्य प्रौढ़ कृतियों से भी प्रकट होती है। निस्संदेह यह अवश्य कहा जा सकता है कि कवि के इन वर्णनों का श्रेय बहुत अंशों में 'श्रीमद्भागवत' को है किंतु उस की वर्ण्यवस्तु से परिचय प्राप्त करते समय हम देख चुके हैं कि कवि 'श्रीमद्भागवत' की सामग्री का

---

[1] 'भँवरगीत', पंक्ति १५६-१६०

[2] वही, पंक्ति २९८-३००

उल्था कर के ही संतुष्ट नहीं रहा है। उस ने अपने दृष्टिकोण से वस्तु में ही परिवर्तन नहीं किया, वरन् नए भावों का भी समावेश किया है। नीचे 'रुक्मिनी मंगल' से एक उदाहरण दिया जाता है।

द्वारका से अपने पत्रवाहक के शीघ्र वापस न आने से रुक्मिणी बहुत उद्विग्न हो उठी। कुछ समय बाद ब्राह्मण देवता आए। 'श्रीमद्भागवत' के अनुसार उन के प्रफुल्ल वदन को देख कर ही रुक्मिणी ने यह जान लिया कि उस का मनोरथ सिद्ध हो गया और कृष्ण शीघ्र ही आ रहे हैं। नंददास ने इस बात को दूसरा ही रूप दे दिया है। वे कहते हैं कि उस ब्राह्मण को देख कर रुक्मिणी के मुख से कोई शब्द ही न निकला। उसे यह संदेह होने लगा कि कहीं ऐसा न हो कि ब्राह्मण महाशय यह कह बैठें कि कृष्ण न आवेंगे। इसी से वह सहसा कुछ पूछ न सकी—

> **पूँछि न सकै मुख बात, दई यह कहा कहैगौ।**
> **किधौं अमृत सौं सींचि, किधौं बिष देह दहैगौ[1] ॥**

उस के प्राण उस का शरीर छोड़ कर द्विज के वचनों में जा लगे और जब उस ने कृष्ण के आने की सूचना दी तो वे मानो पुनः उस के शरीर में आ गए—

> **निकसि प्रान तिय-तन तैं, द्विज के बचननि आये।**
> **जब कह्यौ 'श्री हरि आये', मनौं बहुरयौ फिरि आये[2] ॥**

इस उदाहरण से हम यह देखते हैं कि अनिश्चय तथा तन्मयता की स्थितियों के समावेश से कवि ने इस प्रसंग का काव्योत्कर्ष बढ़ा दिया है।

विरह के भेदों के संबंध में भी नंददास के विचार उल्लेखनीय हैं। उन के अनुसार विरह के चार भेद होते हैं। वे अपने मित्र से कहते हैं—

[1] 'रुक्मिनी मंगल', पंक्ति १५९-६०

[2] वही, पंक्ति १६१-६२

प्रथम प्रतच्छ बिरह तू सुनि लै, तातैं पुनि पलकांतर गुनि लै ।
तीजौ बिरह बनांतर भये, चौथौ देसांतर के गये[1] ।

'प्रत्यक्ष' विरह में प्रियतम के अंक पर विलास करती हुई राधा प्रेमावेश के कारण कुछ भ्रमित सी हो जाती हैं और उन्हें यह आशंका होने लगती है कि कृष्ण से उन का विछोह हो गया है। प्रिय का मुख-कमल देखते समय पलकों के बार बार गिरने से जो व्याकुलता गोपियों को होती है उसे 'पलकांतर' वियोग कहा गया है। वन अथवा किसी अन्य देश जाने से जो दुःख उदभुत होता है उसे 'बनांतर' अथवा 'देसांतर' विरह की संज्ञा दी गई है।

व्यावहारिक दृष्टि से प्रथम दो भेदों की समीचीनता उपहासास्पद प्रतीत होती है किंतु यदि हम इन भेदों के देने के कारण पर विचार करेंगे तो वस्तुस्थिति का ठीक पता चलेगा। सांप्रदायिक विचारों के अनुसार कृष्ण का ब्रज में अखंड निवास रहता है। स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि जब कृष्ण सर्वदा ब्रज में रहते हैं तो ब्रजवासी गोपियों को उन का विरह ही कैसे होता है ? कदाचित् इस प्रश्न का संतोषजनक उत्तर देने के लिए ही उक्त चारों भेदों की कल्पना की गई है। नंददास के मित्र 'बिरहमंजरी' के प्रारंभ में कवि से यही शंका करते हैं—

प्रश्न भई इक, सुंदर स्याम, सदा बसत बृंदाबन धाम।
याके बिरह जु उपज्यौ महा, कहौ नंद ! सो कारन कहा[2] ॥

इस प्रश्न के उत्तर में ही कवि विरह के उपर्युक्त चारों भेदों को गिनाता है। 'विरहमंजरी' के बारहमासे की पृष्ठभूमि भी इसी प्रकार की विचार-शैली है। फलतः उस के वर्णन में यदि अधिक मर्मस्पर्शिता तथा हृदय-ग्राहिता न आ सकी हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं।

---

[1] 'बिरहमंजरी', पंक्ति १२-१३
[2] वही, पंक्ति ८-९

पवन थक्यौ, ससि थक्यौ, थक्यौ उड़-मंडल सगरौ ।
पाछे रबि-रथ थक्यौ, चल्यौ नहिं आगे दगरौ[१] ॥

रास के अलौकिक क्षेत्र से हट कर कवि ने दांपत्य रति के संयोग पक्ष का जो यत्किंचित् विस्तार किया है उस की मनोहारिता अपना पृथक् अस्तित्व रखती है। निम्नांकित पद में राधा-कृष्ण की पारस्परिक स्पर्द्धा का जिस सरलता से निपटारा कराया गया है वह द्रष्टव्य है—

बेसर कोन की अति नीकी ।
होड परी प्रीतम अरु प्यारी अपने अपने जी की ॥
न्याय पर्यो ललिता के आगें कोन सरस कोन फीकी ।
नंददास बिलग जिन मानों कछु एक सरस लली की[२] ॥

'वात्सल्य रति', 'शोक', 'क्रोध', 'भय', 'आश्चर्य' आदि भावों का भी थोड़ा-बहुत वर्णन कवि ने किया है किंतु सच तो यह है कि ये वर्णन प्रायः किसी परिस्थिति के अनुरोध से हैं। उन में कवि की अंतरात्मा की पुकार की वह गूँज नहीं सुनाई पड़ती जिसे हम गोपी-कृष्ण के प्रेम के वर्णनों में सहज ही में सुन पाते हैं। 'दशम स्कंध' की अघासुर, वकासुर, काली नाग, गोवर्द्धन-धारण आदि विभिन्न लीलाओं में 'भय', 'क्रोध', 'आश्चर्य' आदि के जिन भावों का प्रदर्शन किया गया है उस का बहुत कुछ श्रेय 'श्रीमद्भागवत' को ही है। इन क्षेत्रों में कवि की स्वतंत्र उद्भावनाओं की जो अपेक्षाकृत कमी दिखलाई पड़ती है उसी से यह जान पड़ता है कि कृष्ण-कथा के साथ जुड़ी हुई होने के अनुरोध से ही कवि इन लीलाओं के वर्णन की ओर अग्रसर होता है।

पुष्टिमार्ग के प्रमुख कवियों का जो अध्ययन विद्वानों ने किया है उस के फलस्वरूप हम यह कह सकते हैं कि नंददास की काव्यकला में सांप्रदायिकता

---

[१] 'रासपंचाध्यायी', पंक्ति ५३१-३४
[२] 'परिशिष्ट', पृष्ठ ४१६, पद १५०

की छाप सब से अधिक है। उन्हें हम वल्लभ संप्रदाय का प्रतिनिधि कवि कह सकते हैं। संप्रदाय के रहस्यों को जिस सुथरे तथा ग्राह्य ढंग से उन्हों ने अपनी रचना में रक्खा वह अन्यत्र दुर्लभ है। स्वभावतः उन का यह प्रतिनिधित्व उन की काव्य-प्रतिभा को बराबर पीछे भी खींचता रहा जिस के फलस्वरूप कवि को भाव जगत के प्रत्येक कोने में स्वच्छंदता से विचरण करने का पूर्ण अवसर न मिल सका। पुरुष और स्त्री के सीमित क्षेत्र में ही भावों तथा उद्वेगों की जो नानारूपात्मक जटिल परिस्थितियाँ होती हैं उन में भी वह सब को ग्रहण नहीं कर सकता था क्योंकि गोपी-कृष्ण का जो सांप्रदायिक स्वरूप था वह बराबर उस के सामने रहता था।

फ्रांसीसी विद्वान् तासी ने अपने इतिहास में लिखा है कि नंददास ने जयदेव के 'गीतगोविंद' के अनुकरण पर रचना की है। कदाचित् उन का तात्पर्य यह था कि नंददास ने जयदेव की भाषा-शैली का अनुसरण किया। श्रुतिमधुर तथा कोमलकांतपदावली की सरस योजना नंददास की काव्यकला का वह आवश्यक गुण है जो तत्कालीन भाषा साहित्य के लिए नई बात थी। उन की भाषा का माधुर्य संस्कृत भाषा की सरल शब्दावली पर ही अवलंबित है। संस्कृत ग्रंथों के आधार पर रचना करने वाला व्यक्ति संस्कृत शब्दों की मनोहारिता से प्रभावित हुए बिना रह ही कैसे सकता था—

क्वासि क्वासि ! पिय महाबाहु ! इमि बदति अकेली।
महा बिरह की धुनि सुनि, रोवत खग, मृग, बेली[१] ॥

अनुप्रासादि शब्दालंकारों तथा उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अर्थालंकारों से लदी हुई जिस आदर्श साहित्यिक भाषा की कवि ने सृष्टि की उस में सरस प्रवाह है, अद्‌भुत संगीत है और हृदय पर चोट करने की अपूर्व क्षमता है—

---

[१] **'रासपंचाध्यायी', पंक्ति ३४५-४६**

नूपुर, कंकन, किंकिन, करतल मंजुल मुरली ।
ताल, मृदंग, उपंग, चंग एकहि सुर जुरली ॥
मृदुल मुरज-टंकार, तार-झंकार मिली धुनि ।
मधुर जंत्र की तार, भँवर गुंजार रली पुनि ॥
तैसिय मृदु-पद-पटकनि, चटकनि कटतारनि की ।
लटकनि, मटकनि, झलकनि, कल कुंडल हारनि की ॥
साँवरे पिय-सँग निर्त्तत, चंचल ब्रज की बाला ।
जनु घन-मंडल मंजुल, खेलति दामिनि-माला[1] ॥

यह तो भाषा का वह रूप है जो कवि ने अथक परिश्रम द्वारा निर्मित किया है। इस के अतिरिक्त ब्रजभाषा के स्वाभाविक माधुर्य की भी कवि ने उपेक्षा नहीं की किंतु प्रवाह और प्रासादिकता का अनूठापन वहाँ भी विद्यमान है—

अरी बीर ! चलि जाउ, कहौ यह बिनती मेरी ।
जौ जीवैगी कुँवरि, बीर ! मैं करिहौं तेरी ॥
पाँइ लगौं, बिनती करौं, जग जस आवै तोहिं ।
बेगि पठै नँदलाल कौं, जीव-दान दै मोहिं ॥
　　　　　　　　रावरी सरन हौं[2] ॥

इतिवृत्त के वर्णनों में कवि ने प्रायः बोलचाल की भाषा का ही सहारा लिया है। भावावेश के अवसर पर जब वह इस भाषा का प्रयोग करता है तो निरलंकारिक होते हुए भी वह हृदय के सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों को व्यक्त करने में अपूर्व सफलता प्राप्त करती है। 'पूर्वानुराग' के निम्नांकित पद में भाषा भावों को सुचारु रूप से व्यक्त ही नहीं करती वरन् उन में एक अजीब जान डाल देती है—

---

[1] 'रासपंचाध्यायी', पंक्ति ४६५-४७२

[2] 'स्यामसगाई', पंक्ति ७६-८०

कृष्न-नाम जब तैं श्रवन सुन्यौ री आली,
भूली री भवन हौं तौ बावरी भई री।
भरि भरि आवैं नैंन, चित हू न परै चैन,
तन की दसा कछु औरै भई री॥
जेतिक नेम-धर्म-ब्रत कीने री मैं बहु बिधि,
अँग अँग भई मैं तौ श्रवनमई री।
'नंददास' जाके श्रवन सुने ऐसी गति,
माधुरी मूरति कैधौं कैसी दई री[1]॥

नंददास की भाषा में विदेशी शब्दावली का एक प्रकार से पूर्ण वहिष्कार मिलता है। फ़ारसी तथा अरबी के बहुत थोड़े तद्भव शब्द प्रयत्नपूर्वक खोजने पर ही कवि की कृतियों से निकाले जा सकते हैं और वे भी ऐसे रूप में प्रयुक्त हुए हैं कि उन की व्युत्पत्ति से अपरिचित साधारण पाठक को उन के विदेशी होने का भान भी नहीं होता। विदेशी शब्दों के उदाहरण-स्वरूप 'अरदास' (फ़ा० अर्ज़दाश्त), 'चरबाई' (फ़ा० चर्ब), 'गार' (अ० ग़ार) तथा 'लाइक' (अ० लायक़) दिए जा सकते हैं।

नंददास ने प्रधानतया चौपई, दोहा और रोला छंदों का प्रयोग किया है। उन की पंच मंजरियों तथा 'दशम स्कंध' में चौपई तथा दोहा प्रयुक्त हुए हैं किंतु अन्य कवियों की भाँति इन दोनों छंदों को उन्हों ने किसी विशिष्ट क्रम के अनुसार नहीं रक्खा है। चौपइयों में स्वेच्छानुसार कहीं कहीं दोहे भी रख दिए गए हैं। कवि ने चौपई तथा चौपाई में भी कोई अंतर नहीं रक्खा है यद्यपि छंद-शास्त्र के अनुसार पहले में १५ तथा दूसरे में १६ मात्राएँ होनी चाहिए। रोला छंद कवि को बहुत प्रिय था। इस छंद की उस ने जितनी सफलता के साथ रचना की है वैसी संभवतः भाषा साहित्य के किसी कवि ने नहीं की। दोहा, रोला तथा दस मात्रा की टेक के आयो-

---

[1] 'पदावली', पंक्ति २६८-२७५

जन से एक मिश्रित छंद में कवि की दो कृतियाँ लिखी गई हैं। कदाचित् इस अपूर्व छंद का प्रयोग सर्वप्रथम 'सूरसागर' में हुआ है और उसी के अनुकरण में कवि ने इस छंद में रचना की। किंतु यह कहना पड़ेगा कि इस के प्रयोग में भी उस ने रोले के समान अद्वितीय सफलता पाई है। इस छंद के अंत में आने वाली दस मात्राओं की भिन्नार्थी टेक बड़ा ही महत्त्वपूर्ण कार्य संपादित करती है। उस में कवि दोहे और रोले के भावों का निचोड़ रख देता है। इन चार छंदों के अतिरिक्त दोहा-चौपई वाले ग्रंथों में यदा-कदा सोरठा तथा पदों में कवित्त, सवैया, घनाक्षरी आदि कई प्रकार के छंदों का प्रयोग भी कवि ने किया है।

नंददास के छंदों के संबंध में साधारण पाठक को भी एक बात अवश्य खटकेगी—उन में अनेक स्थलों पर मात्राएँ बढ़ी हुई मिलती हैं और फलतः छंद की यति-गति बिगड़ती हुई जान पड़ती है। थोड़ा विचार करने पर यह ज्ञात होगा कि इस गड़बड़ी का कारण यह है कि कवि ने दीर्घ स्वरों को ह्रस्व के रूप में प्रयुक्त किया है यद्यपि लिपि में वे दीर्घ ही लिखे हुए हैं। इस प्रकार के कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

आ—बाट घाट तृन छादित ऐसैं, अभ्यास बिन बलि बिद्या जैसैं[1]।

सखि कहै बलि मैं पठये चारा, आज कालिह ऐहै समाचारा[2]।

ई—तब कही सुख की रासि बिधि करी, रवनी उर-अवनी पर धरी[3]।

ते बृषभान की पौरि झुकि, पावत पाँवर लोग[4]।

ऊ—मृगतृष्ना हू पानी करै, मन के लडुवन भूख पुनि हरै[5]।

---

[1] 'रूपमंजरी', पंक्ति ३५५

[2] वही, पंक्ति ३६५

[3] वही, पंक्ति १४१

[4] 'मानमंजरी', पंक्ति ५६

[5] 'रूपमंजरी', पंक्ति २४०

ए—जे जे जाकी दृष्टि परे, ते भये तित ही के[1]।

बसुदेव तिहि छिन अतिसै सोहे, भानु समान परत नहिं जोहे[2]।

ऐ—पूँछि न सकै मुख बात, दई यह कहा कहैगो[3]।

देखे हैं नैंन बिसाल, मोहना नंद के लाला[4]।

ओ—अहो असोक ! हरि सोक, लोक-मनि पियहि बतावहु[5]।

कोउ गमनी तजि सोहन, दोहन, भोजन, सेवा[6]।

औ—ललित बिसाल सुभाल, दिपत मनौं निकर-निसाकर[7]।

मग्न होत दुख-जलनिधि मैं, उद्धरौ कर धरि कैं[8]।

इन में से अंतिम चार स्वरों के संबंध में तो अन्य कवियों ने भी कुछ स्वतंत्रता ली है किंतु प्रथम तीन स्वरों के प्रयोग असाधारण हैं। कुछ विद्वानों का कहना है कि छंदों में मात्राओं के प्रतिबंध के साथ ही एक प्रकार की गति का भी विधान रहता था। कविगण इसी गीतात्मक लय के सहारे मात्राओं के आधिक्य को कम कर के पढ़ लिया करते थे जैसा कि उर्दू की कविता में प्रायः आजकल भी होता है। जो हो, 'अभ्यास' को 'अभ्यस', 'समाचारा' को 'समचारा', 'भूख' को 'भुख' आदि कर के पढ़ने में 'च्युत-संस्कृत' दोष अवश्य माना जायगा।

---

[1] 'रुक्मिनी मंगल', पंक्ति १७०

[2] 'दशम स्कंध', अध्याय २, पंक्ति ३१

[3] 'रुक्मिनी मंगल', पंक्ति १५९

[4] 'रासपंचाध्यायी', पंक्ति २७८

[5] वही, पंक्ति २९१

[6] 'सिद्धांत पंचाध्यायी', पंक्ति ५९

[7] 'रासपंचाध्यायी', पंक्ति ७

[8] 'रुक्मिनी मंगल', पंक्ति ११८

निवेदन

नंददास के प्रस्तुत अध्ययन का प्रधान उद्देश्य उन के समस्त प्रामाणिक काव्य-ग्रंथों को वैज्ञानिक रीति से संपादित करना ही है। कवि के जीवन तथा उस के काव्य-कौशल का जो यत्किंचित् विस्तार ऊपर दिया गया है वह प्रासंगिक अध्ययन के रूप में है। कवि की कृतियों के संपादन-कार्य के सीमित क्षेत्र में भी बहुत सी त्रुटियाँ रह गई हैं। प्राचीन साहित्यिक ब्रजभाषा संबंधी जटिलताओं, अर्थ संबंधी गुत्थियों तथा क्षेपक आदि की अनेक समस्याओं का पूर्ण निराकरण कर लेना अत्यंत कठिन कार्य है। प्रस्तुत प्रयास में इन में से केवल कुछ का ही अंशतः अध्ययन किया जा सका है।

इस कार्य में सब से बड़ी कठिनाई हस्तलिखित प्रतियों के प्राप्त करने में हुई क्योंकि किसी समुचित व्यवस्था के अभाव में वे प्रायः देश के विभिन्न नगरों तथा ग्रामों में बिखरी हुई मिलती हैं और इन सभी स्थानों में जा कर पोथियों के अध्ययन करने में अनेक व्यावहारिक कठिनाइयाँ हैं। फिर भी, यथासंभव ज्ञात महत्त्वपूर्ण प्रतियों के परीक्षण का प्रयत्न किया गया है। इस संबंध में गवर्मेंट वैक्सीन डीपो पटवा डाँगर (नैनीताल) के अध्यक्ष राय साहब डा० भवानीशंकर याज्ञिक, एम० बी० बी० एस०, डी० पी० एच०, ने विशेष उल्लेखनीय सहायता प्रदान की है। याज्ञिक जी ने अपने स्वर्गीय पितृव्य पं० मयाशंकर जी याज्ञिक के संग्रह की अनेक हस्तलिखित प्रतियों को कई मास के लिए विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में भेजने की कृपा की। कवि की कुछ कृतियों का संपादन तो इस सामग्री के आधार पर ही संभव हुआ। काशी नागरी प्रचारिणी सभा के अधिकारियों ने सभा की अप्रकाशित सामग्री की परीक्षा करने में लेखक को अनेक प्रकार की सुविधाएँ दीं। इस के अतिरिक्त बाबू ब्रजरत्नदास, पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी, श्री मुरारीलाल केडिया, बाबा बंसीदास, ठा० प्रतापसिंह, श्री जगदीश सिंह

गहलौत, श्री महावीर सिंह गहलौत आदि सज्जनों ने तथा भरतपुर राज्य पुस्तकालय, प्रतापगढ़ राज्य पुस्तकालय, श्री द्वारकेश पुस्तकालय, काँकरौली (उदयपुर), पटियाला पब्लिक लाइब्रेरी, और स्थानीय भारती भवन पुस्तकालय, म्यूनिसिपल म्यूज़ियम एवं हिंदी साहित्य सम्मेलन के अधिकारियों ने स्मरणीय सहायता दी है। लेखक इन सभी महानुभावों तथा संस्थाओं का आभारी है क्योंकि इन के सहयोग के विना इस ग्रंथ को प्रस्तुत रूप में प्रकाशित करना संभव न था।

प्रयाग विश्वविद्यालय के अंग्रेज़ी विभाग के अध्यापक श्री सतीशचंद्र देव जी ने प्रस्तुत अध्ययन की रूपरेखाओं के निर्धारित करने में अपना बहुमूल्य समय दिया है जिस से लेखक को लाभ हुआ है। श्री रामप्रसाद नायक, एम० ए० तथा श्री पृथ्वीनाथ कुलश्रेष्ठ, 'कमल', बी० ए० ने प्रस्तुत ग्रंथ के प्रूफ़ देखने में विशेष सहायता दी है अतएव ग्रंथ-संपादक उन का भी कृतज्ञ है।

हिंदी विभाग
८ अगस्त, सन् १९४२

उमाशंकर शुक्ल

रूपमंजरी

प्रथमहि प्रनऊँ प्रेममय, परम जोति जो आहि।
रूप-उपावन, रूपनिधि, नित्य कहत कबि ताहि ॥

परम प्रेम-पद्धति इक आही, 'नंद' जथामति बरनत ताही।
जाके सुनत-गुनत मन सरसै, सरस होइ रस-वस्तुहि परसै।
रस परमें बिन तत्व न जानै, अलि बिन कमलहि को पहिचानै। ५
पुनि प्रनऊँ परमातम जोई, घट-घट, बिघट पूरि रह्यौ सोई।
ज्यौं जल भरि बहु भाजन माहीं, इंदु एक सब ही मैं छाँहीं।
जु कछु मानसर ससि की झाँई, सो न छुद्र छिल्लर छबि पाई।
तरनि-किरन सब पाहन परसै, फटिक माँझ निज तेजहि दरसै।
स्वाति बूँद अहि-मुख बिख होई, कदली दल कपूर होइ सोई। १०
जुबन रूप सँग सोभा पावै, सो कुरूप ढिँग बदन दुरावै।
एकै पट अनेक रँग गहै, सु रँग रंग सँग अति छबि लहै।
पुनि जस पवन एक रस आही, वस्तु के मिलत भेद भयौ ताही।
रबि-कर परसि अग्नि जिहिं होई, सो दरपन जग बिरलौ कोई।

जगमग-जगमग करहि नग, जौ जराइ सँग होइ। १५
काँच किरन कंचन खचे, भलौ न कहियै कोइ ॥

पैबे कौं प्रभु के पंकज-पग, कबिन अनेक प्रकार कहे मग।
तिन मैं इह इक सूच्छम रहै, हौं तिहि बलि जो ईहिं चलि चहै।

जग मैं नाद अमृत मग जैसौ, रूप अमीकर मारग तैसौ।
२० गरल, अमृत, इक ठाँ करि राखै, भिन्न भिन्न करि विरलौ चाखै।
खीर-नीर निरवारि पियै जो, इहि मग प्रभु पदवी पावै सो।
दिष्टि अगोचर कमल जु होई, वास खोज परि पैयै सोई।

इंदुमती मतिमंद पै, और नाहिं निबहंत।
नागर, नगधर, कुँवर-पद, इहि मग छ्वै चहंत॥

२५ रस-मय सरसुति के पाँ लागौं, अस अच्छर द्यौ यह वर मागौं।
सुंदर, कोमल, वचन अनूठे, कहत, सुनत, समुझत अति मीठे।
नाहिंन उघरे गूढ़ न ऐसें, मरहट देस वधू कुच जैसें।
पुनि कवि अपने मन मैं गुनै, मो कवित्त कोउ निरस न सुनै।
रस-विहीन जौ अच्छर सुनहीं, ते अच्छर फिरि निज सिर धुनहीं।
३० बाला-स्मित, कटाच्छ, औ लाज, अँधरे वालम के किहि काज।
ज्यौं तिय सुरति समै सितकारा, निरफल जाहि बधिर भरतारा।
कबि-अच्छर अरु तरुनि-कटाछे, ये दोउ सु लगि, लगैं हिय आछे।
जे हिय अच्छर रस नहिं बिधे, ते हिय अर्जुन बान न छिधे।
कबिन तेई पाहन सम माने, नहिंन पखान पखान बखाने।
३५ इहि प्रसंग हौं जु कछु बखानौ, प्रभु तुम अपनौ जस कै मानौ।
तुव जस-रस जिहि कबित न होई, भीत चित्र सम चित्र है सोई।

हरि-जस-रस जिहि कबित नहिं, सुने कौन फल ताहि।
सठ कठपुतरि दुसंग दुर, सो एकौ सुख आहि॥

अब हौं बरनि सुनाऊँ ताही, जो कछु मो उर अंतर आही।
४० धर पै इक निरभय पुर रहै, ताकी छबि कबि का कहि कहै।

नये धौरहर सुखद, सु बास, जनु धर पै दूसर कैलास।
ऊँची अटा घटा वतराहीं, तिन पर केकी केलि कराहीं।
नाचत सुभग सिखंड डुलत यौं, गिरिधर पिय की मुकुट लटक ज्यौं।
गुड़ी उड़ी छबि देत अति, अस कछु बनि रह्यौ बान।
देखत आवत देव जनु, चढ़ि-चढ़ि बिमल बिमान॥
आसपास असगाइ बरारी, जहँ लगि फूलत ती फुलवारी।
चुनहि फूल मालन छबि भरी, अवनी उतरि परी जनु परी।
बोलहि सुक, सारिक, पिक, तोती, हरियर, चातक, पोत, कपोती।
मीठी धुनि सुनि अस मन आवै, मैन मनौं चटसार पढ़ावै।
फलन के भार नमित द्रुम ऐसैं, संपति पाइ बड़े जन जैसैं।
का कहियै कासार निकाई, सारस हंस बंस छबि छाई।
निरमल जल जनु मुनि-मन आही, परसत खन जन-पातक जाही।
फूल फूलि रहे जलज सुदेसे, इंदीवर, राजीव, कुसेसे।
पानी पर पराग परी ऐसी, बीर फुटक भरी आरसि जैसी।
पदमन कौं जब पौन डुलावै, तब लंपट अलि बैठि न पावै।
जनु ननकारति मानिनि तिया, आन जुवति रत जान्यौ पिया।
कंज-कंज प्रति पुंज अलि, गुंजत इमि परभात।
जनु रबि-डर तम तजि भज्यौ, रोवत ताके तात॥
धर्मधीर तहँ कर बड़ राजा, प्रगट्यौ धर्म धरन के काजा।
जस कौ धनुष राउ-कर सोहै, कीरति पनच भनक मन मोहै।
अनगन गुनिजन बान बखाने, निसि-दिन रहत पनच संधाने।
पनच जाइ उत देसहि पारा, सर आवहि इत राज दुआरा।

अस अहेर नित खेलै जोई, जो देखै सो अचरिज होई।
ताके इक कमनीय सु कन्या, जिहि अस जनी जननि सो धन्या।
६५ नाम अनूप रूपमंजरी, अंग अंग सुभ लच्छन भरी।
सो सोहति अस बैस कुमारी, हिमगिरि वर जनु हिमवत बारी।
लटकि लटकि खेलति लरिकाई, लरिकपने जनु भूपन पाई।
रूप मृगी की चंचल छौनी, पावन करति फिरति छवि औनी।
देखि रूप घन छाया करहीं, पसु-पंछी सब गोहन फिरहीं।
७० अस कछु लखिये लखन लपेटी, दुसरी मनहुँ समुद की बेटी।

ता भूपति के भवन कोउ, दीप न वारत साँझ।
विन ही दीपक दीप जिमि, दिपइ कुँवरि घर माँझ॥

सहज सुगंध साँवरी अलकैं, विन हि फुलेल उलेल सी झलकैं।
नीरस कवि जे रसहि न जानैं, व्याल वाल सम वाल वखानैं।
७५ भौंह जु चुभि रही मेरे मन ही, वालक मनमथ की जनु धनुही।
छूटी खुभी सुभी जगमगी, काम-कलभ जनु दँतिया उगी।
ऊजल हौन लगे अँग नीके, कंचन भूषन ह्वै चले फीके।
सव कोउ कहै कि अज हूँ हौनौ, अंग अंग मैं अब कछु टौनौ।
जब कोउ वा तन तनक निहारै, ताकौं निधरक पँचसर मारै।
८० लोग कहैं कोउ काम-पियारी, तनुजा आहि कि अनुजा वारी।
वाल बयस सँधि मैं छबि पावै, मन भावै, मुँह कहत न आवै।
नाहिंन उलहे उरज दरारा, पै मधि लुठन लग्यौ मोति हारा।
कुच अंकुर अंचल नहिं बलै, नैंनन माँझ लाज गहि चलै।
खेलत कान तहाँ दै रहै, जहँ कोउ काम-कथा कछु कहै।

गुड़ा-गुड़ी के ब्याह बनावै, लाज गहै जब सेज सुवावै। ८५

बाला बयसँधि, रूप जनु, दीप जग्यौ जग ऐन।
उड़ि उड़ि परत पतंग जिमि, नर-नारिन के नैंन॥

ब्याहन जोग जानि पितु-माता, कीनौ मंत्र बोलि सब ग्याता।
रूपवंत, गुनवंत, उदारा, सीलवंत, जसवंत, सु ढारा।
अस कोउ पैयै राजकुमारा, ताकौं दीजै इहै बिचारा। ९०
करि बिचार, निज बिप्र बुलायौ, बार बार सब बिधि समझायौ।
अहो बिप्र! धन लोभ न कीजै, या लाइक नाइक कौं दीजै।
लोभी द्विज कुबुद्धि अस कीनी, कूर कुरूप कुँवर कौं दीनी।
शत्रु भलौ जो होइ सयाना, मूरख मित्र जु अहित समाना।
सहस गुनन जु भरयौ नर आही, रंचक लोभ बिगारै ताही। ९५
कर मीड़ै, सहचरि पछिताई, कूर बिधाता कौंन बनाई।

सब जन जुरि चिंतन करत, परत न कछू बिचार।
कर्म करी, किधौं द्विज करी, किधौं करी करतार॥

तिय तन रूप बढ़न चल्यौ ऐसैं, दुतिया चाँद कलन करि जैसैं।
जुवन राउ जब उर-पुर लयौ, सैसव राउ जघन-वन गयौ। १००
अरन लगे जब दोउ नरेसा, छीन परयौ तब तिय मधि देसा।
तिय-तन सर, बालापन पानी, जोबन-तरनि किरन अधिकानी।
ज्यौं ज्यौं सैसव-जल थुरवाने, त्यौं त्यौं नैंन-मीन इतराने।
सो अग्यात जुवन वर बाला, राजति नख-सिख रूप रसाला।
सखि जब सर-स्नान लै जाही, फूले अमलन कमलन माही। १०५
तिय तन परिमल जब लखि पावैं, अंबुज तजि सब अलि चलि आवैं।

इंदुमनी जब भँवर उड़ावै, इंदुवदनि अन्हाँन तब पावै।
पौंछे डारनि रोम की धारा, नानति वाल सिवाल की डारा।
चंचल नैंन चलत जब कौने, सरद कमल दल हू तैं लौने।
११० निर्नाहि श्रवन बिच पकर्यौ चहै, अंबुज दल से लागैं, कहै।
नवला निकसति तीर जब, नीर चुवत बर चीर।
अँसुवन रोवत वसन जनु, तन बिछुरन की पीर॥
अब कछु ताकौ सहज सिँगारा, बरनौं जग-पातक छय-कारा।
गौर बरन तन सोभित ती कौ, औटे कंचन कौ रँग फीकौ।
११५ चंपक कुसुम कहा सरि पावै, बरन हीन, वास वुरी आवै।
उबटन उबटि अंग अन्हवाई, ओपी दामिनि लोपी माई।
सीस-पुहुप गूँथनि छवि ताही, मनौं मदन-मृग कानन आही।
बैनी बनी कि साँपिनि आही, बुरी दीठि देखै तिहिं खाही।
सोहत बैंदि जराइ की ऐसी, भाल भाग-मनि प्रगटी जैसी।
१२० भ्रुव-धनु देखि मदन पछितयौ, हर के समर समै किन भयौ।
अब याके बल करौ लराई, हरौ छिनक मैं हर-हरताई।
बालपने पग चंचलताई, अब चलि छविले नैंननि आई।
इत-उत चहनि-चलनि अनुरागे, बात करन कानन सौं लागे।
मोहियत दृगन के अचरिज भारे, चलहि आन तन आनहि मारे।
१२५ मृगज लजे, खंजन भजे, कंज लजे छबि छीन।
दृगन देखि दुख दीन ह्वै, मीन भये जल लीन॥
नासिक-नथ जनु मनमथ पासी, हाँसी हरि देव की माया सी।
मृदु कपोल छबि बरनि न जाही, झलकै अलक खुभी जिन माही।

अधर मधुर मधि रेख सु ढारी, अरुन पाट जनु पुई पवारी।

लसन जु हँसन दसन की जोती, को है दाड़िम को है मोती। १३०

चिबुक-कूप छबि उझकै जोई, जगत-कूप पुनि परै न सोई।

कंठ-लीक छबि पीक की धारा, फीक परी सब छबि संसारा।

छरा निबौरी दिखि भई बौरी, जगत ठगौरी जनु इकठौरी।

ससि समान जे बदन कराहीं, अस क्यौं कहौं कि तिन बुधि नाहीं

बांके नैंन मुसकि जब चहै, इह छबि ससि मैं कहहु कहाँ है। १३५

रूपमंजरी बदन-बिधु, बिधना जग मैं टेकि।

परसन बाढ़्यौ ससि नभसि, मानौं डारयौ छेकि॥

सुंदर कर राजत रँग भीने, एक कमल के जनु बिबि कीने।

मंडल दै जु उठे कुच दोऊ, आवै न उपमा आँखि तर कोऊ।

श्रीफल, कुंभ, संभु सम माने, सरस कबिन तेउ नहिं परमाने। १४०

तब कही सुख की रासि बिबि करी, रवनी उर-अवनी पर धरी।

रोमराजि अस देहि दिखाई, जनु उत तैं बैनी की झाँई।

किधौं नीलमनि किंकिनि माहीं, रोमावलि तिहि जोति की छाँहीं।

किधौं लटी कटि दिखि करतारा, रोमधार जनु धरयौ अधारा।

राजत कटि किंकिनी रसाला, मदन-सदन जनु बंदनमाला। १४५

पाइनि मनिमय नूपुर धुनी, कंज-पिंजर मनौं मनमथ मुनी।

चरन धरत जहँ जहँ तरुनि, अरुन होत सो लीह।

जनु धरती धरती फिरै, तहँ तहँ अपनी जीह॥

दुति, लावन्य, रूप मधुराई, कांति, रवनता, सुंदरताई।

मृदुता, सुकुमारता, जे गाई, नहिं जनियत इत कित तैं आई। १५०

द्युति तिय तन अस दीन दिखाई, सरद चंद जस झलमलताई।
ललना तन लावन्य लुनाई, मुक्ताफल जस पानिप झाँई।
त्रिन भूषन भूषित अँग जोई, रूप अनूप कहावै सोई।
निरखत जाहि नृपति नहिं आवै, तन मैं सो माधुरी कहावै।
१५५ ठाढ़ी होत अँगन जब आई, तन की जोति रहति छिति छाई।
राजति राजकुँवरि तहँ ऐसी, ठाढ़ी कनक अवनि पर जैसी।
देखत अनदेखी सी जोई, रमनीयता कहावै सोई।
सब अँग मिले सुठौन सुहाई, सो कहियै तन सुंदरताई।
परसत ही जनु नाहिंन परसी, अस मृदुता प्रमदा तन दरसी।
१६० अमल कमल-दल सेज बिछैयै, ऊपर कोमल बसन डसैयै।
ता पर सोवत नाक चढ़ावै, सो वह सुकुमारता कहावै।

रूपमंजरी छबि कहन, इंदुमती मति कौंन।
ज्यौं निरमल निसिनाथ कौं, हाथ पसारै बौन॥

सखि अस अद्भुत रूप निहारै, मूसति मन, कोसति करतारै।
१६५ कहति कि कछु इक करौ उपाई, ज्यौं इह रूप अफल नहिं जाई।
रस मैं जो उपपति-रस आही, रस की अवधि कहत कबि ताही।
सो रस जौ या कुँवरिहि होई, तौ हौं निरखि जियौं सुख सोई।
अै परि जौ या लाइक पैयै, सो नाइक दिखि आनि मिलैयै।
जाहि मिलत पुनि ऐसियौ रहै, दई अस नाइक कोऊ कहै।
१७० जहँ जहँ नर वर, सुर वर सुने, देखि फिरी अरु मन मन गुने।
देखत के सब उज्जल गोरे, हार काज नहिं आवत ओरे।

सुर-नर चाम के धाम सब, चुर्वाहि बीच बिकराल।
तिन मैं इह कैसैं बसै, छैल छबीली बाल॥
इक सुनियन सब लाइक नाइक, गिरिधर कुँवर सदा सुखदाइक।
हौं तिय निर्नाहि कौंन विधि पाऊँ, क्यौं या कुँवरिहि आनि मिलाऊँ। १७५
जाकौं संभु समाधि लगावै, जोगी जन मन हू नहिं आवै।
निगमहि निपट अगम जो आही, अबला किहि बल पावै ताही।
इक बौना, अरु नीचे आवै, ऊँचे फल कौं हाथ चलावै।
क्यौं फल पैयै दूरि निवासी, हेरनहार करैं सब हाँसी।
जो चढ़ि जानै सो फल पावै, कै फल आप दया करि आवै। १८०
इक दिन गिरि गोवर्धन जाई, गिरिधर पिय प्रतिमा दिखि आई।
तब तैं यौं उर-अंतर राखी, जो गुरुदेव दया करि भाखी।
साखा ढिंग ह्वै चंद बतैयै, सो सूच्छम, तब हीं लखि पैयै।
ये तौ वर उन हीं उनहारी, नहिं अचरिज हितु चहियै भारी।
सहचरि के चित चैन न परै, अनु दिन तिन सौं विनती करै। १८५
अहो पिय गिरिधर परम उदारा, करता हू के तुम करतारा।
भवसागर तरिबे कौं यह तरि, पाई हुती किहू क्रम क्रम करि।
सो तरि बूड़ति है मधि धारा, मोहनलाल लगावहु पारा।
निसि-दिन तिय विनती करति, और न कछू सुहाइ।
मन के हाथन नाथ के, पुनि पुनि पकरति पाइ॥ १९०
इक दिन सखि सँग राजकुमारी, पौढ़ी हुती कनक चित्रसारी।
सुपन माँझ इक सुंदर नाइक, पायौ कुँवरि आपनी लाइक।

तन-मन मिलि तासौं अनुरागी, अधर, सधर खंडन मैं जागी ।
लै सितकार, सखिहि घुरि गई, सहचरि निरखि ससंकित भई ।
१९५ क्यौं बलि बलि ! कहि छतियन लाई, दसा देखि अति संभ्रम पाई ।
भूत लगाइ मनू है आई, कै कछु कूर ग्रह गत माई ।
यह संसार असार अपारा, तामैं तनक हुती आधारा ।
अब किहि धरिहौं, परिहौं पारा, बैर परचौ पापी करतारा ।
प्रात उठी तिय ललित लजौहीं, चितइ न सकै सहचरी सौंहीं ।
२०० पूछति प्यार भरी सखि ग्याता, कहि बलि आज कहा इह बाता ।
लोयन लौने, ललित लजौने, चलि-चलि हँसत ह्वै कानन कौने ।
देखति हौं बलि नहिं तुव बस के, जस कहुँ प्रीतम रस के चसके ।

को अस सुकृती जगत मैं, जो निरख्यौ इन नैंन ।
मो हिय जरत जुड़ाइ बलि, सींचि अमी रस बैन ॥

२०५ जब अति सखिन बूझनी लई, तब हँसि कुँवरि गोद लुठि गई ।
बात कहन कछु मन ह्वै आवै, बहुरि लजाइ जाइ, छबि पावै ।
कुँवरि कौ अस सुंदर मुख रहै, मुख तैं बात न निकस्यौ चहै ।
निरखि सहचरी कौ अति तपनौ, कहन लगी तब अपनौ सपनौ ।
एक ठाँउ इक बन है जानौं, ताकी छबि हौं कहा बखानौं ।
२१० आनंहि रंग पुहुप मैं देखे, अपनी बारी नहिं तस पेखे ।
औरहि भाँति भँवर रव राजैं, ठौर ठौर कछु जंत्र से बाजैं ।
रूखन देखि भूख भजि जाई, यह उपखान साँच है माई ।
रटहिं विहंगम इमि मन हरैं, जनु द्रुम आप मैं बातै करैं ।
गहवर कुंज-पुंज अति सोहै, मनिमय मंडप छबि तहँ को है ।

पुहुप विनान बान अस बाने, चंद चवाँडे के जनु ताने। २१५
तिन तर सेज सु पेसल ऐसी, आलवाल रति बेली जैसी।
नीली नदी निकट ही वही, फूल फूलि नव अंबुज रही।
इक अंबुज तिन तोरि कै, दीनौ मेरे हाथ।
सूँघन सूँघत ताहि हौं, चली अली के साथ॥
तामैं अस कछु बास सुहाई, सूँघन मोहिं आँघ सी आई। २२०
तू जनु आगे तैं कछु भई, हौं इकली ठाढ़ी रहि गई।
चकित भई परि भय नहिं पाई, द्रुम बेली कछु मीत से माई।
इन तैं इक कोउ नव किसोर सौ, मनमथ हू के मन कौ चोर सौ।
मुसकत-मुसकत मो ढिंग आयौ, नैंनन मैं कछु चौंध सौ लायौ।
मोहिं हँसि बूझन लाग्यौ तहाँ, इंदुमती तेरी सहचरि कहाँ। २२५
हौं लजाइ मुरि रही अबोली, बहुत करी पै नाहिंन बोली।
तब इक सुसम कुसम लै माई, मो कपोल पै ऐंचि लगाई।
मन जनु उन हीं सौं अनुराग्यौ, गुरुजन डर डरि चोर सौ भाग्यौ।
मधुर बचन लगि आँच सुहाई, धीरज-राग सो ढरक्यौ माई।
आगे सुधि-बुधि रही न मोहीं, कह हौं वरनि सुनाऊँ तोहीं। २३०
गड़्यौ जु मन पिय प्रेम-रस, क्यौं है निकस्यौ जाइ।
कुंजर ज्यौं चहले पर्‌यौ, छिन छिन अधिक समाइ॥
सखि कहै वारि फेरि हौं डारी, रंचक कहि बलि पिय उनहारी।
जिन लच्छनन ढूँढि हौं पाऊँ, अपनी प्यारिहि तुरत मिलाऊँ।
कहति है कुँवरि मुसकि मधु वानी, किन पैयत या सपन कहानी। २३५
बातन बिंजन कौंन अघाये, काके हाथ मनोरथ आये।

मृगतृष्ना कव पानी भई, काकी भूख मन लड़ुवन गई।
तव बोली सहचरि मुख-दाता, क्यौं कहियै वलि ऐसी वाता।
जो अनुकूल होइ करतारा, सपने साँच करत नहिं वारा।
२४० मृगतृष्ना हू पानी करै, मन के लड़ुवन भूख पुनि हरै।
इक हुती ऊषा मेरी अली, सपने काम कुँवरि सौं मिली।
ऐसैं लच्छन जौ लखि पाई, तौ सखि सौं सव बात जनाई।
ताकी सखी विचित्र चित्ररेखा, गई द्वारिका सूछम भेखा।
बुधि ही बुधि अनिरुध लै आई, परतछ आनि कै उषा मिलाई।
२४५ ऐसैं ही जौ तोहिं मिलाऊँ, इंदुमती तौ नाम कहाऊँ।

प्रेम बढ़ावहि छिनहिं छिन, बूझि बूझि उनहारि।
ज्यौं मथि काढ़ी अग्नि कन, क्रम-क्रम देत पजारि॥

कुँवरि कहै सखि किहि विधि कहियै, रूप वचन करि नाहिन लहियै।
रूप कौ रस जानैं ये नैंना, तिनहिं नहिंन दीने बिधि बैना।
२५० अरु वह रूप अनूपम जेतौ, नैंनन गह्यौ गयौ नहिं तेतौ।
ज्यौं सुंदर घन स्वाति कौ माई, चातक चंचु पुटी न समाई।

कह्यौ चहति पुनि नहिं कहति, रहति डरपि इहि भाइ।
मोहन मूरति हीय तें, कहत निकसि जिनि जाइ॥

चटपटि परी सहचरी हिये, पूछति बहुरि बलैया लिये।
२५५ कहन लगी तव पिय उनहारी, राजति लाज सौं राजकुमारी।
स्याम बरन तन अस रस भीनौ, मरकत रस निचोइ जस कीनौ।
मोर चंद सिर अस कछु लौनौं, मानौं अली टटावक टौनौं।
सोहत अस कछु बाँकी भौंहीं, मो मन जानै, कै पुनि हौं हीं।

चुनि-चुनि मरद कमल दल लीजै, तिन कौं मोती पानिप दीजै।
ता मोहन के नैंनन आगे, अलि ! तेऊ अति फीके लागे। २६०
नासिक मोती जगमग जोती, कहत जु मो मति होती ओती।
पीत बसन द्युति परत न कही, दामिनि सी कछु थिर ह्वै रही।
लाल के लाल कछनि छवि ऐसी, लाल निचोइ रँगी होइ जैसी।
मुरली हाथ सुहाई माई, विनहिं बजाये राग चुचाई।
ताके रूप अनूप रस, बौरी हौं मेरी आलि। २६५
आज तनक सुधि परत दै, सबै कहौंगी कालि ॥
सुनतहि मुरझि परी सहचरी, आनँद भरी, अचंभे भरी।
बड़ी बेर जागी अनुरागी, मन ही माँझ कहन यौं लागी।
कहँ हौं कुटिल, कुचील, कुहिय की, कहँ यह दया साँवरे पिय की।
अनेक जन्म जोगी तप करै, मरि-पचि चपल चित्त कौं धरै। २७०
सो चित लै उहि ओर चलावै, तौ वह नाथ हाथ नहिं आवै।
जब गोपिन कौ सौ हित होई, तब कहुँ जाइ पाइयै सोई।
कवन पुन्य या तिय के माई, नंद सुवन पिय सौं मिलि आई।
निरवधि रमा-रमन विश्रामा, तामैं वसी, लसी यह भामा।
ब्रज जुवतिन कौ दरपन जोई, तामैं मुँह झकि आई सोई। २७५
सहचरि भूली सी रहै, फूली अँग न समाइ।
अंध रहै चकचौंधि जिमि, सुंदर नैंनहि पाइ ॥
कुँवरि कहति है सजनि सयानी, सुपन की बातन क्यौं मुरझानी।
सखि कहै बलि इह सुपन न होई, सत्य आहि अब सुनि लै सोई।
तेरौ रूप अनूप सुभाइक, जान्यौ जात बिरथ बिन नाइक। २८०

तब मैं इह इक देव मनायौ, सो बलि तो कौं सुपने आयौ।
बहुतन बहुत भाँति तन तायौ, पै इहि नाइक बिरलै पायौ।
देखि कै बलि तुव भागि बड़ाई, तातैं मोंहि मुरझाई आई।
मुसकि कुँवरि सहचरि सौं कहै, तौ वह देव कहाँ है रहै।
२८५ सखि कहै बलि जिहि बन तैं पायौ, ते ही बन इक गाँउ सुहायौ।
गोकुल गाँउ, जाउँ बलिहारी, जगमगाइ छबि जग तैं न्यारी।
तहँ कौ गोप नंद बड़ राजा, सदा सरबदा एकहि साजा।
जसुमति रानी सब जग जानी, भाग-भरी, सुर-नरन बखानी।
रमा, उमा सी दासी जाकी, ठकुराइत का कहियै ताकी।
२९० तिन कौ सुत सो कुँवर कन्हाई, ताकी छबि तू दिखि ही आई।

तिय-हिय दरसन, तन रुई, रही हुती पुट पागि।
प्रीतम तरनि किरनि परसि, जागि परी तन आगि॥

निरबिकार तिय हिय मैं सपने, उपज्यौ भाउ सुभावहि अपने।
प्रथमहि पिय सौं प्रेम जु आही, कबि जन भाउ कहत हैं ताही।
२९५ रूपमंजरी तिय कौ हियौ, गिरिधर अपनौ आलय कियौ।
इंदुमती तहँ अति अनुरागी, ताही मैं प्रभु पूजन लागी।
जहँ जहँ जो कछु उत्तम पावै, सो सब आनि कै ताहि चढ़ावै।
बान बनावै, पान खवावै, मंद हिलौर हिँडौर झुलावै।
छिन छिन भाउ बढ़त चल्यौ ऐसैं, सरद द्वैज ससि कलान जैसैं।
३०० भाउ बढ़यौ क्यौं जानियै सोई, और बस्तु कौं ठौर न होई।
भाउ तैं बहुरि हाउ छबि भई, सहचरि निरखि बलैया लई।
रूप-जोति सी लटकति डोलै, सब सौं बचन मनोहर बोलै।

अँग अँग प्रेम-उमँग अति सोहै, हेम छरी जराइ जरी को है।
नैंन बैन जब प्रगटैं भाउ, ताकौं सु कबि कहत हैं हाउ।
हाउ तैं बहुरि जु उपज्यौ हेला, सखि कहुँ परम अमी रस रेला। ३०५
वार वार कर दरपन धरै, कुंतल हार सँवारयौ करै।
अति सिंगार मगन मन रहै, ताकौं कवि हेला छवि कहै।
ता पाछे उपजी रति नई, सखिन वारि मनिमाला दई।
उचित सु धाम-काम तौ करै, जानै नहीं कवन अनुसरै।
भूख पियास सबै मिटि गई, खाइ कछू गुरुजन की लई। ३१०
मन की गति पिय पै इक ढारा, समुद मिली जैसैं गंग की धारा।
डभकि दै नैंन नीर भरि आवै, पुनि सुखि जाइ, महा छवि पावै।
पुलकि अंग सुर-भंग जनावै, बीच-बीच मुरझाई आवै।
बिबरन तन अस देइ दिखाई, रूप-वेलि जैसैं घाँम मैं आई।
तनक बात जौ पिय पै पावै, सौ विरियाँ सुनि तृपति न आवै। ३१५

रूपमंजरी तिय हियहि, पिय झलकै इमि आइ।
चंद्रकांत मनि माँझ जिमि, परम चंद्र की झाँइ॥

प्रगट मिलन कौं अति अरबरै, रहसि बैठि तिय जतनन करै।
दरपन लै उर आगे धरै, मति इहाँ झाँईं पिय की परै।
बाल अर्क सम विरह जनायौ, तिय तन तनक तप्त ह्वै आयौ। ३२०
आन के ढिंग उसास नहिं लेहि, मूँदे मुँह तिहिं उत्तर देहि।
तपत उसासन जो कोउ लहै, बाल बिरहिनी का तब कहै।
जौ कोउ कमल फूल पकरावै, हाथ न छुवै निकट धरवावै।
अपने कर जु बिरह जुर ताते, मति मुरझाहि डरति तिय याते।

३२५ सहचरि मन मैं करै विचारा, कह कीजै अब हो करतारा।
यह अब प्रगट पीय कों चहै, निगमहि अगम, सु निकट न अहै।
मन मन बूझै सहचरी, सूझै नहिं कछु और।
उड़त नाउ के विहँग जिमि, फिरि आवै तिहि ठौर॥
ऐसैं ही पावस रितु आई, सहचरि निरखि महा भय पाई।
३३० धुँधरी दिसन देखि भय बढ़ी, मैन सैन खुर रेनु सी चढ़ी।
पावस गहरी गाजनि सुनी, जनु कंदर मैं केहरि-धुनी।
सखी अंक मैं दुरि गई ऐसी, मृगी अंक मृगछौनी जैसी।
उमगे वादर कारे कारे, वड़रे वहुरि भयानक भारे।
घुमड़नि, मिलनि देखि डर आवै, मनमथ मानौं हथी लरावै।
३३५ पवन महावत लै लै धावै, अंकुस-छटन छोह उपजावै।
भामिनि भागि भवन दुरि जाई, गिरि पर है कोउ कुंजर माई।
घन में तनक जु पिय उनहारी, तिहि लालच देखै वर नारी।
बगन की माला, नैंन बिसाला, मानत पिय उर पंकज माला।
दामिनि दमक देखि दृग नावै, पिय पट पीत छोर सुधि आवै।
३४० दिन तौ इहि अवलंब वरावै, रैनि में रवनि महा दुख पावै।
घन हर घोरै पवन झकोरै, दादुर झींगुर कानन फोरै।
पटबिजना तहँ अधिक सतावै, घटन तैं उछटि चिनग जनु आवै।
पुनि तहँ पापी पपिहा दहै, तासौं इंदुमती इमि कहै।
अरे सकुनि! बिन अगिनि दहै रे, वंचक रंचक चुप कै रहै रे।
३४५ मरत तृषा बरषा बरषे ही, सो तौ सठ पातक तोइ ये ही।
कुँवरि कहै सखि को यह आही, पिउ पिउ बोलत बरजत नाही।

सखि कहै बलि इक पंछी रहै, भाषा इहै जु पिउ पिउ कहै।
अैं परि याकौ नेम सुनहि जौ, लाड़िली लागि अचरज रहै नौ।
जब कबहूँ घन स्वाति न बरसै, तौ जरि जाइ चंचु जल परसै।

×प्रेम एक, इक चित्त सौं, एकहि संग समाइ। ३५०
गंधी कौ सौदौ नहीं, जन जन हाथ बिकाइ॥

कुँवरि कहै कछु साँच है अली, किधौं सुपन की सुपनहि मिली।
सखी कहै बरषा रितु बीतै, तब हौं आनि मिलाऊँ मीतै।
अब निसि-दिन घन बरस्यौ करै, ऊँच-नीच कछु सुधि नहिं परै।
बाट घाट तृन छादित ऐसैं, अभ्यास बिन बलि बिद्या जैसैं। ३५५
अरु बलि जाउँ कहै सब कोई, धीरे धीरे सब कछु होई।
कवन भाँति धन धीरज धरै, अवा-अगिनि जिमि अंतर जरै।
सब निसि प्रान निहोरत बीतै, का कहियै, दुख या दुख ही ते।
राजकुँवरि जब अति दुख पावै, सहचरि लै तब बीन बजावै।
पानी होइ तौ जाइ सिराई, घी सींची किन आगि सिराई। ३६०
पिय मूरति जु आनि उर अरै, कामिनि कलमल-कलमल करै।

सूधौ जौ कछु उर गड़ै, सो न कढ़ै, दुख होइ।
ललित त्रिभंगी जिहि गड़ै, सो दुख जानै सोइ॥

जबहिं सरद रितु आई जानी, कुँवरि सहचरी तन मुसकानी।
सखि कहै बलि मैं पठये चारा, आज काल्हि ऐहै समाचारा। ३६५
कुँवरि कहै सु कवन दिसि अहै, जहँ वह साँवरौ प्रीतम रहै।
जो दिसि हाथ कै सखिन बताई, सो दिसि जीवन मूरि सी पाई।
पंकज पत्रन परब बनावै, उड़न लगै, सो क्यौं उड़ि आवै।

मन सौं कहै कुटिल तू आही, इकलौ ई उड़ि पिय पैं जाही।
३७० रंचक नैंनन हू मँग लै रे, मोहन मुख दिखि आवन दै रे।
साँवरे पियहि सुमिरि बर बाला, भरहि उसास दुसास बिहाला।
ते उसास अस अगिनि की उखी, कुँवरि कि देवी ज्वालामुखी।
अंजन बिन दिखि नैंन सुहाये, खंजन दुरे कहूँ तैं आये।
देखि कुँवरि कौ बदन उदास, इंदु मुदित ह्वै उदित अकास।
३७५ निरखि मलिन मुख,नलिन अति, फूले सब इकसार।
बैरी चीत्यौ जगत मैं, तू जिनि करि करतार॥
द्वैज चंद दिखि भै भरि भारी, उगी गगन जनु काम कटारी।
टूटहि तार कि अँगार बगावै, काम भूत जनु मोहिं छरावै।
पुनि पूरन ससि कौं दिखि डरी, आवत मैन लिये जनु फरी।
३८० कवन समै आयौ यह सजनी, इंदु अनल बरसै सब रजनी।
भली करहिं जौ इन दिन माहीं, प्रानपियारे आवहिं नाहीं।
कुँवरि कहति सखि या ससि राँड़ै, राहु राउ क्यौं गिलि गिलि छाँड़ै।
सखि कहै राहु अमृत जब पियौ, तेरे कंत खंड बिवि कियौ।
उदर नहिन जामैं यह पचै, निकसि निकसि बिरही जन तचै।
३८५ कुँवरि कहै दुख खंडन माई, जरा आनि किन लेहि जुराई।
कै अहरनि पर धरि मुकर, सु कर लौह घन लेइ।
जब हीं आनि परै तहाँ, तब हीं ता सिर देइ॥
इमि इमि करतहि हिम रितु आई, तामैं तरनि तरुन दुखदाई।
बड़ि बड़ि रैन तनक से दिना, क्यौं भरियै पिय प्यारे बिना।
३९० जाड़ राँड़ जब अलि तन दहै, साँवरे उर घुरि सोयौ चहै।

नैन मूँदि निसि नींद न आवै, मनि वह सुपन बहुरि हू आवै।
नींद न आवै तब कहै दई, नींद मनौं कहुँ मोइ है गई।
अति सिसु-जोबन कैसें रहै, प्रीतम अधर-दूध कौं चहै।
विलपति देखि दया जब आवै, भरि भरि नैंनन नीर पियावै।
कब हूँ मृगमद लै मृगनैंनी, रहसि बैठि रचि मूरति मैनी। ३९५
मीन करै, कर साइक धरै, पाइनि परि परि बिनती करै।
अहो अहो मैन ! देव तुम बड़े, जाके सर सिव के उर गड़े।
ते सर छाँड़त अबलन माहीं, पुरुप राउ इह पौरुप नाहीं।

तिय तन बितन जु पंच सर, लगे पंच ही बाट।
चुंबक साँवरे पीय बिन, क्यौं निकसत यह नाट ॥ ४००

हिम रितु बीति, सीत रिति आई, भीत भई जस बाघ तैं गाई।
इक दिन तिय निज जिय सौं कहै, इहि तुपार तू क्यौंहुँ न रहै।
बिधि सौं पूत, मीत रबि ताकौ, जल सौं जनक, जगत जस जाकौ।
सो अंबुज इहि हिम रितु जारचौ, इतने माँझ न किन हुँ उवारचौ।
तू को आहि, हितू को तेरौ, एक मित्र, सो नाहिंन नेरौ। ४०५
पुनि सहचरि करि बचन सँभारा, बोली मुलकि सुधा की धारा।
कहति कि तू जौ पावस बीतै, तब हौं आनि मिलैहौं मीतै।
पावस बीति सरद रितु बीती, हिम रितु बीती सीत समीती।
अब बसंत रितु आगम आयौ, कापै जैहै जीउ जिवायौ।
बितन बसंत सखा दोउ ऐसैं, पावक पवन मिले जग जैसैं। ४१०

अकथ कथा, मनमथ बिथा, तथा उठी तन जागि।
किहि बिधि राखै, क्यौं रहै, रुई लपेटी आगि ॥

तब हीं लोगन होरी धरी, सुनतहि निपट सहचरी डरी।
चाचर दैन लगे नर-नारी, बाजत डफ, अरु करतल तारी।
४१५　पटनागनि रँग अस उनजायौ, फाग मनौं पहपटिया आयौ।
बन-बन फूले फूल सुहाये, मानौं सिगरे लोग हँसाये।
कुँवरिहि साथिन खेलन जाई, होरी खेलन खेलैं माई।
खेलन चली नवीन किसोरी, होरी कहै धन्य हौं होरी।
रँग-रँग रली, चली सँग अली, छबि सौं छिरकत पुर की गली।
४२०　कंठनि हीरा आनन बीरा, पाइनि बाजत मंजु मँजीरा।
छबि सौं छुटइ कनक पिचकाई, मनौं मैन फुलभरी सुहाई।
बाजहिं सुरमंडल, डफ, बीना, ताल, पखावज, आवज भीना।

रँग-रँग छिरके बसन बर, बरनत बनत न बात।
जानौं रति ब्याहन रहसि, आई बितन बरात॥

४२५　भरहिं परसपर नर अरु नारी, ठाढ़ी निरखै राजकुमारी।
किहि छिरकै, कापै छिरकावै, पुरुष न कोउ आँखि तर आवै।
दिनमनि जगमगाइ ढिंग जाके, दीपक कहा आँखि तर ताके।
नगर के लोग सबै बड़ भागे, मिलि ब्रज-लीला गावन लागे।
तिन मैं गिरिधर पिय उनहारी, चकित भई सुनि राजकुमारी।
४३०　माथे मोर के चंदा सुने, कुँवरि के मन मैं धुन जिमि धुने।
मुरली पीत बसन जब गाये, चपरि कै चपल नैंन भरि आये।
सखि तन कुँवरि कनखियन चहै, मन मन मुरझै अरु इमि कहै।

इक तौ गिरिबरधर कुँवर, मेरे प्रीतम जौंन।
जाकौ गावति ये जुवति, सो गिरिधर धौं कौंन॥

इक कोउ नारि निकट जगमगी, ताहि कुँवरि दुरि पूछन लगी। ४३५
सुंदर गीत सुहावने माई, काके हैं ? को कुँवर कन्हाई ?।
सो सब कहन लगी व्यवहारा, जाकौ है इह सब संसारा।
धर, अंबर, ससि, सूरज, तारे, सर, सरिता, साइर, गिरि भारे।
हम, तुम, औ सब लोग-लुगाई, रचना तिन हीं देव बनाई।
बहुरि कुँवरि हँसि तासौं कहै, तौ वह देव कहाँ है रहै। ४४०
तब तिन मैं कोउ और सयानी, बोली परम मनोहर बानी।
वह देखै, उहि लखै न कोई, पंडित कहहि कि सब ठाँ सोई।
ज्यौं बलि दिप्टि कुंभ कौं देखै, कुंभ तौ नहिंन दिप्टि कौं पेखै।
कुंभ के दिप्टि होइ जब माई, तब भलैं दिप्टि देइ दिखराई।
औ परि कबि इक ठौर बतावै, जाकी बलि ये गाथा गावै। ४४५
गोकुल गाँउ कहैं इक कोई, तामैं बसत सदा सखि सोई।
नंद पिता जसुमति है माता, गिरिधर लाल जगत बिख्याता।

सो सखि मुख,अरु सुपन सुख, सोई सुनि जग जागि।
कितहिं बुझावै का करै, तिहि धर तेती आगि॥

फिरि गये नैंन मूरछा आई, सहचरि दौरि कै कंठ लगाई। ४५०
घिरि आईं तिय लेइ बलाई, कहा भयौ या कुँवरिहि माई।
चतुर सहचरी बात बरावै, टेव है याहि मूरछा आवै।
कह जानौं कछु छाया पाई, दूध भात घर खाइ ही आई।
साथिनि हाथन-पाइन मींजै, पुनि पुनि इंदुमती पर खीजै।
जुवति कहै जिहिं देखैं जीजै, नागर नगधर ! नीकी कीजै। ४५५
सब कोउ कहै दीठि इहि लागी, निपट अनूप रूप-रस पागी।

घैर तैं डरपि सखी घर लाई, घर हू बड़ी बेर सुधि आई।

भूत छुयैं, मदिरा पियैं, सब काहू सुधि होइ।

प्रेम-सुधा-रस जो पियैं, तिहिं सुधि रहै न कोइ॥

४६० बात सुनत जननी उठि धाई, बाछी पर जस आछी गाई।

इंदुमती पैं अति रिसिआई, आलि काल्हि तैं कहाँ खिलाई।

चतुर सहचरी बात दुरावै, बात की बात मात नहिं पावै।

मोहिं बरजत बहेर तर गई, ना जानौं कछु तहँ तैं भई।

छती लगाइ जननि अस कहै, कौंन भूत जो तो तन चहै।

४६५ गोकुलनाथ कौ पूत हमारे, भूतन के भूतन धरि मारे।

इक पहिले यौं अबुध ह्वै रही, पुनि निज मात बात अस कही।

जस कोउ मिरा-मत्त इक आही, तामैं भूत लगै पुनि ताही।

बहुरि नारि निवारि सी लई, जननी निरखि ससंकित भई।

भूतावेस अवसि है माई, दौरौ कछु इक करौ उपाई।

४७० सखि कहै, काहु बोलि किन आनौं, एक मंत्र अस हौं हूँ जानौं।

कहति है दुख अकुलानी रानी, तब लगि तू ही झारि सयानी।

कान लगी सहचरि कहै, जागि छबीली बाल।

वे आये, उठि, देखि बलि !, मोहन गिरिधर लाल॥

उठि बैठी भई राजकुमारी, ढिँग बैठी देखी महतारी।

४७५ मा तन चितै निपट लजि गई, जानी हौइ बात जिनि दई।

निरखि सुता कौ सहज सुभायौ, जननी जठर जीउ तब आयौ।

सहचरि निपट सयानी जानी, रानी तिहि छिन अति सनमानी।

उर तैं काढ़ि हार पहिराई, हित अनहित सब बात जनाई।

सखि कहै मोहिं दोस कछु नाहीं, निपट अनूप रूप इन माहीं।
छिन-छिन माहिं दिष्टि ह्वै जाई, छिन नीकी छिन ही मुरझाई। ४८०
सोंधौ याके अँग न लगाऊँ, फूल फुलेल न मूड़ चढ़ाऊँ।
दरपन देखन दैउँ न सौंहीं, डरौं आपनी डीठि तैं हौं हीं।
मा कहै मेरी कौ रूप सुभाइक, सुंदर गिरिधर लाल के लाइक।
अै परि अपनौ कर्म री माई !, भुगते बिन कोउ तीर न जाई।
बिहँसि कुँवरि जनु हिय घुरि जाई, जनु याही मैं कुँवर कन्हाई। ४८५

हौं जानौं पिय मिलन तैं, बिरह अधिक सुख होइ।
मिलते मिलियै एक सौं, बिछुरे सब ठाँ सोइ॥

ता पाछे बसंत रितु महा, आई सो दुख कहियै कहा।
ता मैं मैन नृपाई पाई, पिक बोली जनु फिरत दोहाई।
किंसुक कलिन देखि भय पाई, नहार(नाहर?)की सी नह रे माई। ४९०
राती राती रुधिर भरी सी, बिरही जन उर ह्वै निकरी सी।
सब बन फूल फुलि अस भयौ, आनि अनंग राउ जनु छयौ।
बड़रे कुंज महल से बने, ऊँचे द्रुम बितान जनु तने।
बन बाहिर जु कुंज छुट छुटी, ते जनु उठी नटिन की कुटी।
इकले घूमत तर अस सँधे, मनौं मदमाते हाथी बँधे। ४९५
एक राउ आखेटक चढ़्यौ, बिरही मृग मारन रिस बढ़्यौ।
पुहुप कौ चाप, पनिच अलि लिये, पाँच बान पाँचौ कर लिये।
सोषन, दहन, उचाटन, छोभन, तिन मैं निपट बुरौ संमोहन।
त्रिगुन पवन तुरंग चढ़ि धायौ, दलमलि देस कुँवरि ढिंग आयौ।
रूपमंजरी दिखि हँसि परी, बदन सुबास निकसि अनुसरी। ५००

सो सुवास जब भौंरन पाई, टूट पनिच सब तहँ चलि आई।
इतने हि माँझ उबरि गई माई, नातर मार, मारि तिहिं जाई।
कुसुम धूरि धूँधरि दिसा, इंदु उदय रस पौन।
कुहु-कुहु जौ कोइल करै, बिरही जीवै कौन॥
५०५ तातैं बहुरि जु ग्रीपम आई, अति भीपन कछु बरनि न जाई।
'बड़रे तपत, पहार से दिना, क्यौं भरिहैं पिय प्यारे बिना।
दुपहरि तहँ डाइन सी आवै, ताहि निरखि तिय अति दुख पावै।
बाल के बालक जिय कहुँ चहै, कब लगि बाल दुकाये रहै।
अति निदाघ मैं अस सुधि नाहीं, दादुर रहत फनी फन छाँहीं।
५१० तातैं सतगुन बिरह की आगी, रूपमंजरी तन-मन लागी।
चंदन चरचे अति परजरै, इंदु किरन घृत बुंद सी परै।
घनसारहि दिखि मुरझति ऐसैं, मृगीवंत जल दरसै जैसैं।
हार के मुतिया उर झर माहीं, तचि-तचि तरकि लवा ह्वै जाहीं।
दिखि दिखि इंदुमती अरबरै, थोरे जल जिमि मछरी फिरै।
५१५ सहचरि अति अकुलानी जानी, करत सँबोध कुँवरि मृदु बानी।
कत सोचति सखि तू बड़ ग्याता, तू जस आहि, अस न पितु-माता।
दोस न तेरौ, दोस न मेरौ, यह सब दोस बिधाता केरौ।
अब मो पै छिन जियौ न जाई, जो हौं कहौं सु करहि री माई।
सुंदर सुमनन सेज बिछाई, अरगज मरगज डसनि डसाई।
५२० चंदन चरचि, चंद उगवाई, मंद सुगंध समीर बहाई।
पिक गवाइ, केकी कुहकाई, पपिहा पै पिउ पीउ बुलाई।
मधुर मधुर तू बीन बजाइ, मोहन नंद-सुवन गुन गाइ।

यौं कहि कुँवरि ग्रीव जब मोई, थरहराइ तब सहचरि रोई।
कहत कि अहो अहो गिरिधरलाल, प्रभु तुम कैसैं दीनदयाल।
मछरी उछरि पुलिन जौ परै, जल जड़ तदपि दया अनुसरै। ५२५
बूड़त बूड़ि गहै जौ कोई, ताहि वहत गहि राखै सोई।
तुम सब लाइक, त्रिभुवन नाइक, सुखदाइक, सुभ-करन सुभाइक।
अरु तुमहूँ अपने मुख कही, सो सब पूरि रही है मही।
जिहि-जिहि भाँति भजै जो मोहि, तिहि-तिहि विधि सो पूरन होहि।
इतनी कहत कुँवरि उँघवानी, सहचरि दौरि उसीसा आनी। ५३०
दै उसीस पर सुंदर वाँहीं, सुंदरि सोइ गई सुख माहीं।
जो देखै तौ वह बन आही, सुपन की संपति सब अवगाही।
जमुना पुलिन कलपतरु तरे, ठाढ़े कर कल बंसी धरे।
देखे मोहन गिरिधर पिया, साँवरे जगत-सदन के दिया।
पियहि निरखि तिय लज्जित भई, सखि पाछे आछे दुरि गई। ५३५
हँसत-हँसत पिय तिहि ढिंग आये, काम तैं कोटिक ठाम सुहाये।
सखि सौं वह लपटनि अलवेली, अरुभी हेम प्रेम जनु बेली।
ताही के रस ताहि मनावै, मोहन लाल महा छवि पावै।
बनिता-लता सहज सुखदाई, ऐंचे सरस निरस ह्वै जाई।

नेह नवोढ़ा नारि कौं, बार बार कन्याइ। ५४०
थलराये पै पाइयै, निरपीड़े निरसाइ॥

बोलि बोलि मादक मधु बानी, कुँवरि निहोरि कुंज मैं आनी।
का कहियै तिहि कुंज निकाई, जनु सुख पुंजन ही करि छाई।
तामैं सेज सु पेसल ऐसी, आलबाल रति बेली जैसी।

५४५ कछु छल, कछु बल, कछु मनुहारी, लै वैठे तहँ कुंजविहारी।
मन चहै रम्यौ, रु तन चहै भग्यौ, कामिनि कौं यह कौतुक लग्यौ।
जो पारद कौं कर थिर करै, सो नवोढ़ बाला उर धरै।
पुहुपन ही के दीपक जहाँ, जगमगि जोति लागि रही तहाँ।
प्रथम समागम लज्जित तिया, अंचल पवन सिरावत दिया।
५५० दीप न बुझै बिहँसि वर वाला, लपटि गई पिय उरसि रसाला।
भोजन भूख मिलत ही लहै, अै परि इन सरि परत न कहै।
प्रेम पुलक अंकुर तिहि काला, सो अंतर सहि सकति न वाला।
चित विवधान सहति नहिं सोई, रूपमंजरी अस रस भोई।
चुंवन समय जु नासिका, वेसरि मुती डुलाइ।
५५५ अधर छुड़ावन कौं मनौं, पिय की हाहा खाइ॥
सब निसि के जागे अनुरागे, रंचक सोइ गये उर लागे।
तब हीं भोर के लच्छन भये, तार हार सियरे ह्वै गये।
दीपक फीके, फूल ऐलाने, परकिय तियन के हिय अकुलाने।
कुरकुट सुनि चुरकुट भई वाला, लीने उससि उसास बिसाला।
५६० जात न उठि लपटात सुठि, कठिन प्रेम की बात।
सूर उदोत करौत सम, चीरि किये विवि गात॥
जागि कुँवरि अपने घर आई, अपने गौने कुँवर कन्हाई।
सेज तैं उठी सुरति रस माती, सखि तन मधुर मधुर मुसकाती।
सगबगि अलकैं श्रमकन झलकैं, सोभित पीक भरी दृग पलकैं।
५६५ राजत नैंन पीक रस पगे, हँसि हँसि हरि प्रीतम मुख लगे।
फूल माल जो पिय पै पाई, कुँवरि के कंठ चली सो आई।

तब तैं रूपमंजरी बाला, छिन-छिन औरै रूप रसाला।
पारस परसि पितल होइ सौनौ, पाहन तैं परमेसुर हौनौ।
तिहूँ काल मैं प्रगट हरि, प्रगट न इहि कलिकाल।
तातैं सपने ओट दै, भेंटे गिरिधर लाल॥ ५७०
जो वांछति ही रैनि दिन, सो कीनी करतार।
महा मनोरथ-सिंधु तरि, सहचरि पहुँची पार॥
इहि बिधि कुँवरि रूपमंजरी, सुंदर गिरिधर पिय अनुसरी।
इंदुमती ताकी सहचरी, सो पुनि तिहि संगति निस्तरी।
तिन की इह लीला रस भरी, 'नंददास' निज हित कै करी। ५७५
जो इह चित दै सुनै-सुनावै, सो पुनि परम प्रेम पद पावै।
जदपि अगम तैं अगम अति, निगम कहत हैं जाहि।
तदपि रँगीले प्रेम तैं, निपट निकट प्रभु आहि॥
कथनी नाहिंन पाइयै, पैयै करनी सोइ।
बातन दीपक ना बरै, बारे दीपक होइ॥ ५८०

बिरहमंजरी

परम प्रेम उच्छलन कौं, बढ़्यौ जु तन-मन मैन।
ब्रज-बाला बिरहिनि भई, कहति चंद सौं बैन॥
अहो चंद! रस-कंद तुम, जात आहि उहि देस।
द्वारावति नँद-नंद सौं, कहियौ बलि संदेस॥
५ चले चले तुम जैयौ तहाँ, बैठे हौंइ साँवरे जहाँ।
निधरक कहियौ जिय जिनि डरौ, हो हरि! अब ब्रज आवन करौ।
तुम बिन दुखित भई ब्रज-बाल, नागर, नगधर नँद के लाल।

पूर्व पक्ष

प्रश्न भई इक, सुंदर स्याम, सदा बसत बृंदाबन धाम।
याके बिरह जु उपज्यौ महा, कहौ नंद! सो कारन कहा।
१० 'नंद' सँबोधत ताकौ चित्त, ब्रज के बिरह समझि लै मित्त।
ब्रज में बिरह चारि परकार, जानत हैं जे जाननहार।
प्रथम प्रतच्छ बिरह तू सुनि लै, तातैं पुनि पलकांतर गुनि लै।
तीजौ बिरह बनांतर भये, चौथौ देसांतर के गये।
जे घट बिरह-अवा-अनल, परिपक भये सुभाइ।
१५ तिन हीं घट मैं नंद हो! प्रेम-अमी ठहराइ॥
प्रतच्छ बिरह के सुनि अब लच्छन, चकित होत जहँ बड़े बिचच्छन।
ज्यौं नव कुंज सदन श्री राधा, बिहरति प्रीतम अंक अबाधा।

४० ताहि पहिरि कै कनक अटारी, पौढ़ि रही भरि आनँद भारी।
रही हुती रजनी कछु थोरी, जागि परी सहजहि वर गोरी।
द्वारावति लीला सुधि भई, ताही छिन सौं विकल ह्वै गई।
दिष्टि परि गयौ चंदा गैन, लागी ताहि सँदेसौ दैन।
द्वादस मास विरह की कथा, विरहिनि कौं दुखदाइक जथा।
४५ छिनक माँझ बरनी इहि वाल, महा विरहिनी ह्वै तिहि काल।
निपट अटपटौ, चटपटौ, व्रज कौ प्रेम वियोग।
अजहूँ नहिं सुरझे जहाँ, उरझे वड़े वड़े लोग॥

मासवर्णन

चैत

चैत चलौ जिनि कंत, वार वार पाँ परि कह्यौ।
निपट असंत बसंत, मैन महा मैमंत जहँ॥
५० तदपि न रहे चले ई चले, कहियौ चंद भले जू भले।
तव हीं कोकिल कुहु कुहु कियौ, सुनतहि डहकि बहकि गौ हियौ।
जनु किलकार मैन मुहिं दई, जु कछु कहति ही सोई भई।
मदन जाल गोलक से भौंरा, फिरि गये ऊपर ठौरहि ठौरा।
सुखद जु हुतौ तिहारे संग, अब वह बैरी भयौ अनंग।
५५ नव पुहुपन के धनुष बनाये, मधुप पाँति तिहिं तंत चढ़ाये।
नूतन नूतन अंकुर बान, तकि तकि मरम करै संधान।
अरु यह त्रिगुन पवन कित हू कौ, पुहुप-पराग लिये कर बूकौ।
फाग सौ खेलत बन बन फिरै, रस-अनरस सब काहू भरै।

पाँचवान के वान समान, तिन अति चंचल किये परान।

जलचर जिमि जल-भीर मैं, परसत नाहिंन पीर। ६०
विछुरि परै जव नीर तैं, तव जानै गुन नीर ॥

बैसाख

आवहु बलि बैसाख, दुख-निदरन, सुख-करन पिय।
उपजी मन अभिलाख, वन-विहरन गिरिधरन सँग ॥

कुसुम धूरि धूँधरी सु कुंजैं, मधुकर निकर करत तहँ गुंजैं।
गुहि गुहि नवल मालती माल, मुहिं पहिरावौ मोहनलाल। ६५
ललित लवंग लतन की छाँहीं, हँसि वोलौ, डोलौ गलवाँहीं।
पुलिन कालिँदी कौ अति रंमि, त्रिगुन पवन ही कौ तहँ गंमि।
किसलै-सेज सु पेसल कीजै, सिर तर सुमन-उसीसा दीजै।
इक पट ओढ़ि, पौढ़ि सुख कीजै, आवहु बलि छिन छिन छवि छीजै।
द्रुम लपटी जु प्रफुल्लित बेली, जनु मुहिं हँसति सु देखि अकेली। ७०
जौ कवहूँ पिय ध्यानहि धरौं, परिरंभन, चुंवन पुनि करौं।
रंचक सुख, बहुरौ दुख भारी, कहियौ ससि यह दसा हमारी।

इहि बिधि बलि बैसाख यह, बीत्यौ सुख-दुख लागि।
सड़सी भई लुहार की, छिन पानी छिन आगि ॥

जेठ

तनक न रही अमैंठ, तुम बिन नंदकिसोर पिय। ७५
निपट निलज यह जेठ, धाइ धाइ बधुवन गहै ॥

बृख के तपन तपत अति दई, घर-बन, अनल-मई सब भई।

तैसी बिरह-बिथा तन भई, अगिनि मैं अवर अगिनि जनु दई।
चंदन चरचे अति परजरैं, इंदु-किरन घृत बूँद सी परैं।
८० चंदन-चंद तौ तिन कौं सियरे, जिन कौं नँद-नंदन पिय नियरे।
अहो चंद! मो दुख तन झाँकौ, मंद मंद ये मृग जिनि हाँकौ।
झमकि जाइ हरि पियहि सुनाइ, करिहौ कहा बहुरि ब्रज आइ।
दावानल जु पान तुम करयौ, सो तौ बहुरि बिपिन संचरयौ।
अरु कहियौ जु सबन दुख पायौ, काली फिरि कालीदह आयौ।
८५ वेगि जाहु, ब्रज बिपतिहि हरौ, गुन-अवगुन कछु जिय जिनि धरौ।

छीर समुद के मीन जिमि, बसत चंद ढिँग आहि।
चंदहि मंद न जानहीं, जलचर मानत ताहि॥

असाढ़

बिपति न बरनी जाति, दई जु मास असाढ़ मुहिं।
औचक आधी राति, पीउ पीउ पपिहा कह्यौ॥

९० वह दुख वह रजनीयै जानै, कासौं कहौं, कह्यौ को मानै।
कौंनहि भाँति भोर जब भयौ, दुख ही मैं दुख उपज्यौ नयौ।
पावस-सैन मैन लै चढ़यौ, बिरही जन मारन रिस बढ़यौ।
बदरा बने चहूँ दिसि धाये, बूँद-बान घन बरसत आये।
घन मैं चमकति जैसैं दामिनि, भौनहि भाजि दुरति है भामिनि।
९५ घेरी मैन-सैन दुखदाइक, तुम बिन कौंन छुड़ावन लाइक।

मोर-सोर निसि सुंदरी, खरी डरी सुनि ताहि।
ताहि नींद कैसैं परै, मैन परौरत वाहि॥

सावन

हो मनभावन पीउ, सावन आवन करत सब।
औगुन कौंन जु तीय, आये नहिं जु रवन भवन॥

अब देखियत उमगी घन-माला, मानहुँ मत्त मदन की ढाला। १००
छुटे जु बंधन तोरि-मरोरि, धनुष बने मनु पचरँग डोरि।
बगन की पंक्ति बड़े बड़े दंत, धुरवा मद के पटे बहंत।
गरजनि, गुंजनि, सुनि सुनि महा, दरकत हिय, दुख कहियै कहा।
भरि भरि सुंड-भंडारनि पानी, मारत मोहिं, करत नकवानी।
घूमत फिरत महा मतवारे, ढाहत पिय के अवधि-करारे। १०५

अवगुन जो है मित्त मैं, मित्त न चित्त धरंत।
केतकि-रस-बस मधुप जिमि, कंटक दुख न गनंत॥

भादौं

भादौं अति दुख अैन, कहियौ चंद गुबिंद सौं।
घन अरु धन के नैंन, होइनि बरसत रैनि-दिन॥

गति बिपरीत रची इहि मैन, गरजैं घन बरसैं तिय नैंन। ११०
सींचति भुज-मूलन दृग नाइ, छिन छिन बिरह-बेलि अधिकाइ।
भादौं रैनि अँध्यारी भारी, तामैं तिय अति होत दुखारी।
घन हर घोरै, पवन झकोरै, दादुर, झींगुर, कानन फोरै।
आँगन बिजुरी करत जु चोटैं, घर मैं अति अँधियारी घोटैं।
इकली देहरी ठाढ़ी रहै, बढ़ि गई रैनि घट्यौ नहिं चहै। ११५
अहो चंद गति मंद न गहौ, सुंदर गिरिधर जू सौं कहौ।

इंद्र कोप कीनौ ब्रज अबै, जल-व्याकुल गोकुल है सबै।
आवहु बलि विलंब जिनि करौ, बहुरचौ गोवरधन कर धरौ।
एक बार ब्रज आवन कीजै, बिरह-बिथा की औषधि दीजै।
१२० प्रान रहे घट आइ इमि, जिमि जव अंकुर तोइ।
अन-आवन जु प्रबल पवन, झर परिहैं पिय सोइ॥

कुआर

कहियौ उड़प उदार, सुंदर नंदकुमार सौं।
अति कृश कीनी क्वार, हार भार तैं डारि दिय।
खंजन प्रगट किये दुख-दैना, संजोगिनि तिय के से नैंना।
१२५ निरमल जल अंबुज जहँ फूले, तिन रस लंपट अलि-कुल भूले।
सुधि आवत वा मोहन मुख की, कुटिल अलकजुत सीमा सुख की।
मोरन नूतन चँदवा डारे, तिनहिं देखि दृग होत दुखारे।
आवहु बलि ते सिर पर धरौ, पंख पुरातन हाँते करौ।
साँझ समै बन तैं बनि आवौ, गोरज मंडित वदन दिखावौ।
१३० वा छबि विन ये नैंन दुखारे, जरत हैं महा बिरह-जुर जारे।
और ठौर की आगि पिय, पानी पाइ वुझाइ।
पानी मैं की आगि बलि, काहे लागि सिराइ॥

कातिक

प्रीतम परम सुजान, कातिक जौ नहिं आइहौ।
तौ ये चपल परान, पिय तुम हीं पै आइहैं॥
१३५ अहो चंद! बलि चलि जिनि मंद, जाहु बेगि जहँ पिय नँद-नंद।

मै पाइ कहियो अरगाइ, जैसें बलि मन तुम्हें सुहाइ।
ाई सरद सुहाई रानि, प्रफुल्लित बेलि, मल्लिका, जाति।
दिन उहै उड़राज सदा कौ, रहत अखंडल मंडल जाकौ।
टि रही छबि बिमल चाँदिनी, सुभग पुलिन, सु कलिंद-नंदिनी।
नल मृदुल वालुका सच्यौ, जमुना सु कर तरंगन रच्यौ। १४०
ल्पतरु तरे मंजुल मुरली, मोहन अधर-सुधारस जुरली।
ढ़े ह्वै पिय बहुरि बजावौ, ता करि ब्रज सुंदरी बुलावौ।
चै खेलौ पिय रास-बिलास, परिरंभन, चुंबन, मृदु हास।
हज सुगंध साँवरी बाहु, कंठनि मेलि मिटावौ दाहु।
पजरि परत सब अंग अब, चौवा-चंदन लागि। १४५
बिधि गति जब बिपरीत तब, पानी हू मैं आगि॥

अगहन

अगहन गहन समान, गहियत मोर सरीर-ससि।
दीजै दरसन दान, उगहन होइ जो पुन्य बल॥

छुरन जोग बनि गयौ आइ, बिरह-राहु कौ परि गौ दाइ।
ख बैर सुमिरि रिस भरयौ, मो तन-चंद आनि कै धरयौ। १५०
यें जु दंत बिधुंतुद गाढ़े, काहू पै अब कढ़त न काढ़े।
ुत रहत नैंनन इक सार, ते जनु चलत अमृत की धार।
य-दरसन जु सुदरसन आहि, रंचक आनि दिखावौ ताहि।
ससि जौ पिय नंदकिसोर, अवगुन कहन लगै कछु मोर।
व तुम तिन सौं कहियौ ऐसें, बहुरि न कबहूँ भाखै जैसें। १५५

मित्त जु अवगुन मित्त के, अनत नाहिं भाखंत ।
कूप छाँह जिमि आपनी, हिये माँझ राखंत ।।

पूस

बिपति परी इहि पूस, अहो चंद ब्रजचंद बिन ।
सबै तापनौ फूस, बिन घुरि सोये स्याम तन ।।
१६० बड़ि बड़ि रैनि तनक से दिना, क्यौं भरियै पिय प्यारे विना ।
महा वकी ज्यौं आवति राति, झट दै मोहिं लीलि ही जाति ।
मदन डाढ़-विच दै दै चंपै, तिहि दुख ताकौ तन-मन कंपै ।
रवि जौ तनक न लेइ छुड़ाइ, तौ मोहिं निसा बकी गिलि जाइ ।
मास दिवस के हुते जो पीय, तब तुम हती हुती वह तीय ।
१६५ अब तौ वलि बलवंत पियारे, कंस, केसि, चानूर सँघारे ।
अहो चंद ! ब्रजचंद बिन, परे सबै दुख आइ ।
सदन अघासुर से भये, तिन तन चहचौ न जाइ ।।

माह

मकर जु दारुन सीत, कहियौ ससि, पिय सौं रहसि ।
घर आवौ हरि मीत, छिनक छती सौं लागिहौं ।।
१७० कपि गुंजा लै जतन बनावै, तिहि करि अधिक अधिक दुख पावै ।
बेदन आन औषधी आन, क्यौं दुख मिटै जात नहिं जान ।
दिन अरु रजनी परै तुषार, सीतल महा अगिनि की झार ।
मृदुल बेलि सी ब्रज की बाल, मुरझि चली हो गिरिधरलाल ।
अरु कहियौ बलि पिय सौं ऐसैं, देखे जात दुखित तुम जैसैं ।

जौ कबहूँ हठि नींद अनैयै, साँवरो पिय सुपने मैं पैयै। १७५
तदपि न सुख जब परियै जागि, पजरनि महा पवन तैं आगि।
ज्यौं चकई निज झाँई चाहि, सुदिन होति पनि मानति ताहि।
प्रबल पवन पुनि आनि डुलावै, चकई बिलपि महा दुख पावै।
ताही छिन दुख कहियै कौंन, दाधे पै जिमि लागत लौन।

मास मास के कदन करि, मास रह्यौ नहिं देह। १८०
साँस रही घट लपटि कै, बदन चहन के नेह॥

फागुन

जौ इहि फागुन पीउ, फागु न खेलौ आइ ब्रज।
कै हौं, कै यह जीउ, कोउक तुम पै आइहै॥

मोहीं लै चलि चंदा मंद, जहँ मोहन सोहन नँद-नंद।
कहा करैंगे गुरुजन मेरौ, दुरजन क्यौं न हँसौ बहुतेरौ। १८५
जाके अंग रोग है महा, औषधि खात लाज है कहा।
इहि बिधि घरिक रही चटपटी, बात प्रेम की अति अटपटी।
बहुरचौ ब्रज-लीला सुधि आई, जामैं नित्य किसोर कन्हाई।
सुपने कोउ दुख पावत जैसैं, जागि परे सुख होत है तैसैं।
तब हीं कान्ह बजाई मुरली, मधुर मधुर पंचम सुर जुरली। १९०
बछरा मिलवन मिस उठि भोर, यह रवनी गवनी उहि ओर।
ठाढ़े निकसि कुँवर वर पौरि, बनि रही निसि की चंदन खौरि।
लटपटि पाग कछुक झुकि रही, सो छबि परत कौंन पै कही।
आलस भरे सरस जुग नैंन, जिनहिं निरखि मुरझत मन मैन।

१९५ इकले 'प्रानपियारे पाये, निसि के दुख सब ही बिसराये।
ताकौं देखि नैंन अरबरे, सुंदर गिरिधर पिय हँसि परे।
समाचार जानत तिहि तिय के, अंतरजामी सब के जिय के।
इहि परकार 'बिरहमंजरी', निरवधि परम प्रेम रस भरी।
जो इहि सुनै-गुनै, चित लावै, सो सिद्धांत तत्व कौं पावै।
२०० और भाँति ब्रज कौ बिरह, बनै न काहू 'नंद'।
जिनके मित्र विचित्र हरि, पूरन परमानंद॥

रसमंजरी

नमो नमो आनंद-घन, सुंदर नंदकुमार।
रस-मय, रस-कारन, रसिक, जग जाके आधार ।।
है जु कछुक रस इहि संसार, ताको प्रभु तुम हीं आधार।
ज्यौं अनेक सरिता जल बहै, आनि सबै सागर मैं रहै।
जग मैं कोउ कवि बरनौ काही, सो जस-रस सब तुम्हरौ आही। ५
ज्यौं जलनिधि तैं जलधर जल लै, बरखै, हरखै अपने कर लै।
अग्नि तैं अनगन दीपक बरैं, बहुरि आनि सब तामैं ररैं।
ऐसैं ही रूप प्रेम रस जो है, तुम तैं है, तुम हीं करि सोहै।
रूप प्रेम आनंद रस, जो कछु जग मैं आहि।
सो सब गिरिधर देव कौ, निधरक बरनौं ताहि ।। १०
एक मीत हम सौं अस गुन्यौ, मैं नाइका-भेद नहिं सुन्यौ।
अरु जे भेद नाइक के गुने, ते हू मैं नीके नहिं सुने।
हाउ, भाउ, हेलादिक जिते, रति समेत समझावहु तिते।
जब लगि इनके भेद न जानै, तब लगि प्रेम न तत्व पिछानै।
जहँ जाकौ अधिकार न होई, निकटहि वस्तु दूरि है सोई। १५
मीन कमल के ढिंग ही रहै, रूप रंग रस मधुलिह लहै।
निकटहि निरमोलिक नग जैसैं, नैंन हीन तिहिं पावै कैसैं।
बिन जाने यह भेद सब, प्रेम न परिचै होइ।
चरन हीन ऊँचे अचल, चढ़त न देख्यौ कोइ ।।

२०　तासौं नंद कहत अब उत्तर, मूरख जन मन मोहव दुत्तर।
बात और, कछु औरहि बूझै, अल्प ग्यान गुनि जन मन दूझै।
अब सुनि लै मूरख मन कैसौ, बरनि सुनाऊँ तुम कौं तैसौ।
महा नक्र-मुख जो मनि होई, ता कहुँ कर करि काढ़ै कोई।
कुपित भुजंगम सिर पग धरै, हाथन पाथरासि पुनि तरै।
२५　तेल लहै करि धूरि की धानी, मृगतृष्ना तैं पीवै पानी।
खोज ससा के सींगन पावै, पै मूरख मन हाथ न आवै।
तू तौ सुनि लै 'रसमंजरी', नख-सिख परम प्रेम रस भरी।

'रसमंजरि' अनुसारि कै, नंद सुमति अनुसार।
बरनत वनिता भेद जहँ, प्रेम सार बिस्तार॥

३०　जग मैं जुवति तीनि परकार, करि करता निज रस बिस्तार।
प्रथम सुकीया पुनि परकिया, इक सामान्य बखानी तिया।
ते पुनि तीनि तीनि परकार, मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ बिहार।
मुग्धा हू पुनि द्वै विधि गनी, उत्तर उत्तर ज्यौं रस सनी।
प्रथमहि मुग्ध नबोढ़ा होई, पुनि बिश्रब्ध नबोढ़ा सोई।

✓मुग्धनवोढ़ा

३५　जिहि तन नव जोबन अंकुरै, लाज अधिक तन-मन संकुरै।
अली अधीन होइ रति जाकी, भूषन रुचि तैसी नहिं ताकी।
प्रीतम जब कर-पंकज धरै, बल करि सेज निबेसित करै।
क्रीड़ा करि सब अंगन गहै, तदपि सु तिय वह गवन्यौ चहै।
तन करि भागै, मन करि रमै, कहि न जाइ जस बैसँधि समै।

जो पारद कौं कर थिर करै, सो नवोढ़ बाला उर धरै। ४०
निपटहि लाज लपेटी लहियै, सो तिय मुग्धनबोढ़ा कहियै।
नेह नवोढ़ा नारि कौं, वार वार कन्याइ।
थलराये पै पाइयै, निरपीड़े निरसाइ॥

विश्रब्धनवोढ़ा

अँग अँग जुवन जोति संचरी, कंचन छरी मनौं नग जरी।
किंचित मिलत पिया सौं हिया, उपज्यौ प्रेम भाउ कौ दिया। ४५
नव भूषन रुचि सुचि अनुरागी, मुसकि कनखियन चाहन लागी।
न्यौतिय सब छवि जाके अंग, आवन लगी नवल नव रंग।
उपजी कछुक दृगनि आतुरी, लज्जित जहँ खंजन चातुरी।
तन लावन्य झलक परी ऐसी, मुक्ता फल नव पानिप जैसी।
पिय सँग सोवत अति छवि लहै, कर करि कलित कुचस्थल गहै। ५०
नीवी बंधन दिढ़ करि धरै, उरज माल बाँधि इक करै।
अध-मुद्रित नैंनन छवि पावै, मृग-छौनहि कछु औंघ सी आवै।
कोमल कोप कबहुँ जौ गहै, कूप छाँह जिमि हिय ही रहै।
इहि परकार परखियै जोई, है विश्रब्धनबोढ़ा सोई।
गाढ़ालिंगन पीय सौं, दै न सकै तिय सोइ। ५५
नव अनंग अंकुर हिये, डरति भंग जिनि होइ॥

अज्ञातयौवना

सखि जब सर-स्नान लै जाही, फूले अमलन कमलन माही।
पौंछे डारति रोम की धारा, मानति बाल सिवाल की डारा।

चंचल नैंन चलत जब कौने, सरद कमल दल हू तैं लौने।
६० तिनहिं श्रवन बिच पकरयौ चहै, अंबुज दल से लागैं, कहै।
इहि प्रकार बरसै छबि-सुधा, सो अग्यातजोवना मुग्धा।

ज्ञातयौवना

सहचरि के उरजन तन चहै, अपने चहै, मुसकि छबि लहै।
सखि कहै बलि ये तव कुच नये, इक ठाँ बिबि संभू से भये।
को सुकृती वह निज नख धरिहै, इन कौ चंदचूड़ जो करिहै।
६५ मुसकि सखी कहुँ मारै जोई, ग्यातजोवना कहियै सोई।

मध्या

लज्जा मदन समान सुहाई, दिन दिन प्रेम चोप अधिकाई।
पिय सँग सोवत, सोइ न जाई, मन मन इमि सोचै सुख पाई।
सोयैं प्रीतम मोहन मुख की, हानि हौइ अवलोकन सुख की।
जागे तैं कर-ग्रहन प्रसंग, रम्यौ चहैं नगधर बर संग।
७० इहि प्रकार जुवति जो लहियै, सो मध्या नाइका कहियै।

छूटहि हार-विहार रस, छुयौ करै कुच हार।
उत्तम मध्या जानियै, परी सु प्रेम अधार॥

प्रौढ़ा

पूरन जोवन गहगहि गोरी, अधिक अनंग लाज तिहि थोरी।
केलि कलाप कोविदा रहै, प्रेम भरी मद गज जिमि चहै।
७५ दीरघ रैनि अधिक कै भावै, भोर कौ नाम सुनत दुख पावै।
कुरकुट सुनि चुरकुट ह्वै भारी, मन मन देहि बिधातै गारी।

अति प्रगल्भ बैनी, रस-ऐनी, सो प्रौढ़ा प्रीतम सुख-दैनी।

जात न उठि लपटानि सुठि, कठिन प्रेम की बात।

सूर उदोत करौत सम, चीरि किये विवि गात॥

तहँ कोउ धीरा कोउ अधीरा, कोउ धीराधीरा रस बीरा। ८०

मुग्धा मैं धीरादिक लच्छन, प्रगट नहीं पै लखें विचच्छन।

ज्यौं सुंदर तरु अंकुर माहीं, दल, फल, फूल डार सब ताहीं।

मध्या मैं ते प्रगट जनावैं, पल्लव, कली, फूल ह्वै आवैं।

मध्या धीरा

सापराध पिय कौं जब लहै, बिंग कोप के बचनन कहै।

भ्रमत निकुंज पुंज मैं मोहन, तुम अति श्रमित भये पिय सोहन। ८५

बैठहु बलि ! हौं काहे खीजौं, नलिनी दल बिजना करि बीजौं।

रंचक भौंह करेरी लहियै, सो तिय मध्या धीरा कहियै।

मध्या अधीरा

जागे तुम निसि प्रानपियारे, अरुन भये ये नैंन हमारे।

अधर सुधासव पिय तुम पियौ, धूमत है यह हमरौ हियौ।

प्रखर नखर सर लगे तिहारे, पीर होति पिय हिये हमारे। ९०

बन मैं श्रीफल मिलि गये तुम कौं, काम क्रूर मारत है हम कौं।

बचन अबिंग कहै रिस भोई, है अधीर मध्या तिय सोई।

मध्या धीराधीरा

प्रीतम कौं जब सागस लहै, बिंग अबिंग बचन कछु कहै।

अहो अहो मोहन सोहन पिया, नव अनुराग चुचात है हिया।

९५ चतुर सिरोमनि नँद के लाल, नव जोवन गुन रूप रसाल।
यौं कहि दृग भरि आवै जोई, धीराधीरा मध्या सोई।

प्रौढ़ा धीरा

सागस जानि साँवरे पिया, गूढ़ मान करि बैठी तिया।
प्रीतम तासौं अनुनय करै, बार बार कर-अंबुज धरै।
बोलति क्यौं न सुधा सी धारा, डोलति क्यौं न रूप की डारा।
१०० केतकि कुसुम गरभ सम गोरी, सेज न भजसि, लजसि क्यौं भोरी।
भ्रकुटि भ्रमर जिमि भ्रमत जु लहियै, सो तिय प्रौढ़ा धीरा कहियै।

प्रौढ़ा अधीरा

पिय उर मुकर समान सोहाई, तामैं निरखि आपनी झाँई।
आन तिया की संका मानै, रंचक पिय सौं रूठनौ ठानै।
पुनि अवधारै, कोप निवारै, हँसि हँसि ता प्रतिबिंबहि मारै।
१०५ इहि परकार परखियै जोई, है अधीर प्रौढ़ा तिय सोई।

प्रौढ़ा धीराधीरा

सागस जानि रसीले लाला, कोमल मान गहै बर बाला।
प्रेम भरे सुनि वचन पिया के, हँसहि कपोल सलोल तिया के।
राते दृग रिस-रस सौं भोये, मानहुँ मीन महावर धोये।
इहि परकार तिया जो लहियै, प्रौढ़ा धीराधीरा कहियै।

सुरतिगोपना परकीया

११० कहै सखी सौं उहि गृह अंतर, अब तें हौं सोऊँ न सुतंतर।
सास लरौ, धैया किन लरौ, दैया जो भावै सो करौ।

आखु धरन हित दुष्ट मजारी, मो पै उछरि परी दइमारी।
दै गई तीछन नख दुखदाई, कासौं कहौं दरद सो माई।
इहि छल छतन छिपावै जोई, परकिय सुरतिगोपना सोई।

वाग्विदग्धा परकीया

अहो पथिक ! अति बरसत घाम, रंचक कहूँ करौ बिश्राम। ११५
इन तैं निकट कालिंदी तीर, सीतल मंद सुगंध समीर।
गहवर तरु तमाल इक जहाँ, प्रफुलित वल्लि मल्लिका तहाँ।
छिनक छाँह लीजै, पय पीजै, बहुरचौ उठि मारग मन दीजै।
पियहि सुनाइ पथिक सौं कहै, परकीया सु विदग्धा उहै।

परकीया लक्षिता

लच्छन चिन्हन जो लछि पाई, बुधि बल, छल न छिपाई जाई। १२०
सतर भौंह गुरुजन की सहै, जो पूछै तासौं इमि कहै।
जु कछु भई सु भई गति भली, हौनी आहि सु ह्वैहै अली।
अब जु होति है होउ सु सिर पर, पेट पातरे नहिंन बचे सर।
निधरक भई कहति इमि लहियै, सो परकीय लच्छिना कहियै।

नायिकाभेद

प्रोपितपतिका अरु खंडिता, कलहंतरिता, उत्कंठिता। १२५
अवर विप्रलब्धा नाइका, वासकसज्जा, अभिसारिका।
पुनि स्वाधीनवल्लभा गुनी, नवमी प्रीतमगवनी सुनी।
ते पुनि तीनि तीनि परकार, मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ बिहार।

प्रोषितपतिका

जाकौ पति देसांतर रहै, अति संताप बिरह जुर सहै।
१३० दुर्बल तन, मन व्याकुल होई, प्रोपितपतिका कहियै सोई।

मुग्धा प्रोषितपतिका

बिरह-बिथा निज हिय ही सहै, सखि जन हू सौं नाहिंन कहै।
सीतल सेज सँवारि बिछावै, पौढ़ि न सकै लाज जिय आवै।
गदगद कंठ रहै अकुलानी, नैंनन माँझ न आनै पानी।
जामिनि सँग मनसिज दुख पावै, सो मुग्धा प्रोषिता कहावै।

मध्या प्रोषितपतिका

१३५ पिय बिन जबहिं मदन जुर दहै, इहि परकार सखी सौं कहै।
सखि हो उहै उहै कर-बलै, ऐ परि कर करिये नहिं चलै।
बसन सोइ, कटि किंकिनि सोई, छिन-छिन अधिक अधिक क्यौं होई
कौंन समै आयौ यह सजनी, इंदु अनल बरसै सब रजनी।
इहि परकार कहत जो लहियै, मध्या प्रोषितपतिका कहियै।

प्रौढ़ा प्रोषितपतिका

१४० पिय परदेस धीर नहिं धरै, पीर भीर कछु सुधि नहिं परै।
तरुन अनंग तरुनि दुख बढ़यौ, अँग अँग महा गरल जिमि चढ़यौ।
बिरह लहरि जब उठि मुरझावै, बाहु कौ बलय ढरकि कर आवै।
जनु इह बलय नाड़िका लहै, जीयति किधौं मार गई अहै।
इहि परकार पेखियै जोई, प्रौढ़ा प्रोषितपतिका सोई।

परकीया प्रोषितपतिका

प्रानपियारे पियहि न पेखै, सो तिय सब जग सूनो देखै। १४५
आन के ढिँग उसास नहिं लेहि, मूँदे मुँह निहिं उत्तर देहि।
तपत उसासन जो कोउ लहै, परकिय बिरहिनि का तब कहै।
सखि जब कमल फूल पकरावै, हाथ न छुवै, निकट धरवावै।
अपने कर जु बिरह-जुर ताते, मनि मुरझाहि डरनि तिय याते।
अवा-अग्नि जिमि अंतर दहियै, परकिय प्रोषितपतिका कहियै। १५०

प्रेम मिटै नहिं जन्म भरि, उत्तम मन की लागि।
जौं जुग भरि जल मैं रहै, मिटै न चकमक आगि॥

खंडिता

प्रीतम अनत रैनि सब जगे, अंग अंग रति चिन्हन पगे।
भोर भये जाके घर आवै, सो बनिता खंडिता कहावै।

मुग्धा खंडिता

पिय उर उरज अंक पहिचानै, कुंभ चिन्ह से कछु जिय जानै। १५५
नख-छत छती चितै चकि रहै, ते प्रीतम तैं पूँछयौ चहै।
पिय हँसि ताहि कंठ लपटावै, सो मुग्धा खंडिता कहावै।

मध्या खंडिता

प्रीतम उर कुच चिन्हन चहै, जानै पर कछुवै नहिं कहै।
पुनि तन मैं नख-रेखहि देखै, साँस न भरै, कनाखिन देखै।
चपरि चखन त जल जौ आवै, मुख धोवन मिस ताहि दुरावै। १६०
मन मन विमन होइ रिस सानी, मध्या सो खंडिता बखानी।

प्रौढ़ा खंडिता

भोरहि आये मोहन लाल, तिय-पद जावक अंकित भाल।
नैंनन-नीर नैंन अवधारै, प्रात अमंगल तैं नहिं डारै।
दर्पन लै पिय आगे धरै, बिंग बचन बोलै, नहिं डरै।
१६५ ढकहु छती नख दिखियत ऐसैं, रति की प्रीति कौ अंकुर जैसैं।
अै परि इमि दिखियत रँग भरयौ, गाढ़ालिंगन टूटि है परयौ।
इहि परकार कहत रिस सानी, सो प्रौढ़ा खंडिता बखानी।

परकीया खंडिता

पिय गर कंकन मुद्रा लहै, गंडनि श्रम-कन पुनि पुनि चहै।
नमित बदन कै ठाढ़ी रहै, प्रीति भंग भय कछुव न कहै।
१७० दूती पर करि नैंन तरेरै, भरै उसास दुसासन डारै।
टपकि टपकि दृग अँसुवाँ परैं, कमल दलन जनु मोती झरैं।
इहि परकार प्रेम रस सानी, सो परकिय खंडिता बखानी।

सब काहू सौं देखियै, लाल तिहारी प्रीति।
जहँ डारौ तहँ हीं बढ़ै, अमरबेलि की रीति॥

कलहांतरिता

१७५ प्रथमहि पीय अनादर करै, पीछे तैं पछितावै मरै।
साँस भरै उर अति संताप, अरुझै, मुरझै, करै प्रलाप।
सोचति, सीस धुनति जो लहियै, सो तिय कलहांतरिता कहियै।

मुग्धा कलहांतरिता

प्रीतम अनुनय करि कर गहै, वह लजि लपटि न तासौं रहै।

पीछे मलय पवन जब बहै, तब पिय उर घुरि सोयौ चहै।
मन मन मीस धुननि जो लहियै, मुग्धा कलहांतरिता कहियै। १८०

मध्या कलहांतरिता

रमन आनि अनुनय अनुसरै, रूप के गरब अनादर करै।
पीछे वह दुख कहति लजाई, कहे बिना हिय पीर न जाई।
चकित भई सहचरि सौं कहै, बात आनि अधरन मैं रहै।
बैठि अधोमुख सोचै जोई, मध्या कलहांतरिता सोई।

प्रौढ़ा कलहांतरिता

आये जब मोहन रँग भरे, क्यौं मैं नैन तरेरे करे। १८५
कच-लट गहत अनखि क्यौं परी, क्यौं कुच छुवत कलह मैं करी।
अली अदिष्ट नष्ट बड कोई, पाई निधि जिहि कर तैं खोई।
इहि परकार प्रलापनि लहियै, प्रौढा कलहांतरिता कहियै।

परकीया कलहांतरिता

जाके लिये पति न मैं पेखे, गरुये गुर हरुये करि लेखे।
धीरज-धन मैं दीन लुटाई, नीति-सहचरी सौं बिरराई। १९०
लाज तिनक सम तोरि ही दीनी, सरिता बारि बूँद सम कीनी।
सो पिय आज मैं अति अपमाने, सखि अब बिधि बिकूलयै जाने।
इहि बिधि बिलपनि-प्रलपनि लहियै, परकिय कलहांतरिता कहियै।

रसहु लागि कल कत सौं, कलह न कीजै काउ।
कानहि जौ ऊनौ करै, सो मौनौ जरि जाउ॥ १९५

उत्कंठिता

बाँधि सकेत पीउ नहिं आवै, चिंता करि तिय अति दुख पावै।
आरति करि संताप जुड़ाई, तन तोरति अरु लेति जँभाई।
भरि-भरि नैंन अवस्था कहै, उत्कंठिता नाइका सु है।

मुग्धा उत्कंठिता

प्रानपिया अज हूँ नहिं आये, हौं जानौं किन हीं बिरमाये।
२०० लाज तैं सखि कौं नाहिंन बूझै, चिंता करि मन ही मन मूझै।
चकित भई घर आँगन फिरै, कौने जाइ उसासन भरै।
दुख तैं मुख पियरी परि आवै, मुग्धा उत्कंठिता कहावै।

मध्या उत्कंठिता

करै बिचार मनहि मन भई, क्यौं नहिं आये प्रीतम दई।
कै यह सखी गई नहिं लैन, कै कछु डरपे पंकज-नैंन।
२०५ भरि आवै जब लोचन पानी, घूम परचौ तब कहै सयानी।
सोचति इमि जल मोचति लहियै, मध्या उत्कंठिता सु कहियै।

प्रौढ़ा उत्कंठिता

प्रीतम अनआये जब लहै, ठाढ़ी कुंज सदन मैं कहै।
अहो निकुंज ! आत इत सुनि धौं, हे सखि जूथि! बहिन मन गुनि धौं।
हे निसि ! मात, तात अँधियारे, पूँछति हौं तुम हितू हमारे।
२१० हो तमाल ! हो बंधु रसाल !, क्यौं नहिं आये मोहनलाल।

परकीया उत्कंठिता

जिहि मनमोहन पिय हित माई, इकली बन घन बसि न डराई।
कवन कवन तप मैं नहिं कियौ, बारिद बारि अन्हैबौ लियौ।
मनसिज देव सेव दिढ़ कीनी, लाज तहाँ मैं दछिना दीनी।
सु पिय आज दृग अतिथि न भये, भोरे किन हूँ भोरे लये।
यौं बन मैं मन मैं दुख पावै, परकीया उत्कंठिता कहावै। २१५

विप्रलब्धा

पिय संकेत आप चलि आवै, तहँ प्रीतम कौं नाहिंन पावै।
साँस भरै, लोचन जल भरै, पिय सहचरि सौं झुकि झुकि परै।
मन बैराग धरै, दुख पावै, जुवति विप्रलब्धा सु कहावै।

मुग्धा विप्रलब्धा

कपट सौंह करि करि सखि जाकौं, लै आवहि निकुंज मैं ताकौं।
तहँ प्रीतम कौं नाहिंन पावै, छुभित होइ छबि नहिं कहि आवै। २२०
सतर भौंह सौं सखी डरावै, मुग्धा विप्रलब्धा कहावै।

मध्या विप्रलब्धा

पिय संकेत आइ वर बाला, पावै पियहि न रूप रसाला।
अध-मुद्रित नैंनन चकि रहै, आधी बात बदत छबि लहै।
आधी बीरी दसननि धरै, ठाढ़ी गूढ़ उसासनि भरै।
कछु इक मन बैरागहि आवै, मध्या विप्रलब्धा कहावै। २२५

प्रौढ़ा विप्रलब्धा

कुंज मदन सूनौं जब देखै, सखि जन हू कौं संग न पेखै।
कुटिल कामदेव तैं डरै, वामदेव सौं विनती करै।
भो संभो ! सूलिन, सिव, संकर, हर, हिमकर-धर, उग्र, भयंकर।
मदन-मथन, मृड अंतरजामी, त्राता होहु जगत के स्वामी।
२३० भरि भरि नैंन त्रिनैंन मनावै, प्रौढ़ा विप्रलब्धा कहावै।

परकीया विप्रलब्धा

धीरज अहि के सिर पग धरै, लज्जा तरल तरंगनि तरै।
तिमिर महा गज हाथन ठेलै, पति उर नाहर पाइन पेलै।
इहि विधि कुंज सदन चलि आवै, तहँ मनमोहन पियहि न पावै।
लता कर धरै, चिंता करै, साँस भरै, लोचन जल भरै।
२३५ इहि परकार परखियै तिया, सु है विप्रलब्धा परकिया।
धीर्ज सघन वन माँझ ह्वै, गुर डर गैवर ठेलि।
पति डर नाहर पेलि पग, करै कुँवर सौं केलि ॥

वासकसज्जा

पिय आगमन जानि बर वाला, सुरति सामग्री रचै रसाला।
दूती पूछै, सखि सौं हँसै, करै मनोरथ बिकसै, लसै।
२४० नैंननि निपट चटपटी लहियै, सो तिय बासकसज्जा कहियै।

मुग्धा वासकसज्जा

छिपी हार गूँथै छबि पावै, छल करि कटि किंकिनी बजावै।
दीप सँवारि सदन मैं धरै, तिन मैं तेल अधिक नहिं करै।

सखि कहुँ सेज बिछावन सिखै, घूँघट पट मैं मुसकै, चहै।
छिन छिन प्रीतम कौ मग जोहै, मुग्धा बासकसज्जा सो है।

मध्या वासकसज्जा

पुहुप हार गुहि सखिहि दिखावै, कहै कि मो सम तोहि न आवै। २४५
मिस ही मिस पट भूषन धरै, सहचरि के अभरन सौं अरै।
द्वार चित्र देखन मिस बाला, पिय मग देखै रूप रसाला।
जाके चरित विलोकि मनोज, हँसि हँसि चूमै बदन-सरोज।
इहि प्रकार हिय हुलसनि लहियै, मध्या वासकसज्जा कहियै।

प्रौढ़ा वासकसज्जा

प्रगटहि अंगनि अभरन सजै, सखि जन तैं रंचक नहिं लजै। २५०
सेज बसन सब धूपित करै, सौरभ करि दुर्दिन सौं अरै।
सखि सौं सबै मनोरथ कहै, प्रौढ़ा वासकसज्जा सु है।

परकीया वासकसज्जा

छल सौं सुमुखि सास कौं स्वावै, छल ही छल गृहदीप सिरावै।
सोवत छल के वचन सुनावै, ता पिय कौं संकेत जनावै।
बार बार हँसि करवट लेइ, जौन्ह सौं बदन दिखाई देइ। २५५
सेज परी नूपुर रुनकावै, कर के कल कंकन खुनकावै।
इहि परकार जुवति जो लहियै, परकिय वासकसज्जा कहियै।

अभिसारिका

समै जोग पट-भूषन धरै, पिय अभिसार आप अनुसरै।

रूप अधिक, बुधि की अधिकाई, अधिक चोप तैं अधिक सुहाई ।
२६० उठि कै चलै पीय पै जोई, अभिसारिका कहावै सोई ।

मुग्धा अभिसारिका

बोलन आई दूति दामिनी, चली संग सहचरी जामिनी ।
भूत भविष्य कौ जाननहार, कहत है बन सुभ गवन की बार ।
झींगुर मुख करि रटै अधारा, मंगल ह्वैहै न करि विचारा ।
तिया मुंच मुग्धा अभिराम, अभिसर वलि जहँ सुंदर स्याम ।
२६५ इहि विधि जाहि सखी लै आवै, मुग्धा अभिसारिका कहावै ।

मध्या अभिसारिका

निरखि सुमुखि अभिसार की वारा, सखि सँग गवनै रुचिर विहारा ।
तिमिर मैं नील निचोल बनावै, वदन-चंद पट-ओट दुरावै ।
मग के सर्पन तें नहिं संकै, तिन की फनि-मनि हाथन टंकै ।
चंद उदय चंदन तन धरै, जौन्ह सी आपुहि हँसि हँसि परै ।
२७० रीझ मदन जा तिय के बानै, सो पुनि कुंद कुसुम सर तानै ।
इहि परकार जुवति जो लहियै, मध्या अभिसारिका सु कहियै ।

प्रौढ़ा अभिसारिका

एकाकी पिय पै अनुसरै, धनुधर मदन सहाइक करै ।
रजनी कौं बासर सम जानै, तामैं घन जिमि दिनमनि मानै ।
तिमिरहि तरनि किरन सम देखै, गहवर बन सु भवन करि लेखै ।
२७५ दुर्गम मगहि सुगम करि जानै, मदन मत्त डर काकौ आनै ।
इहि बिधि मंजु कुंज चलि आवै, प्रौढ़ा अभिसारिका कहावै ।

परकीया अभिसारिका

उरज-भार भंगुर गति जाकी, परिहै टूटि लटी कटि ताकी।
चलि नहिं सकनि प्रेम के भारा, डारनि काढ़ि मुक्ति कौ हारा।
धमिल खोलि सखि कहुँ पकरावै, केलि-कमल गहि दूरि बगावै।
जब अति सिथिल होति सुकुमारा, टेकन चलै बारिधर-धारा। २८०
जौ न मनोरथ-रथ तहँ होई, क्यौं पहुँचै पिय पै तिय सोई।
इहि विधि मोहन पिय पै आवै, परकिय अभिसारिका कहावै।

स्वाधीनपतिका

जाकौ पार्स्व पिया नहिं तजै, दिन दिन मदन-महोत्सव सजै।
नव नव अंबर अभरन धरै, वन बिहार रुचि पिय सँग करै।
सबै मनोरथ पूरन लहियै, सो स्वाधीनवल्लभा कहियै। २८५

मुग्धा स्वाधीनपतिका

मो कटि तैसी कृश नहिं भई, अंग कांति कछु अति नहिं लई।
उरजन नहिंन गरिमता तैसी, बचन-चातुरी फुरी न वैसी।
गति न मंद, नहिं चलनि सुहाई, नैंननि नहिंन बक्रिमा आई।
ऐ परि ! पिय मन मोहीं माहीं, कारन कवन सु जानत नाहीं।
इहि विधि सखि प्रति बरसै सुधा, है स्वाधीनवल्लभा मुग्धा। २९०

मध्या स्वाधीनपतिका

हौं कछु रति-उत्सव नहिं करौं, अंक धरत धरनी धसि परौं।
सँग सोवत नीबी गहि रहौं, चुंबन करत लाज जिय गहौं।

मेरी बात अमी जिमि भावै, मोहिं गदगद गर बात न आवै।
तदपि न पिया पार्स्व तजि जाई, तौ कहि कहा करौं री माई।
२९५ इहि विधि सहचरि सौं कहै जोई, मध्या स्वाधीनपतिका सोई।

प्रौढ़ा स्वाधीनपतिका

हे सखि औरन के जे पिया, बात सुनहिं सुकिया परकिया।
मो प्रीतम मोहीं कौं जानै, आन जुवति सपने न पिछानै।
इहि परकार कहै रस बोढ़ा, सो स्वाधीनवल्लभा प्रौढ़ा।

परकीया स्वाधीनपतिका

प्रीतम के घर बहुत सुकीया, मोहीं सौं हित मानत पीया।
३०० मृदु-बैनी बर वारिज-नैंनी, हास-बिलास रास-रस-रैनी।
ऐ परि बन, पुर, अटा, अटारी, पिय की दिष्टि न मो तैं न्यारी।
काहू सौं कछू बात न कहै, पिय की अँखियाँ संगहि लहै।
इहि परकार कहै जो तिया, है स्वाधीनपिया परकिया।
अंजन, मंजन, पट पहिरि, गर्ब करौ मति कोइ।
३०५ औरहि प्रेम सुलच्छिनौ, जिहिं प्रीतम बस होइ॥

प्रीतमगमनी

जाकौ प्रीतम गमन्यौ चहै, भीत भई कछुवै नहिं कहै।
गमन विघन कहुँ मन मन सोचै, लोचन तैं जल नाहिंन मोचै।
चित ही चित चिंता-रत लहियै, सो तिय प्रीतमगमनी कहियै।

मुग्धा प्रीतमगमनी

गमन बात पिय की जब सुनै, सुनतहि मन मैं धुन ज्यौं धुनै।

ताकी सखी गुप्त भई डोलै, कुंजनि कल कोकिल ह्वै बोलै। ३१०
रूप-लता सी मुरभनि लहियै, मुग्धा प्रीतमगमनी कहियै।

मध्या प्रीतमगमनी

पिय कौं चलत जानि बर बाला, बोलै नहिं कछु रूप रसाला।
भरै न दीरघ साँस सयानी, नैंनन माँझ न आनै पानी।
धरि रहै हाथ माथ के धोरै, मानहुँ आयु अच्छर टकटोरै।
इहि परकार परखियै जोई, मध्या प्रीतमगमनी सोई। ३१५

प्रौढ़ा प्रीतमगमनी

हो श्रीपति-पति पूछति तोहीं, सत्य कहौ संदेह है मोहीं।
तन त्यागे हू जुवतिन कहियाँ, इह बियोग जारत की नहियाँ।
अरु ये कुसुमित बोर पटीर, देत जु बंधु मरे कहुँ नीर।
जौ परलोकहु गरल समान, क्यौं है देत बंधु अग्यान।
ऐसैं कहि कै चुप ह्वै रहै, प्रौढ़ा प्रीतमगमनी सु है। ३२०

परकीया प्रीतमगमनी

प्रानपिया कहुँ गमनत लहै, रहसि पाइ पिय सौं इमि कहै।
तुम हित को दुक्रत नहिं किये, पन्नग फन पर मैं पग दिये।
पति-द्विजदेव-सेव सब तजी, नीति तजी, कुल-लाज न लजी।
तिन के फल जे नरक बताये, ते सब मो कहुँ जीवित आये।
तपन जाचना आई तन कौं, कुंभीपाक पराभव मन कौं। ३२५
महा घोर रौरव जु बतायौ, क्रोध रूप ह्वै नैंनन आयौ।

जुगति आहि पिय गमनत तोहि, क्यौं न हौहि ऐसी गति मोहि।
इहि परकार कहति तिय जोई, परकिय प्रीतमगमनी सोई।
चलन कहत हैं कालि पिय, का करिहौं मेरी आलि।
३३० बिधना ऐसैं करि कछू, जैसैं होइ न कालि॥

नायक-भेद

नाइक बरने चारि प्रकार, प्रमदा-प्रेम बढ़ावनहार।
एक धृष्ट, इक सठ, इक दच्छिन, इक अनुकूल सुनहि अब लच्छिन।

धृष्ट

करि अपराध पिया ढिँग आवै, निधरक भयौ, बात बहरावै।
नाकहूँ पिया कटाछन तारै, हारन बाँधै, कमलन मारै।
३३५ मारि बिडारि द्वार पहुँचावै, सोवत जानि बहुरि फिरि आवै।
चपरि सेज पै सोवै जोई, नाइक धृष्ट कहावै सोई।

सठ

सीस कुसुम की गूँथै माला, भालहि तिलक करै अभिवाला।
भाम-भुजनि केयूर बनावै, उर बर मुकुत-माल पहिरावै।
मकर-पत्रिका रचै कपोल, बोलत जाइ भावते बोल।
३४० किंकिनि-बंधन बल करि टोरै, छल करि नीबी-बंधन छोरै।
इहि विधि रमनी-रमन जो होई, कहत हैं कबि सठ नाइक सोई।

दक्षिण

जब ललना-मंडल मैं आवै, अति अनुराग भरचौ छबि पावै।
कहत कि ये अनेक छबि ऐना, मेरे अनगन हैं बिवि नैंना।

कित किन इनहिं निवेसित कीजै, बदन बदन मुख कैमें लीजै।
नैंन मूँदि तब तिन मैं रहै, भीतर ही सब मुख-मुख लहै। ३४५
दिखियत तन रोमांचित भये, मनौं प्रेम नव अंकुर लये।
जा नाइक मैं ये सुभ लच्छन, ताकौं दच्छिन कहत विचच्छन।

अनुकूल

निज ही तिय के रस-बस रहै, आन सुंदरी सुपन न चहै।
करकस ठौर प्रिया जब चलै, तिहि दुख ताकौ हिय कलमलै।
ज्यौं श्री राम चले बन घन मैं, सिय के चलत कहत यौं मन मैं। ३५०
हे अवनी ! तुम मृदु तन धरौ, हो दिनकर ! तन तपत न करौ।
अहो पवन ! तुम त्रिगुन बहावौ, रे नग ! मग तैं बाहिर जावौ।
रे दंडक बन ! नियरे आउ, चलि न सकति सिय कोमल पाउ।
इहि परकार रहै रस सान्यौ, सो नाइक अनुकूल बखान्यौ।

भाव

प्रेम की प्रथम अवस्था जोइ, कबि जन भाउ कहत हैं सोइ। ३५५
जाके हिये भाउ संचरै, निरस बस्तु सो रसमय करै।
जैसें निंबादिक रस जिते, मधुर हौंहिं मधुमय मिलि तिते।
भाउ बढ़्यौ क्यौं जानियै सोई, और बस्तु कौं ठौर न होई।

हाव

नैंन बैंन जब प्रगटैं भाउ, ताकौं सुकबि कहत हैं हाउ।
रूप-जोति सी लटकति डोलै, सब सौं बचन मनोहर बोलै। ३६०

हँसै लसै, विलसै दृग-डोरे, मैन-धनुष सी भौंह मरोरे।
इहि परकार जुवति जो लहियै, भाउ-भरी सु हाउ छबि कहियै।

हेला

पिय तन तनक कनखियन झाँकै, नीवी कुच प्रगटै अरु ढाँकै।
कंदुक खेलै, सखि कहुँ ठेलै, अँग अँग भाउ उमगि छबि छेलै।
३६५　छिन छिन वान वनायौ करै, वार बार कर दरपन धरै।
अति सिंगार मगन मन रहै, ताकौं कवि हेला छबि कहै।

रति

उचित सु धाम-काम तौ करै, जानै नहीं कवन अनुसरै।
भूख पियास सबै मिटि जाइ, गुरु जन डर कछु रंचक खाइ।
मन की गति पिय पै इहि ढार, समुद मिली जिमि गंगा-धार।
३७०　तनक बात जौ पिय की पावै, सौ बिरियाँ सुनि तृपति न आवै।
जदपि बिघन गन आवहिं भारे, ता रति-रस के मेटनहारे।
तदपि न भृकुटी रंचक मटकै, एक रूप चित रस कौं गटकै।
स्तंभ, स्वेद पुनि पुलकित अंग, नैननि जलकन अरु सुरभंग।
तन बिबरन, हिय कंप जनावै, बीच बीच मुरझाई आवै।
३७५　इहि प्रकार जाकौ तन लहियै, सो वह रंग-भरी रति कहियै।
यह सुंदर बर 'रसमंजरी', 'नंददास' रसिकन हित करी।
करन-आभरन करिहै जोइ, परम प्रेम-रस पैहै सोइ।

इहि बिधि यह 'रसमंजरी', कही जथा मति 'नंद'।
पढ़त बढ़त अति चोप चित, रसमय सुख कौ कंद॥

मानमंजरी नाममाला

तन्नमामि पद परम गुरु, कृष्न कमल-दल-नैंन ।
जग-कारन, करुनार्नव, गोकुल जिन कौ ऐंन ॥
समुझि सकत नहिं संसकृत, जान्यौ चाहत नाम ।
तिन लगि 'नंद', सुमति जथा, रची नाम की दाम ॥
गुंथनि नाना नाम की, 'अमरकोस' के भाइ । ५
मानवती के मान पर, मिलैं अर्थ सब आइ ॥

मान

अहंकार, मद, दर्प पुनि, गर्व, स्मय, अभिमान ।
मान राधिका कुँवरि कौ, सब कौ करत कल्यान ॥

सखी

वयसा, सौरिन्ध्री, सखी, हितू, सहचरी आहि ।
अली कुँवरि बृषभान की, चली मनावन ताहि ॥ १०

बुद्धि

बुद्धि, मनीषा, शेमुषी, मेधा, धिपना, धीय ।
मति सौं मतौ जु करि चली, भली बिचच्छन तीय ॥

बानी

बानी, वाक, सरस्वती, गिरा, सारदा नाम ।
चली मनावन भारती, बचन चातुरी काम ॥

सीघ्र

१५ आसु, झटित, द्रुत, तूर्न, लघु, छिप्र, सत्वर, उत्ताल ।
तुरत चली चातुर अली, आतुर दिखि नँदलाल ॥

घर

सदन, सकेत, निकेत, गृह, आलय, निलय, स्थान ।
भवन भूप बृषभान के, गई सहचरी जान ॥

कंचन

कंचन, अर्जुन, कार्त्तसुर, चामीकर, तपनीय ।
२० अष्टापद, हाटक, पुरट, महारजत रमनीय ॥
जातरूप के सदन सब, मानिक गच छबि देत ।
जहाँ तहाँ नर-नारि निज, झाँई झुकि झुकि लेत ॥

रूपा

रुक्म, रजत, दुर्बर्न पुनि, जातरूप खर्जूरि ।
रूपे की गोसाल तहँ, भूप भवन तैं दूरि ॥

उज्जल

२५ शुक्ल, शुभ्र, पांडुर, |बिशद, अर्जुन, सित अवदात ।
धवल नवल ऊँचे अटा, करत घटा सौं बात ॥

सोभा

भा, आभा, सोभा, प्रभा, सुषमा, परमा, कांत ।
दुति न कहि परै भवन, की, सुर भूले दिखि भाँति ॥

किरन

अंसु, गभस्ति, मयूख, कर, गो, मरीच, वसु, जोति ।
रस्मि परसि ससि-सूर की, जगमग जगमग होति ॥ ३०

मोर

नीलकंठ, केकी, वरहि, सिखी, सिखंडी, होइ ।
सिवसुतवाहन, अहिभखी, मोर, कलापी सोइ ॥
नाचत मोर अटानि चढ़ि, अति ही भरे अनंद ।
छिन छिन जहँ उनयौ रहै, नव नीरद नँद-नंद ॥

सिंह

कंठवैन, पुनि केसरी, पुनि कहियै हरिजच्छ । ३५
मृगपति, द्वीपी, व्याघ्र पुनि, पंचानन, पलभच्छ ॥
पुंडरीक, हरि, पंचमुख, कंठीरव मृगराइ ।
सिंह पौरि बृषभान की, सहचरि पहुँची जाइ ॥

तुरंग

बाजी, बाह, तुरंग, हय, सैंधव, अरव, किक्याँन ।
तरल, तुरंगम भीर अति, नैंक न पैयै जान ॥ ४०

हस्ती

हस्ती, दंती, द्विरद, द्विप, पद्मी, बारन, ब्याल ।
कुंजर, इभ, कुंभी, करी, स्तंबेरम, सुंडाल ॥

सिंधुर, अनकप, नाग, हरि, गज, सामज, मातंग ।
इन गयंद घूमत खरे, रंजित नाना रंग ।।

अष्टसिद्धि

४५ अनिमा, महिमा, गरिमना, लघिमा, प्राप्ति, प्रकाम ।
बसीकरन अरु ईसता, अष्टसिद्धि के नाम ।।
ये जु अष्ट सिधि कष्ट करि, सिद्धि लहै संसार ।
सो वृषभान भुवाल के, द्वार बुहारनहार ।।

नवनिधि

महापद्म, अरु पद्म पुनि, कच्छप, मकर, मुकुंद ।
५० संख, खर्ब अरु नील इक, अरु इक कहियै कुंद ।।
ये नवनिधि या जगत मैं, काहू बिरलै दीख ।
ते सब वल्लभराइ के, परत भिखारिन भीख ।।

मुक्ति

मुक्ति अमृत, कैवल्य पुनि, अपुनर्भव, अपवर्ग ।
निश्रेयस, निर्बान पद, महासिद्धि बर-स्वर्ग ।।
५५ मुक्ति जु चारि प्रकार की, नहिं पैयत बिन जोग ।
ते वृषभान की पौरि झुकि, पावत पाँवर लोग ।।

राजा

स्वामी, अधिपति, महीपति, प्रभुपति, भूपति, भूप ।
राजा जहँ वृषभान बनि, बैठे सभा अनूप ।।

इंद्र

शक्र, शतक्रत, शचीपति, शक्रंदन, पुरहूत ।
कौशिक, बासव, बृत्रहा, मघवा, मातलि-सूत ॥ ६०
जिष्नु, पुरंदर, बज्रधर, आखंडल, रिपु-पाक ।
सोहै जहँ बृषभान तहँ, को है इंद्र बराक ॥

देवता

देव, अमर, निर्जर, बिबुध, सुर, सुमनस, त्रिदिवेस ।
वृंदारक सु, बिमानगति, अग्निजिह्व, अमृतेस ॥
दिविखद, लेखा, बरहिमुख, गीर्वान, अति ओप । ६५
कवन देवता रंक तहँ, जहँ बैठे बनि गोप ॥

अमृत

सोम, सुधा, पीयूष, मधु, अगदराज, सुरभोग ।
अमी जहाँ कान्हर-कथा, मत्त रहत सब लोग ॥

दास

बिधिकर, किंकर, दास पुनि, अनुचर, अनुग, पदाति ।
भृत्य फिरत जहँ मैन से, छबि बरनी नहिं जाति ॥ ७०

दासी

भृत्या, दासी, किंकरी, चेरी भरहि जु अंभ ।
राजत, मनिमय अजिर मैं, को उरवसि को रंभ ॥

अंतहकरन

स्वांत, हृदय, मनमथ-पिता, आतम, मानस नाँउ ।
मन मन सोचै सहचरी, भीतर किहि बिधि जाँउ ॥

अंजन

७५ कज्जल, गज पाटल, मसी, नाग, दीपसुत सोइ ।
लुकअंजन दृग दै चली, ताहि न देखै कोइ ॥

हीरा

निष्क, पदिक, अरु बज्र पुनि, हीरा बने जु ऐन ।
सकुचति तिन तन देखि जनु, भूप भवन के नैंन ॥

मोती

ससिगोती, मोती, गुलिक, जलज, सीपसुत नाम ।
८० मुक्ता बंदनमाल जनु, बिहँसत सुंदर धाम ॥

मंगल

कुज, अंगारक, भौम पुनि, लोहितांग, महिबाल ।
मंगल से ठाँ ठाँ उदित, धरे जु दीपक लाल ॥

सुक्र

उशना, भार्गव, काव्य, कबि, असुर-पुरोहित होइ ।
गजमोती जोती जहाँ, सुक्र धरे जनु पोइ ॥

उसीसा

उपबरहन, उपधान पुनि, कंदुक सोइ उच्छीर।
१०० मृदुल उसीसे सौं उठँगि, बैठी मान गँभीर॥

कुसुम

कुसुम, सु सुमन, प्रसून पुनि, पुष्प, फलपिता नाम।
फूल गेंद कर बर लिये, छवि सौं खेलत बाम॥

अलक

अलक, सिरोरुह, चिकुर, कच, कुंतल, कुटिल, सु बार।
लटकी ललित ललाट जनु, चंदहि गई दरार॥

ललाट

१०५ मस्तक, अलिक, ललाट, पट, बैंदी बनी जराइ।
मनहुँ भाग-मनि भाल तैं, बाहिर प्रगटी आइ॥

नेत्र

लोचन, अंबक, चक्षु, दृग, अक्षन रूप अधीन।
कछु रिस-राते नैंन जनु, जावक भीने मीन॥

बनसी

बडिस, कुबेनी, मीनहा, मत्स्या-धानी नाम।
११० बेसरि सौं उरझी जु लट, मानहुँ बनसी काम॥

कान

श्रुति, श्रव, श्रोत्र, सु शब्द-ग्रह, कर्न खुभी छबि भीर।
जनु बिबि रूप कमल-कली, फूली मुख-ससि तीर॥

ओठ

बनित ओठ, पुनि रदनछद, अधर मधुर इहि भाइ।
जिनके नाम सु लिखन हीं, किलक ऊख ह्वै जाइ॥

दसन

रदन, दसन, द्विज, दंत, रद, इमि दमकत रस भीज। ११५
नव नीरज मैं जनु जमे, सीतल उज्जल बीज॥

स्याम

स्याम, नील, मेचक, असित, चिबुक-बिंदु छबि ऐन।
मनहुँ रसीले आँब की, मुहकरि मूँदी मैन॥

बृहस्पति

धिषन, सिखंडिज, आंगिरस, सुराचार्य, गुरु, जीव।
मनहुँ बृहस्पति ससि तरे, बनी निबौरी ग्रीव॥ १२०

मुख

बदन, आस्य, आनन, लपन, बक्र, तुंड, छबि-भौन।
मुख रूखी ह्वै जानि इमि, जिमि दरपन मुख-पौन॥

कर

हस्त, बाहु, भुज, पानि, कर, कबहूँ धरति कपोल।
बर अरबिंद बिछाइ जनु, सोवत इंदु अडोल॥

ग्रीव

गल, नल, कंधर, ग्रीव पुनि, कंठ, कपोती कैन। १२५
पीक-लीक जहँ झिलमिलत, सो छबि कीने ऐन॥

कुच

उरज, पयोधर, कुच, स्तन, उर-मंडन, छबि-ऐन ।
कंचन संपुट देव जनु, पूजि छिपाये मैन ॥

किंकिनी

रसना, काँची, किंकिनी, सूत्र, मेखला, जाल ।
१३० छुद्रावलि जनु मदन-गृह, बाँधी बंदनमाल ॥

नूपुर

तुलाकोट, मंजीर पुनि, नूपुर रुनकत पाइ ।
झनक उठी मनु मैन की, बीना सहज सुभाइ ॥

अंबर

चोल, निचोल, दुकूल, पट, अंसुक, बासन, चीर ।
पिय-तन-बास जु बसन मैं, छिन छिन करत अधीर ॥

सुक

१३५ रक्त-चंचु, सुक, कीर जब, पढ़न लगत पिय-नाम ।
झुकि झहरावति मुसकि तब, अति छबि पावत बाम ॥

दर्पन

प्रतिबिंबी, आदरस पुनि, मुकुर, सु दर्पन लेति ।
पिय-मूरति नैंननि निरखि, अनखि डारि तिहिं देति ॥

बीना

तंत्री, तुंबर, बल्लकी, बीन, बिपंची आहि ।
१४० जंत्र बजावति सहचरी, वहुरचौ बरजत ताहि ॥

पान

मुख-वासन, तांबूल, द्विज, पान मखी-कर चाहि।
भौंह अमैंठनि, वितन जनु, चाप चढ़ावन आहि॥

समय

सामय, समय, अनीह, वय, अनमिष, वेला, काल।
वड़ी वेर लौं सखिन यौं, देखी वाल रसाल॥

पानी

अंबु, कमल, कीलाल, जल, पय, पुष्कर, वन, बारि। १४५
अमृत, अर्न, जीवन, भुवन, घनरस, कुस, पापारि॥
मेघपुष्प, बिस, सर्वमुख, कं, कबंध, रस, तोइ।
उदक, पाथ, संवर, सलिल, अप, कपीट पुनि सोइ॥
पानी नैंन पखारि कै, अंजन हाँतौ कीय।
प्रगट भई पिय की सखी, निपट ससंकित हीय॥ १५०

भय

दर, साध्वस, आतंक, भय, भीत, द्विजा पुनि त्रास।
डरती डरती सहचरी, गई कुँवरि के पास॥

चरन

चरन, चलन, गतिवंत पुनि, अंध्रि, पाद, पद, पाइ।
पग बंदन करि कुँवरि के, ठाढ़ी सनमुख जाइ॥

हरदी

१५५ पीता, गौरी, कांचनी, रजनी, पिंडा नाम।
हरदी चूनौ परत ज्यौं, यौं तिहिं दिखि भई भाम ॥

क्रोध

कामानुज, आमर्ष, रुठ, रोष, मन्यु, तम होइ।
छोभ, क्रोध भरी कौं निरखि, डरी सहचरी सोइ ॥

कुटिल

वक्र, असित, कुंचित, कुटिल, टेढ़ी भौंहन ठौर।
१६० अरुन कमल पर प्रात जनु, पंख पसारत भौंर ॥

भृकुटी

भ्रू, तंद्रा, भ्रकुटी, भ्रकुटि, भौंह सतर करि भाल।
बहुत काल बीते तनक, बोली बाल रसाल ॥

कुसल (राधा-वचन)

छेम, अनामय, अभय, भव, सिव, सम, सुभ, कल्यान।
कित डोलति कछु कुसल है, पूछति कुँवरि सुजान ॥

नाम (सखी-वचन)

१६५ संग्या, आह्वय, गोत्र पुनि, छेम-धाम तुंव नाम।
अमी-बरस या दरस जिहि तैं पूरन सब काम ॥

जुवती

स्त्री, ललना, सीमंतिनी, वामा, बनिता, भाम ।
अवला, बाला, अंगना, प्रमदा, कांता, बाम ॥
तरुनी, रमनी, सुंदरी, तनूदरी पुनि सोइ ।
तिय तोसी तिहुँ लोक मैं, रची बिरंचि न कोइ ॥ १७०

ब्रह्मा

अज, कमलज, विधना, पिता, धाता, शतधृत होइ ।
स्रष्टा, चतुरानन, धिषन, द्रुहिन स्वयंभू सोइ ॥
लै लै सत सब छबिन कौ, जिती हुती जग माँझ ।
तो रचि बहु विधि निपुनता, वहुरचौ ह्वै गई बाँझ ॥

सुंदर

सुभग, सुसम, बंधुर, रुचिर, कांत, कमन, कमनीय । १७५
रम्य सु पेसल, भव्य पुनि, दर्सनीय, रमनीय ॥
तैसैं सुंदर बर कुँवर, नागर नगधर पीय ।
जोरि रची बिधना नवल, एक प्रान तन बीय ॥

अर्जुन

जिष्नु धनंजय, बिजयनर, फाल्गुन, कीटी होइ ।
गुडाकेस, गांडीवधर, पार्थ, कपिध्वज सोइ ॥ १८०
अर्जुन ज्यौं धनुधर अवधि, तिहि सम और न बीय ।
तिमि तुव प्रेम अवधि सुबुधि, रची तरुनि-मनि तीय ॥

जुधिष्ठर

धर्मनात, सु अजात-रिपु, कौंतेय, कुरुराउ ।
नृपति जुधिष्ठिर सम कुँवरि, तेरे सौति अभाउ ॥

गंगा

१८५ विष्नुपदी, निर्जरनदी, निगमनदी, हरि-रूप ।
ध्रुवनंदा, मंदाकिनी, भागीरथी अनूप ॥
सुरसरि जिमि तिहुँ लोक मैं, पापहारि, सुभकारि ।
तिमि तुव कीरति-सरित बिय, किय पुनीत संसार ॥

दीर्घ

प्रथुल, प्रांशु, परिनाह, प्रथु, आयत, तुंग, बिसाल ।
१९० दीरघ साँस जु भरति बलि, को कारन कहि बाल ?॥

सरीर

काइ, कलेवर, बपुष, बपु, देह आत्मा अंग ।
विग्रह, अपघन, संहनन, धाम, सरीर, पतंग ॥
तुव तन समसरि करन हित, कनक अगिनि झँप लेइ ।
कोमल सरस सुगंध नहिं, को कबि उपमा देइ ॥

कमल

१९५ पुंडरीक, पुष्कर, कमल, जलज, अब्ज, अंभोज ।
पंकज, सारस, तामरस, कुवलय, कंज, सरोज ॥
मकरंदी, अरबिंद पुनि, पद्म, कुसेसय नाँउ ।
क्यौं मुख नलिन मलिन कछू, देखति हौं बलि जाँउ ॥

चंद्रमा

इंदु, सुधानिधि, कलानिधि, जैवात्रिक, ससि, सोम ।
अंज, अमीकर, छपाकर, बिधु, हिमकर, हिम रोम ॥ २००
बिछुरि चंद्र तैं चंद्रिका, रहति न न्यारी होइ ।
इमि अवलोकति वाल कौं, कहि वलि कारन सोइ ॥

काम

मदन जु मनमथ, मनोभव, समर, पंचसर, मार ।
मीनकेत, कंदर्प पुनि, दर्पक अति सुकुमार ॥
पुष्पचाप, मनसिज, बिनन, संवरारि पुनि काम । २०५
पति सौं रति जिमि रुठि रहति, इमि देखियत तुहिं भाम ॥

भ्रमर

मधुकर, भ्रमर, द्विरेफ, अलि, अलिन सिलीमुख, भृंग ।
चंचरीक, रोलंब पुनि, कीलालय, सारंग ॥
मधुप, मधुब्रत, मधुरसिक, इंदीवर-मधु-चौर ।
भँवर बिना नहिं केतकी, केतकि बिना न भौंर ॥ २१०

दामिनी

छन, रुचि, छटा अकाल की, तड़ित चंचला होइ ।
दामिनि विना न घन बनै, घन बिन बनै न सोइ ॥

सेना

प्रतनी, ध्वजनी, बाहिनी, चमू, बरूथिनि ऐन ।
सेना बिन नृप ना बनै, नृप बिन बनै न सैन ॥

प्रिया

२१५ इष्टा, दयिता, वल्लभा, प्रिया, प्रेयसी होइ।
प्रिय के तोसी प्रीतमा, और न देखी कोइ॥

लता

व्रतती, विशती, वल्लरी, विष्नी, लता, प्रतान।
अमरबेलि जिमि मूल विन, इमि दिखियत तुव मान॥

मित्र

सुहृद, मित्र, वल्लभ, सखा, प्रीतम परम सुजान।
२२० पिय प्यारे पै जाहु वलि, न करि अकारन मान॥

पुत्र

आत्मज, सून, अपत्य, सुत, तनुज, तनय अरु तात।
नँद-नंदन गोविंद सौं, न करि गर्ब की बात॥

नर

मानुष, मर्त्य, मनुष्य पुनि, मानव, मनुज, पुमान।
नर जिनि जानै नंद-सुत, हरि ईसुर भगवान॥

बेद

२२५ आम्नाय, श्रुति, ब्रह्म पुनि, धर्म-मूल सब काम।
निगम, अगम जाकौं कहैं, सो ये सुंदर स्याम।

ऋषि

ऋषि, भिच्छुक, तापस, जती, बृती, तपी, मुनि आहि।
जोगी निर्मल मन किये, नित ही खोजत ताहि॥

सेस

सेस, महा अहि, सर्प-पति, धरनी-धरन, अनंत ।
सहस बदन करि गुन गनत, तदपि न पावत अंत।। २३०

धर्मराज

बैवस्वत पुनि पितरपति, संजमनीपति होइ ।
महिषध्वज, नरदंडधर, समवर्ती पुनि सोइ ।
अंतक, काल, कृतांत, जम, जग जातैं डरपंत ।
सो तुव पिय भ्रू-भंग तैं, थर थर अति कापंत ।।

कुबेर

पुन्यजनेस्वर, बैश्रवन, धनद, ऐलबिल होइ । २३५
गुह्यकपति, त्रंबक-सखा, राजराज पुनि सोइ ।।
नरवाहन, किन्नरअधिप, द्रब्याधीस कुबेर ।
सो तुव पिय-पद-परस कौं, पावत नाहिं सु बेर ।।

बरुन

बरुन, प्रचेता, पासपति, जलपति, जलचर-ईस ।
सो तुव पिय के पगन पर, घिसत रहत नित सीस ।। २४०

उमा

उमा, अपर्ना, ईस्वरी, गौरी, गिरिजा होइ ।
मृडा, चंडिका, अंबिका, भवा, भवानी सोइ ।।
आर्या, मेनकजा, अजा, सर्बमंगला नाम ।
माया जिहि आधार जग, बिस्तारत है भाम ।।

गनेस

२४५ लंबोदर, हेरंब पुनि, द्वैमातुर, इकदंत ।
मूषक-वाहन, गज-बदन, गनपति, गिरिजा-तंत ।।
कोटि बिनाइक जौ लिखैं, महि से कागद कोट ।
तौ तेरे पिय-गुनन कौ, गनत न आवै टोट ।।

धूर्त (राधा-वचन)

ब्याजी, बंचक, कुटिल, सठ, छद्मी, धूर्त्त, छली जु ।
२५० कपटी कान्हर कुँवर की, केती कहति भली जु ।।

मृग (सखी-वचन)

ऐन, हरिन, वातय, पृषद, हरि, सारँग पुनि आहि ।
मृग, कुरंग से दृग लिये, वलि थोरौ इतराहि ।।

पाप

ऐन, बृजिन, दुष्कृत, दुरित, अघ, मलीन, मसि, पंक ।
किल्विष, कल्मष, कलुष पुनि, कस्मल, समल, कलंक ।।
२५५ पाप-महाबन दहन-दव, जाकौ रंचक नाम ।
ताकौं तू कपटी कहै, तोहिं कहा कहौं भाम ।।

पाषान

ग्राव, अस्म, प्रस्तर, उपल, सिला, पखान, सु भार ।
पानी पर पाहन तरे, जाके नाम अधार ।।

नौका

उड़प, पोत, नौका, पलव, तरि, बहित्र, जलजान ।
नाम-नाउ चढ़ि भव-उदधि, केते नरे अजान ॥ २६०

रुधिर

स्रोनित, लोहित, रक्त पुनि, रुधिर, अस्त्रज, छतजात ।
लोहू पीवत पूतना, पूत भई छ्वै गात ॥

राच्छस

कौनप, अस्रप, पुन्यजन, निकषात्मज, दुर्नाद ।
कर्बुर, असुर, निसाचरा, जातुधान क्रव्याद ॥
अघ से राच्छस पातकी, मैं देखी गति होति । २६५
उलटि समानी पीय मैं, परगट ताकी जोति ॥

धूरि

धूरि, धूसरी, खेह, रज, पांसु, सरकरा, मंद ।
जा पद-पंकज-रेनु कौं, बांछत सनक सनंद ॥

महादेव

गंगाधर हर, सूलधर, ससिधर, संकर, वाम ।
सर्ब, संभु, सिव, भीम, भव, भर्ग, कामरिपु नाम ॥ २७०
त्रिनयन, त्र्यंबक, त्रिपुरअरि, ईस, उमापति होइ ।
जटी, पिनाकी, धूर्जटी, रुद्र, वृषध्वज सोइ ॥
महादेव से देव बलि, जाकौ धारत ध्यान ।
ताकौं तू कपटी कहति, यह धौं कौंन सयान ॥

सूर्य

२७५ देव, दिवाकर, बिभाकर, दिनकर, भास्कर, हंस।
मिहिर, तिमिरहर, प्रभाकर, विवस्वान, तिग्मंस ॥
ब्रध्न, विरोचन, बिभावसु, मारतंड, त्रय अंग।
अंबर-मनि, दिनमनि, तरनि, सविता, सूर, पतंग ॥
रवि-मंडल मंडन नवल, कहत सु मुनिगन जाहि।
२८० सो यह नागर नंद कौ, क्यौं कपटी वलि आहि ॥

मिथ्या

मिथ्या, मोघ, मृषा, अनृत, वितथ, अलीक निरथ्थ।
ऐसैं पिय सौं झूँठ बलि, क्यौं बोलियै बिरथ्थ ॥

निकट (राधा-वचन)

निकट, पार्स्व, अविदूर, तट, उपसमीप अभ्यास।
अवसि अनादर हौइ जौ, रहै निरंतर पास ॥

चंदन

२८५ गंधसार श्रीखंड, हरि, मलयज, भद्र, पटीर।
चंदन कौ इँधन करत, मलया बासी भीर ॥

मीन

सफरी, अनमिष, मत्स, तिमि, प्रथु, रोमा, पाठीन।
मकर, उलूपी, अंडभव, बैसारिन, झख, मीन ॥
छीर समुद के नीरचर, रहत चंद ढिंग आहि।
२९० चंदहि मंद न जानहीं, जलचर मानत ताहि ॥

समुद्र (सखी-वचन)

सिंधु, सरितपति, सलिलपति, अंभोनिधि, कूपार ।
इरावान, अर्नव, उदधि, कौस्तुभ-अवधि, अपार ॥
रत्नाकर गुन-रूप कौ, सुंदर गिरिधर पीय ।
तिहिं मिलि प्रेम कलोलियै, यौं न बोलियै तीय ॥

मर्कट (राधा-वचन)

कपि, साखामृग, बलीमुख, कीस, प्लवंग, लँगूर । २९५
वानर कर बर नारियर, दियौ विधाता कूर ॥

संकर्षन

रोहिनेय, बलभद्र, बल, संकर्षन, बलराम ।
नीलांबर, रेवति-रमन, मुसली, पालक काम ॥
अब रंचक जौ चुप रहै, कित बैठी जिय लेनि ।
हरि हलधर के बीर कौं, किती बड़ाई देति ॥ ३००

पृथ्वी (सखी-वचन)

पृथ्वी, छिति, छोनी, छमा, धरनी, धात्री, गाइ ।
उरवी, जगती, बसुमती, वसुधा, सर्ब-सहाइ ॥
अचला, विपुला, सागरा, धरा उरवरा होइ ।
गोत्रा, अवनी, कुंभिनी, मही, मेदनी सोइ ॥
बिस्वंभरा, वसुंधरा, थिरा, कास्यपी, आहि । ३०५
रसा, अनंता, भू, इला, बिला कहत पुनि ताहि ॥

सबधर जिहि इक सीस पर, सोभित ज्यौं कन हीर।
क्यौं आवै तुव आँखि तर, ता हलधर कौ बीर॥

बान

तोमर, खग, जिह्मग, असुग, बिसिख, सिलीमुख, बान।
३१० सर, मार्गन, नाराच, इषु, पत्री, शोषन-प्रान॥
साइक बाइ पिराइ पुनि, सिमिटि सरीर मिलाइ।
बचन-तीर की पीर बलि, मिटै न जौ जुग जाइ॥

अग्नि

पावक, बन्हि, दहन, जलन, सिखी, धनंजय, होइ।
शुक्र, उषर्बुध, पवनसुख, बीतहोत्र पुनि सोइ॥
३१५ जातबेद, जलजोति-हर, चित्रभान, बृहभान।
अनल, हुतासन, बिभावसु, निर्जरजीह, कृशान॥
अग्नि-दग्ध जे द्रुम-लता, फिरि फूलत, फल देत।
बचन-दग्ध जिनके हिये, बहुरि न अंकुर लेत॥

मूर्ख (राधा-वचन)

मुग्ध, मंद, जड़, मूढ़ नर, अग्य, कटुकबद, संठ।
३२० मूरख जन जानै कहा, मनि जैसैं कपि-कंठ॥

चतुर (सखी-वचन)

कृती, कुशल, कोबिद, निपुन, छन, प्रबीन, निश्नात।
पटु, बिदग्ध, नागर, चतुर, जानत रस की बात॥

अपराध

अघ, अगास, हेलन अहित, औगुन होइ जु पीय ।
कुच छांह जिमि राखियै, यौं न भाखियै तीय ॥

प्रेम

हार्द, स्नेह, प्रियता बहुरि, प्रनय, राग, अनुराग । ३२५
किन गौ तेरौ प्रेम बलि, हे भामिनि ! बड़भाग ॥

पर्वत

अग, नग, भूभृत, दरीभृत, शृंगी, सिखरी होइ ।
सैल, सिलोच्चय, गोत्र, हरि, अचल, अद्रि पुनि सोइ ॥
गिरि गोवर्धन वाम कर, धर्यौ स्याम अभिराम ।
तव उर तैं वह धकधकी, अब लौं मिटी न वाम ॥ ३३०

पन्नग

पन्नग, नाग, भुजग, उरग, जिह्मग, भोगी, सर्प ।
चक्षुश्रवा, हरि, सरीसृप, काकोदर, गर-दर्प ॥
आसीविष, विषधर, फनी, मनी, बिलेसय, ब्याल ।
चक्री, दर्वी, गूढ़पद, लेलिह केवल काल ॥
काली अहि गंजन समै, मैं राखी गहि बाँह । ३३५
नँद-नंदन पिय प्रेम बस, परत हुती दह माँह ॥

पीड़ा

बाधा, विधुरा, विथा, रुज, पीड़ा, आरति, ग्लानि ।
अब जु न परसति पीर बलि, किन सीखी यह बानि ॥

असुर

दानव, दनुज सु दैत्य पुनि, मुररिपु निपट असंत ।
३४० माया रूपी रैनि-चर, डोलत असुर अनंत ॥

संध्या

संध्या, निसिमुख, पितृप्रसु, सायंकाल प्रदोष ।
साँझ परी है चलहु बलि, जिनि करि इतनौ रोष ॥

बन

कानन, बिपिन, अरन्य, बन, गहन, कच्छ, कांतार ।
अटवी मैं इकले दई !, मोहन नंदकुमार ॥

बिस

३४५ गरल, हलाहल, गर बहुरि, कालकूट, रसमार ।
रस मैं बिस जिनि घोरि बलि, चलि अब न करि अबार ॥

पपीहा

कालकंठ, दात्यूह, हरि, चातक, सारँग नाँउ ।
घन सौं रूठि पपीहरा, नहिंन बनै बलि जाँउ ॥

जामिनी

छनदा, छपा, तमस्विनी, तमी, तमिश्रा होइ ।
३५० निसि, सर्बरी, बिभावरी, रात्रि, त्रिजामा सोइ ॥
सुखद सुहाई सरद की, कैसी जामिनि जाति ।
चलि बलि मोहनलाल पै, कित बैठी अनखाति ॥

आकाश

अंबर, पुष्कर, नभ, वियत, अंतरिच्छ, घनवास ।
व्योम, अनंत, विहायसा, खं, सुरवर्त्म, अकास ।।
गगन जु उड़गन बनि रहे, नैंक चहौ तजि रोख । ३५५
देखन तेरौ रूप जनु, सुरतिय किये झरोख ।।

नख

करज, पुनर्भव, नखर, नख, हे रँग-भीनी भाम ! ।
कब की छिनिहि जु खननि बलि, नहिं कछु नख सौं काम ।।

सूक्ष्म

तुच्छ, अल्प, लव, सूक्ष्म, तनु, निपट कृसोदर तोर ।
कहि बलि एतौ मान सचि, राख्यौ है किहि ठौर ।। ३६०

संग्राम

आयोधन, रन, आजि, मृध, आहव, संख्य, समीक ।
संपराइ, संगर, समर, संजुग, कलह, अनीक ।।
सुरति-जुद्ध जब पीय सौं, तोहिं बनैगौ बाम ।
नख नाराचन बिन कुँवरि, करिहै कहा प्रनाम ।।

मकरी

लूता, सूत्रा, मर्कटी, उर्ननाभि, पुनि होइ । ३६५
जनु कहुँ मकरी गुर करी, पकरी विद्या सोइ ।।

मग

वर्तम, अध्वा, सरनि, पथ, संचर, पाद-बिहार।
मग देखत ह्वैहै दई! आतुर नंद-कुमार॥

कृपा

माया, दया, कृपा, घृना, अनुकंपा, अनुक्रोस।
३७० करुना करि करुनानिधे, राधे जिनि करि रोस॥

कृपान

रिष्ट, कुसेय, कृपान, असि, मंडलाग्र, करवाल।
खर्ग जितौ तेतौ कहा, घाउ करन कह्यौ बाल॥

दिसा

कन्या, काष्टा, ककुभ, दिसि, गो, आसा, इहि ओर।
कब के चितवत हैं दई! नागर नंदकिसोर॥

नदी

३७५ सरिता, धुनी, तरंगिनी, तटिनी, ह्रदनी, होइ।
स्रोतस्वती, सु निम्नगा, अपग, बिरेफा सोइ॥
सैवलिनी, स्रोतस्विनी, द्वीपावति, जल-माल।
नदी नहीं कोउ बाट मैं, सोच कहा है बाल॥

पिता

तात, जनक, सबिता, पिता, बबा तोरि गुन-धाम।
३८० तोहिं पहिले नँदलाल कौं, देत हुतौ हे बाम॥

बिवाह

परिन, निवेसन, परिनयन, उदवह, बिहित बिवाह।
सांति परी जु भयौ नहीं, दुख देती उहि नाह ॥

मदिरा (राधा-वचन)

मधु, माध्वी, मदिरा, मिरा, सुरा, वारुनी होय।
आसव, मद, कादंबरी, हलिप्रिया, मैरेय ॥
सिद्ध, प्रसन्ना, वुद्धिहा, हाला, सिंधु-प्रसूति। ३८५
मद पीये ज्यौं बकत कोउ, कहा कहति है दूति ॥

सुभाउ (सखी-वचन)

प्रकृति, निसर्ग, अनिज, सहज, बिस्व सुसील सुभाउ।
कवन टेव टेढ़ी परी, सुंदर सरल कहाउ ॥

अंधकार

अंधकार, तम, ध्वांत पुनि, कुहर कहत नीहार।
सो तेरे देख्यौ कुँवरि, सौ मन तेल अँध्यार ॥ ३९०

बिटप

साखी, बिटपी, अनोकह, कुज, द्रुम, पादप होइ।
पत्री, दली, फली, वरहि, बृच्छ, महीरुह सोइ ॥
कल्पतरु तरें तलप रचि, कब के बिलपत पीय।
तदपि न नेंक दया कहूँ, उपजति निरदय हीय ॥

पत्र

३९५ पत्र, पर्न, दल, छदन, छद, खरकत जव तरु पात ।
तुव आगम भ्रम चौंकि पिय, उठि उठि उत लौं जात ॥

पवन

श्वसन, सदागति, मरुत, हरि, मारुत, जगत परान ।
अनिल, प्रभंजन, गंधबह, नभश्वान, पवमान ॥
तुव तन परिमल परसि जव, गमनत धीर समीर ।
४०० ताकौं बहु सनमान करि, परिरंभत बलबीर ॥

सब्द

नाद, निनद, निश्वन, सवद, सुखर, मुखर, रव, राउ ।
वै बंसी मैं कहत पिय, हे प्रानेस्वरि आउ ॥

आग्या

बय, आदेस, निदेस पुनि, आग्या, सासन जोग ।
आयसु है अब जाउँ फिरि, लहैं सु प्रीतम लोग ॥

अति

४०५ अतिसय, भ्रस, अतिबेल, अल, अधिक, अत्यंत, अनंत ।
अति सर्बत्र भली नहीं, कहि गये संत अनंत ॥

समूह

निकर, प्रकर, निकुरंब, ब्रज, पूर, पूग, चँय, ब्यूह ।
कंदल, जाल, कलाप, कुल, निवह, निचय, समूह ॥

चक्र, अनंत, कदंब, गन, ग्राम, तोम बहु बृंद ।
मैं अनेक बातैं कही, भई तये की बुंद ।। ४१०

अल्प॰

दर, स्तोक, ईषद, अलप, रंचक, मंद, मनाक ।
तब पिय-सहचरि तन चितै, मुसकी कुँवरि तनाक ।।

दुख

कदन, बिधुर, संकट, तुदन, दहन, बृजिन पुनि आहि ।
दुख जनि दै अब जान दै, कत बैठी अनखाहि ।।

अर्द्धरात्रि (राधा-वचन)

निसि, निसीथ पुनि महानिसि, हौन लगी अधरात । ४१५
कौंन चलै, सखि सोइ रहि, जैहैं उठि परभात ।।

वज्र (सखी-वचन)

असनि, कुलिस, निर्घात, पवि, वज्र सु तेरे नाहिं ।
परे बुरे के धाम पर, बिरस करै रस माहिं ।।

लज्जा

ह्री, व्रीड़ा, लज्जा, त्रपा, सकुच न करि बिन काज ।
चलि बलि प्यारे पियहि मिलि, औषधि खात न लाज ।। ४२०

पादत्रान

पादत्रान, उपानहा, पादपीठ मृदु भाइ ।
पनही मनही भावती, आगे धरी बनाइ ।।

उच्चधाम

सौध, हर्म्य, प्रासाद तैं, चली जु तिय गति मंद ।
सोभित मुख, जनु गगन तैं, अवनी उतरत चंद ॥

चंद्रिका

४२६ जोतिस्ना पुनि कौमुदी, बहुरि चंद्रिका नाँउ ।
जौन्ह सी पसरति बदन तैं, थोरौ हँसि, बलि जाँउ ॥

वीथी

पुन्य, प्रतोली, बीथिका, रथ्या कहियै ताहि ।
इहि बीथी चलि, जाउँ बलि, निपट निकट पिय आहि ॥

बाग

कृत्रिम वन उद्यान पुनि, उपवन सोइ आराम ।
४३० यह बृंदाबन बाग तुव, दिखि बलि छबि कौ धाम ॥

बसंत

कुसुमाकर, रितुराज, मधु, माधव, सुरभि, बसंत ।
माली जिमि जुगवत सदा, यातैं अधिक लसंत ॥

खग

द्विज, संकुत, पंछी, सकुनि, अंडज, बिहग, बिहंग ।
बियग, पतत्री, पत्ररथ, पत्री, पतग, पतंग ॥
४३५ रटत बिहंगम, रँग भरे, कोमल कंठ सु जात ।
जनु तुव आगम मुदित द्रुम, करत परस्पर बात ॥

पीपल

चलदल, पीपल, गजग्रसन, बोध-बृच्छ, अस्वत्थ।
पीपल देवलि दाहिने, जोरि हत्थ धरि मत्थ॥

पाडर

थाली, पाटलि, फलरुहा, स्यामा, बामा नाम।
अंबुवास, मधुदूति यह, पाडर करति प्रनाम॥ ४४०

आम

पिक-वल्लभ, कामांग पुनि, मदिरा-सख, सहकार।
यह रसाल की डार बलि, नै जु रही फलभार॥

चंपा

चांपेय, चंपक, सुरभि, हेमपुष्प सुकुमार।
यह चंपा पाँ परति वलि, लिये पुहुप उपहार॥

मधूक

माधव, मधुद्रुम, मधुश्रुवा, मधुष्ठील, गुडफूल। ४४५
या मधूक के फूल बलि, कछु तुव गंडन तूल॥

दाड़िम

रक्तवीज, हालिक, करक, सुक-प्रिय, कुन्टिम, मार।
ये दाड़िम इत देखि बलि, कछु तुव दसन अकार॥

कदली

रंभा, मोचा, गजबसा, भानुफला सुकुमार।
ये कदली जिन मैं कछू, तव ऊरू उनहार॥ ४५०

वेल

सुरभि, सिलूखी, सदाफल, ताल, विल्व, मालूर ।
ये श्रीफल तुव कुचन सम, कहत बहुत कवि कूर ॥

तमाल

कालकंध, तापिच्छ पुनि, तिंदुक सहज तमाल ।
बैठे हे जहँ काल्हि बलि, तुम अरु मोहनलाल ॥

कदंव

४५५ नीप, तूल, प्रीयक वहुरि, मदिरा-गंध सु बाह ।
यह कदंव बलि कान्ह जिहि, चढ़ि कूदे दह माह ॥

पलास

वातपोथ पुनि ब्रह्मद्रुम, किंसुक, पर्न, पलास ।
केसू बिरही जनन कौ, नाहर नहन बिलास ॥

बहेरा

अक्ष, बिभीतक, कर्षफल, संवर्तक, कलिबृक्ष ।
४६० भूताबास बहेर तरु, जिनि चलियै मृग-अक्ष ॥

नारियर

बानरमुख, लांगूल पुनि, नारिकेल सुभकाम ।
अहो नारि बर नारियर, बलि तोहिं करत प्रनाम ॥

सुपारी

घोंटा, क्रमुक, गुवाक पुनि, पूग, सुपारी आहि ।
वारी वारी कहत बलि, रंचक इन तन चाहि ॥

कैंछ

कोलिबल्लिका, कपिलना, बिसर, श्रेयसी नाँउ। ४६५
कंडु करनि यह अंग मैं, कैंछ न छू, बलि जाँउ॥

मरिच

तिक्ता, उष्ना, कोलका, कृष्नफला पुनि नाँउ।
मरिच लना पाँ परि कहनि, भली करी बलि जाँउ॥

पीपरि

कोला, कृष्ना, मागधी, तिग्म, तंदुला होइ।
बैदेही, स्यामा, कना, सुंडी कहियै सोइ॥ ४७०
यह पीपरि बलि पग गहैं, कहनि बहुत परकार।
अब तैं इतनी करि कुँवरि, प्रीतम प्रान-अधार॥

हर्रा

अभया, पथ्या, अव्यथा, अमृता, चेतकि होइ।
कायस्था पुनि पूतना, सिवा श्रेयसी सोइ॥
यह हरीतकी पग गहति, हरति उदर के रोग। ४७५
ज्यौं तू गिरिधर लाल के, बाल सकल सुख जोग॥

सोंठ

बिस्वा, नागर, जगभिपक, महा औषधी नाँउ।
यह सुंठी लुठि पगन तर, कहत कि बलि बलि जाँउ॥

बिद्रुम

सुषिरा, नटी, नली, धमनि, कपोतांघ्रि, परवाल ।
४८० तुव अधरन सम कहत कवि, पै नहिं मृदुल रसाल ।।

दाख

स्वादी, मृदुका, मधुरसा, कालमेपिका होइ ।
गुडा, प्रयाला, गोस्तनी, चारुफला पुनि सोइ ।।
यह छुद्रा बलि पाँ परति, रंचक इहि तन चाहि ।
नहिंन गसीली बालमी, निपट रसीली आहि ।।

केसरि

४८५ कासमीर, कुंकुम, रुधिर, देवबल्लभा नाँउ ।
यह केसरि दृग भरि कहति, भली करी बलि जाँउ ।।

स्वर्नजूथिका

हरिनी, गनिका, जूथिका, हेमपुष्पिका जाइ ।
यह जूथी गूँथी छबिन्ह, ठाढ़ी लेत बलाइ ।।

राजबल्ली

अंबष्ठा, प्रियबादिनी, राजपुत्रिका आहि ।
४९० तुमहिं देखि फूली जु बलि, रंचक इहि तन चाहि ।।

मालती

सुमना, जाती, मल्लिका, उत्तम गंधा तासु ।
कछू इक तुव तन बास सौं, मिलत जासु की बासु ।।

संजीवनी

जीवा, जीवनि, मधुश्रवा, जीवंती पुनि नाँउ।
यह संजीवनि मूरि बलि, जैसी तू बलि जाँउ॥

बंधूक

बंधुजीव, बंधूक पुनि, जपाकुसुम यह आहि। ४९५
दुपहरिया के फूल बलि, निसि फूले तुव चाहि॥

गुंजा

काकचंचुका, कृष्नला, गुंजा करत प्रनाम।
मुख जु स्याम, जनु स्याम कौं, लेत नाम अभिराम॥

केतकी

ताल, खजूरी, तृनद्रुमा, केतकि पकरति पाइ।
तुव आगम आनंद बलि, फूली आँगन माइ॥ ५००

लवंग

देवकुसुम, श्रीसंग पुनि, जायक जाकौ नाँउ।
ललित लवंग लता इतहि, पगनि परति बलि जाँउ॥

एला

चंद्रकन्यका, निष्कुटी, त्रिकुटि, बालुका बेलि।
इत एला पाँ परति बलि, इहिं रंचक सुख मेलि॥

माधवी

बासंती, पुंड्रक सु इह, अतिमुक्त लता नाँउ। ५०५
इतहिं माधवी पाँ परति, तनक चितै बलि जाँउ॥

नागलता

तांबूली, अहिवल्लरी, द्विजा पान की वेलि।
सरस भई तुव दरस तैं, बलि रंचक मुख मेलि॥

वट

जटी, कपर्दी, रक्तफल, वहुपद, धृव निग्रोध।
५१० यह वंसीवट देखि बलि, सब सुख निरवधि रोध॥

सरोवर

ह्रद, पुष्कर, कासार, सर, सरसी, ताल, तड़ाग।
यह देखौ बलि मान सर, फूल्यौ तुव अनुराग॥

जमुना

जम-अनुजा, रबिजा, जमी, कृष्ना, स्यामल आप।
यह जमुना सब समुद फिरि, आवत तुव परताप॥

तरंग

५१५ भंग तरंग, कलोल पुनि, बीची, उर्मि सुभाइ।
लहरी हाथ पसारि जनु, जमुना परसति पाइ॥

कूल

कूल, पुलिन, उपकंठ, तट, निकट रोध अभ्यास।
तीर तीर बलि जाहि चलि, निपट निकट पिय पास॥

बेत

बेत, सीत, बिंदुल रथी, अभ्रपुष्प बानीर।
५२० मंजुल बंजुल कुंज तर, जहँ बैठे बलबीर॥

कोकिल

परभ्रत, कलरव, रक्त-दृग, पिक धुनि तहँ रस पुंज ।
जनु पिय आरति निरखि तुहि, टेरति बलि, चलि कुंज ॥

इंद्री

गो, हृषीक, खं, करन, गुन, इंद्री ज्यौं अनु पाइ ।
यौं राधा माधव मिले, परम प्रेम रस पाइ ॥

माला

माला, श्रक, श्रज, गुनवती, यह जु नाम की दाम । ५२५
जो नर करिहै कंठ सौं, ह्वैहै छवि कौ धाम ॥

जुगल

जुगल, जुग्म, जुग दंड द्वै, उभय, मिथुन, विवि, बीय ।
जुगलकिसोर सदा बसहु, 'नंददास' के हीय ॥

अनेकार्थमंजरी

जु प्रभु जोति-मय, जगत-मय, कारन, करन, अभेव ।
बिघन-हरन, सब सुभ-करन, नमो नमो तिहि देव ॥
एकै वस्तु अनेक ह्वै, जगमगात जग-धाम ।
जिमि कंचन तैं किंकिनी, कंकन, कुंडल नाम ॥
५ उचरि सकत नहिं संसकृत, अरु समुझन असमर्थ ।
तिन हित 'नंद' सुमति जथा, भाख्यौ 'अनेका अर्थ' ॥

गो

गो इंद्री, दिव, वाक, जल, स्वर्ग, वज्र, खग, छंद ।
गो धर, गो तरु, गो किरन, गो-पालक गोबिंद ॥

सुरभी

सुरभी चंदन, सुरभि मृग, सुरभी बहुरि बसंत ।
१० सुरभी चारत बन सुने, जो जग कमला-कंत ॥

मधु

मधु बसंत, मधु चैत्र, नभ, मधु मदिरा मकरंद ।
मधु जल, मधु पय, मधु सुधा, मधुसूदन गोबिंद ॥

कलि

कलि कलेस, कलि सूरमा, कलि निखंग, संग्राम ।
कलि कलिजुग तहँ अवर नहिं, केवल केसव नाम ॥

आत्मा

मन बुधि चित्त सुभाउ तन, धर्म जीउ अहँकार । १५
ये सब कहियै आतमा, परमात्मा आधार ॥

धनंजय

अग्नि धनंजय कहत कवि, पवन धनंजय आहि ।
अर्जुन बहुरचौ धनंजय, कृष्न सारथी जाहि ॥

अर्जुन

अर्जुन द्रुम, अर्जुन धवल, सहसार्जुन अथ्थ ।
अर्जुन मद्धिम पंडु सुत, हरि खेले जिहि सथ्थ ॥ २०

पत्र

पत्र परन, औ पत्र रथ, वाहन पत्र सुचित्त ।
पत्र पंख विधि नहिं दये, उड़ि मिलिने हरि मित्त ॥

पत्री

पत्री तरु, पत्री कमल, पत्री बहुरि विहंग ।
पत्री सर कर चित्त जिनि, इमि सेवहु श्री रंग ॥

बरही

बरही द्रुम, बरही अगिनि, बरही कुरकुट नाम । २५
बरही मोर किसोर के, चंद धरे सिर स्याम ॥

धाम

धाम तेज औ धाम तन, धाम किरन, गृह धाम ।
धाम जोति जो ब्रह्म सो, घनीभूत हरि स्याम ॥

काम

काम भोग, अभिलाष पुनि, मनमथ कहियै काम।
३० काम काज जिनि भूलि मन, भजि लै हरि अभिराम ॥

वाम

वाम कुटिल अरु वाम सिव, वाम काम कर वाम।
वाम मनोहर कौं कहत, जैसैं सुंदर स्याम ॥

भव

भव संकर, संसार भव, भव कहियै कल्यान।
भव जु जन्म जग सुफल तव, जव भजियै भगवान ॥

कं

३५ कं सुख, कं जल, कं अनल, कं सिर, कं पुनि काम।
कं कंचन सौं प्रीति जस, अस करि रे हरि नाम ॥

खं

खं नभ, खं गृह, खं नखत, खं रंध्रन कौ नाम।
खं इंद्री दुख देति हैं, दया करौ घनस्याम ॥

कल्प

कल्प जु विधि दिव, कल्प सम, कल्प समर्थ जु कोइ।
४० कल्प कपट तजि हरि भजौ, कल्पबृच्छ सम सोइ ॥

कर

कर गज-पुष्कर, हस्त कर, कर जु किरनि, कर दान।
कर बिष सम तजि बिषय मन, भजि हरि अमी निधान ॥

दर

दर जु कहत कवि संख कौं, दर ऊँपद कौं नाम।
दर डर तैं राखहु कुँवरि, गिरिधर सुंदर स्याम॥

वर

वर सुंदर, वर श्रेष्ठ पुनि, वर जु देवता देन। ४५
वर दूलह में कान्ह निन, ब्रज निय हिय हरि लेन॥

वृख

वृख सुरपति, वृख कर्न पुनि, वृख जु बृखभ, वृख काम।
वृख सु धर्म करि हरि भजौ, जौ चाहौ सुख धाम॥

पतंग

तरनि पतंग, पतंग खग, पावक बहुरि पतंग।
सब जग रंग पतंग कौ, हरि एकै नवरंग॥ ५०

दल

दल कहियै नृप कौ कटक, दल पत्रन कौ नाम।
दल बरही के चंद सिर, धरे स्याम अभिराम॥

पल

पल आमिष कौं कहत कवि, खट उसास पल होइ।
पल जु पलक, हरि बिच परे, गोपिन जुग सत सोइ॥

बल

बल बीरज, धीरज बहुरि, बल नृप-दल कौ नाम। ५५
बल साहस, बल दैत्य पुनि, बल कहियै बलराम॥

अल

अल अत्यर्थ, समर्थ अल, अल पूरन कौ नाम।
अल अभरन,अल अलस तजि, भजि मनमोहन स्याम ॥

बय

बय विहंग कौं कहत कबि, बय कहियै पुनि काल।
६० बय जु बहिक्रम जाति है, भजि लै मदन गुपाल ॥

जीव

जीव वृहस्पति कौं कहत, जीव कहावत चंद।
जीव आत्मा नित जियै, जिय के जिय नँद-नंद ॥

मार

मार मृतक, विख मार पुनि, मार कहावै काम।
मार अमृत हूँ तें सरस, सुंदर गिरिधर स्याम ॥

सार

६५ सार वीज, धीरज, धरम, सार बज्र, घृत सार।
सार सवन कौ साँवरौ, मही परचौ संसार ॥

कलभ

कलभ कहत करि-सावकहि, कलभ बहुरि उत्ताल।
कलभ कलुष कलिकाल तें, काढ़हु कृष्न कृपाल ॥

नभ

नभ आश्रय, नभ भाद्रपद, नभ सावन कौ मास।
७० नभ अकास, नभ निकट ही, घट-घट रमानिवास ॥

वसु

अष्ट अमर वसु, बन्हि वसु, वसु जु किरन, वसु नीर।
वसु धन जग मैं सो धनी, धन जाके बलवीर॥

पटु

पटु तीछन कों कहत कवि, पटु आरोग्य कहंत।
पटु प्रवीन सो जगत मैं, रमै जु रुकमिनि-कंत॥

तुरंग, कुरंग

गरुड़ तुरंग, तुरंग मन, बहुरि तुरंग तुरंग। ७५
हरिन कुरंग, कुरंग सो, रँग्यो न हरि रस रंग॥

आत्मज

आत्मज कहियै रुधिर अरु, आत्मज कहियै काम।
आत्मज पूत सपूत सो, भजै जु सुंदर स्याम॥

कबंध

बिन सिर कहत कबंध कवि, है कबंध पुनि नीर।
राच्छस एक कबंध तिहिं, दीनी गति रघुवीर॥ ८०

हंस

हंस तुरंगम, हंस रवि, हंस मराल सु छंद।
हंस जीव कहुँ कहत कबि, परम हंस गोबिंद॥

पयोधर, भूधर

मेघ, अर्क, कुचैं, सैल, द्रुम, ये जु पयोधर आहि।
भूधर गिरि, भूधर नृपति, भूधर आदि बराहि॥

वान

८५ वान कहावै बलि-तनय, विसिख आहि पुनि बान।
वान कहत कवि स्वर्ग कहुँ, श्री हरि पद निर्वान॥

वरुन

वरुन कहत कवि नीर कहुँ, वरुन स्यार कौ नाम।
वरुन हरे जब नंद तव, कैसे धाये स्याम॥

गोत्र

गोत्र नाम कौं कहत कवि, गोत्र सैल सुनियंत।
९० गोत्र वंस सो धन्य जहँ, गोविँद गुन गुनियंत॥

तनु

तनु सरीर, विस्तार तनु, तनु सूछम, तनु तात।
तनु विरलौ कोउ जगत मैं, जानै हरि रस बात॥

बाल

बाल सिरोरुह, बाल सिसु, मूक कहावै बाल।
बाल अग्य सोइ जगत मैं, भजै न बाल गुपाल॥

जाल

९५ जाल झरोखा, जाल गन, जाल दंभ अरु मंद।
जाल भगर-बिद्या जगत, दिखि न भूलि नँद-नंद॥

काल

काल असित, अरु काल बय, धर्मराज पुनि काल।
काल ब्याल के काल हरि, मोहन मदन गुपाल॥

घन

घन दिढ़, घन विस्तार पुनि, घन जिहिं गढ़त लुहार।
घन अंबुद, घन सघन अरु, चिदघन नंदकुमार ॥

वरन

११५ वरन स्तुति, अच्छर वरन, वरन द्विजादिक चारि।
वरन अरुन, सित, पीत हैं, अवरन एक मुरारि ॥

पोत

पोत कहावै निपट सिसु, पोत जु पत्र अनूप।
पोत नाउ जग-जलधि मैं, कृष्न नाम सुख रूप ॥

बुध

बुध पंडित कौं कहत कबि, बुध ससि-सुवन वखान।
१२० बुध हरि कौ अवतार इक, बोध भयौ जिहिं ग्यान ॥

अनंत

गगन अनंत कहंत कवि, बहुरि अनंत अनेक।
सेस अनंत कहंत बुध, हरि अनंत अरु एक ॥

छय

छय निवास कौं कहत कवि, छय कहियै छय रोग।
छय परलै मधि हरि बिषै, लीन होत सब लोग ॥

राजिव

१२५ राजिव ससि, राजिव सलिल, राजिव मुक्ता, मीन।
राजिव नाभि गुबिंद की, जहँ बिधि से अलि लीन ॥

लोक

लोक व्याकरन, लोक जन, लोक देह रसमूलि।
तीनि लोक सुत उदर दिखि, रही जसोमति भूलि॥

सुक्र

सुक्र बीर्ज, अरु अगिनि पुनि, सुक्र जेठ कौ मास।
सुक्र अजहुँ बावनहि प्रति, बलि हित भरत उसास॥ १३०

खग

खग रबि,खग ससि,खग पवन, खग अंबुद, खग देव।
खग बिहंग हरि-सुतरु भजि, तजि जड़ सेमर सेव॥

ब्रह्म

ब्रह्म ब्रह्म कुल, ब्रह्म बिधि, ब्रह्म बेद अरु जीय।
ब्रह्म नंद के सदन मैं, ताहि नचावति तीय॥

कलाप

गुन कलाप, तूनीर पुनि, अभरन आहि कलाप। १३५
बरही-चंद कलाप पुनि, हरि बिनु जीव कलाप॥

उड़, उड़प

उड़ बिहंग, उड़ नखत गन, उड़ कैवर्तक आहि।
उड़प चंद, नौका उड़प, उड़प गरुड़ वर वाहि॥

मंद

मंद सनीचर, मंद खल, मंद अल्प, अघ मंद।
मंद मूढ़ नर ते जगत, जे न भजैं नँदनंद॥ १४०

वारन

वारन कहियै बरजिबौ, वारन पुनि सन्नाह।
वारन गज हरि उद्धरयौ, आनि गह्यौ जब ग्राह॥

स्यंदन

स्यंदन जल कौं कहत कवि, स्यंदन चित्त तरंग।
स्यंदन रथ चढ़ि रुकमिनी, लै आये श्री रंग॥

मंथी

१४५ मंथी ससि, मंथी मदन, मंथी ग्राह प्रचंड।
मंथी बहुरौ राहु है, जिहि हरि किय बिबि खंड॥

कौसिक

कौसिक गुग्गुल, इंद्र पुनि, कौसिक उल्लू नाम।
कौसिक बिस्वामित्र मुनि, जिन जाचे श्रीराम॥

पुष्कर

पुष्कर जल, पुष्कर गगन, पुष्कर सुंड गयंद।
१५० पुष्कर तीरथ पाप-हर, पुष्कर नैंन गुबिंद॥

अंबर

अंबर अमृत कहुँ कहत, अंबर गगन सुभाइ।
अंबर पीत सु स्याम तन, जनु तड़ि रही लुभाइ॥

संबर

संबर जल, संबर असुर, संबर सैल अनूप।
संबर बाँधहु गाँठि गहि, कृष्न नाम सुख रूप॥

कंवल

कंवल गोगल तर कहत, कंवल जल-परवाह। १५५
कंवल धेनु चरावते, ओढ़ी जग के नाह॥

नग

नग कहियै द्रुम, नग रतन, नग कहियै पुनि धाम।
नग गिरि जातैं कान्ह कौं, नागर नगधर नाम॥

नाग

नाग पुत्र, अरु नाग गज, नाग दुष्ट नर वाम।
नाग सर्प, संसार कौ, सिद्ध मंत्र हरि नाम॥ १६०

कर्न

कर्न कहावै रवि-तनय, कर्न कहत पुनि कान।
कर्न नाउ जेहि खेइयै, कर्नधार भगवान॥

द्विज

द्विज पंछी कौं कहत कबि, द्विज कहियत पुनि दंत।
तीन वरन द्विज तब भले, जब जानहिं भगवंत॥

अज

अज बकरा, अज पितामह, अज कहियै पुनि ईस। १६५
अज जोवन भर नर कहत, अज एकै जगदीस॥

सिव

सिव सुख, सिव कल्यान, सुभ, श्रेष्ठ पुरुष सिव होइ।
सिव संकर, सिव सलिल पुनि, कृष्न-दास सिव होइ॥

विरोचन

वन्हि विरोचन, सूर्ज पुनि, चंद विरोचन गात।
१७० दैत्य विरोचन धन्य सो, जाके बलि सौ तात॥

बलि

बलि लहरी, बलि जूगरी, बलि भोजन बलि भाग।
बलि राजा की जाउँ बलि, जा हिय हरि अनुराग॥

वृक

बृक पावक कौं कहत कवि, वृक भिड़हा कौ नाम।
बृक दानव दलि, देव सिव, राखे सुंदर स्याम॥

रज

१७५ रज राजस, आरक्त रज, रज जुवती मैं होइ।
रज धूली, रज पाप कौं, हरि निर्मल जल धोइ॥

कुस

कुस सीता-सुत, दर्भ कुस, कुस कहियै पुनि नीर।
कुस दानव दलि द्वारिका, जहाँ बसे बलवीर॥

कंबु, भुवन

कंबु संख औ कंबु गज, कंबु इष्ट कौ नाम।
१८० भुवन गगन, औ भुवन जल, त्रिभुवन-नाइक स्याम॥

कूट

कूट बहुत, अरु कूट गिरि, अहरनि कूटि कहंत।
कूट कपट कौं निपट तजि, भजि लै मन भगवंत॥

खर

खर राच्छस,खर,स्वान खर, खर तीछन कौ नाम।
खर गदहा सम ते जगत, जे न भजैं हरि स्याम॥

कुज, जम

कुज मंगल, कुज अन्न, द्रुम, कुज भौमासुर नाम। १८५
जम जुग, जम जमराज तैं, राखहु सुंदर स्याम॥

हरिनी

हरिनी प्रतिमा हेम की, हरिनी मृग की तीय।
हरिनी जूथी जासु की, फूल-माल हरि हीय॥

धात्री

धात्री कहियै आँवरौ, धात्री धाइ बखान।
धात्री धरनी सेस पर, सोहत तिल परमान॥ १९०

सिवा

सिवा संभु की सुंदरी, सिवा स्यार की भाम।
सिवा हरड़ जिमि रोग-हर, इमि अघ-हर हरि नाम॥

रसना

रसना काँची कहत कवि, रसना बहुरौ दाम।
रसना जिह्वा कौ सुजस, क्यौं न लेत हरि नाम॥

रंभा

रंभा कहियै अपसरा, रंभा कदली नाम। १९५
रंभा गोकुल गाइ-धुनि, जिहिं मोहे हरि स्याम॥

माया

माया छल, माया दया, माया नेह कहंत ।
माया मोहनलाल की, जिहिं मोहे सब जंत ॥

इला

इला मही, बुध-तिय इला, इला उमा अभिराम ।
२०० इला सरसुती सो भली, जामैं हरि कौ नाम ॥

जोति

जोति नखत गन, जोति दुति, जोति नेत्र अरु आगि ।
जोति ब्रह्म सो नंद घर, रह्यौ अनंदहि लागि ॥

सुमना

सुमना कहियै मालती, सुमना मुदिता तीय ।
सुमना रति, सो कान्ह सौं, करि लै लंपट जीय ॥

इडा

२०५ इडा कहत नभ देवता, इडा भूमि अभिराम ।
इडा अंबिका मातु मोंहिं, रति दीजै हरि नाम ॥

निसा, अजा

निसा जामिनी कौं कहत, निसा हरिद्रा नाम ।
अजा छाग, माया अजा, जिहिं मोहे अज, बाम ॥

विधि

बिधि बेधा, बिधि दैव पुनि, बिधि कहियै जु बिधान ।
२१० बिधि बिधि जोई हरि रची, सोई बिधि परमान ॥

जिह्म

जिह्म अलस करि मलिन नर, जिह्म कहावै मूढ़।
जिह्म कपट तजि हरि भजौ, घट घट परगट गूढ़॥

हस्त

हस्त कहत गज सुंड कौं, हस्त नछत्र सु भाइ।
हस्त हाथ तैं डारि जनि, नर हीरा तन पाइ॥

कृतांत

आगम, सास्त्र कृतांत सब, पुनि कृतांत सिद्धांत। २१५
जम कृतांत की त्रास तैं, त्राता कमला-कांत॥

मित्र

मित्र भानु कौं कहत कबि, मित्र अगिनि कौ नाम।
मित्र मीत सब जगत के, एकै सुंदर स्याम॥

सारंग

रबि, ससि, हय, गज, गगन, गिरि, केहरि, कुंज, कुरंग।
चातक, दादुर, दीप, अलि, ये कहियै सारंग॥ २२०

हरि

इंद्र, चंद्र, अरबिंद, अलि, कपि, केहरि, किंक्यान।
कंचन, काम, कुरंग, बन, घन, कुदंड, नभ, भान॥
पानी, पावक, पवन, पय, गिरि, गज, नाग, नरिंद।
ये हरि इनके मुकुटमनि हरि ईस्वर गोबिंद॥

ध्रुव

२२५ ध्रुव निश्चल, ध्रुव जोग पुनि, ध्रुव जु ध्रुपद, ध्रुवताल ।
ध्रुव तारे जिमि ते अटल, गुनहिं जु गुन गोपाल ॥

सुमनस

सुमनस सुर, सुमनस पुहुप, सुमनस बहुरि बसंत ।
सुमनस ते जिन मन बसै, कोमल कमलाकंत ॥

बिटप

बिटप अंग, पल्लव बिटप, बिटप कहत बिस्तार ।
२३० बिटप बृच्छ की डार गहि, ठाढ़े नंदकुमार ॥

दान

दान द्विजन कौं दीजियै, गज मद कहियै दान ।
दान साँवरौ लेत बन, गोपी प्रेम निधान ॥

रस

रस नव, रस घृत, रस अमृत, रस बिष, अरु रस नीर ।
सब रस कौ रस प्रेम-रस, जाके बस बलबीर ॥

सनेह

२३५ तैल सनेह, सनेह घृत, बहुरयौ प्रेम सनेहु ।
सो निज चरनन गिरधरन ! 'नंददास' कौं देहु ॥
जो 'अनेक अर्थहिं' सदा, पढ़ै, सुनै नर कोइ ।
सो अनेक अर्थहि लहै, पुनि परमारथ होइ ॥

स्यामसगाई

इक दिन राधे कुँवरि, नंद-घर खेलन आई।
चंचल और विचित्र देखि, जसुमति मन भाई॥
नंद-महरि मन मैं कह्यौ, देखि नर की रास।
यह कन्या मो स्याम कौं, गोविंद पुजवैं आस॥
कि जोरी मोहनी॥ ५

जसुमति महा प्रवीन, एक द्विज-नारि बुलाई।
लीनी निकट बिठाइ, मरम की बात सुनाई॥
जाइ कहौ बृषभान सौं, करियौ बहु मनुहारि।
यह कन्या मैं स्याम कौं, माँगौं गोद पसारि॥
कि जोरी मोहनी॥ १०

द्विज-नारी उठि चली, वेगि बरसाने आई।
जहँ राधे की माइ बैठि तहँ बात चलाई॥
जसुमति रानी नंद की, जिन पठई तुम पास।
बहुत भाँति बंदन कही, बहुनहि करि अरदास॥
कृपा करि दीजियै॥ १५

नीकी राधे कुँवरि, स्याम मेरौ अति नीकौ।
तुम किरपा करि करौ, लाल मेरे कौ टीकौ ॥
सबै भाँति सुख होइगौ, हम-तुम बाढ़ै प्रीति।
और न कछु मन मैं चहौं, यही जगत की रीति ॥
२० परस्पर कीजियै ॥

कीरति उत्तर दयौ, सु हौं नहिं करौं सगाई ॥
सूधी राधे कुँवरि, स्याम है अति चरवाई।
नँद-ढोटा लंगर महा, दधि-माखन कौ चौर।
कहत-सुनत लज्जा नहीं, करै और तैं और ॥
२५ कि लरिका अचपलौ ॥

द्विज-नारी फिरि आइ, महरि सौं बात कही सब।
सुनि करि कै करतूति, मनहि मन सोचि रही तब ॥
अंतरजामी साँवरौ, तिही बेर गयौ आइ।
बूझन लाग्यौ माइ तैं, क्यौं जु रही सिर नाइ ॥
३० बात मो सौं कहौ ॥

मैया लाल सौं कहै, पूत! हौं नाकैं आई।
जहँ करियत तो बात, तहाँ तेरी होति बुराई ॥
मैं पठई वृषभान कैं, करन सगाई तोइ।
उनहूँ वहि उत्तर दियौ, यातैं चिंता मोइ ॥
३५ कहौ कैसी करौं ॥

मैया तैं मुसकाइ, कहत यौं नंद-दुलारौ।
नाहिन करिहौं व्याह, करौ जिनि लाड़ हमारौ॥
जौ तुमरे इच्छा यही, उन हीं कौं हम लैंहि।
तौ मैं ढोटा नंद कौ, पाइन परि परि दैंहि॥
सोच नहिं कीजियै॥ ४०

मोरचंद्रिका धारि, सु नटवर भेष वनाई।
वरसाने के बागहि, मोहन वैठे जाई॥
सब सखियन के झुंड मैं, देखन चली गोपाल।
अरस-परस दोऊ भये, कुँवरि किसोरी लाल॥
मनहि फूले फिरैं॥ ४५

मन हरि लीनौ स्याम, परी राधे मुरझाई।
भई सिथिल सब देह, बात कछु कही न जाई॥
दौरि सखी कुंजन चली, नैंनन डारति नीर।
अरी बीर! कछु जतन करि, हिरदै धरति न धीर॥
हर्‌यौ मनमोहना॥ ५०

सखियन ऊँचे बैन कहे, पै कुँवरि न बोलै।
पूँछति विबिध प्रकार, लड़ैती नैंन न खोलै॥
वड़ी वेर वीती जवै, तव सुधि आई नैंक।
'स्याम! स्याम!' रटिबे लगी, एकहि बार जु ह्वैंक॥
वदति ज्यौं बावरी॥ ५५

सखी कहैं सुनि कुँवरि! तोहिं इक जतन बतावैं।
चुप रहि कै सुनि लेहु, उठौ अब घर लै जावैं॥
कहियौ काटी नाग नैं, जौ पूँछै तो माइ।
हम हैं मीत गुपाल की, लैहैं तुरत बुलाइ॥
६० कहैंगी पीर बहु॥

कर गहि कुँवरि उठाइ, पकरि गृह-भीतर लाई।
बिबस दसा लखि माइ, दौरि कै कंठ लगाई॥
कहा भयौ मो कुँवरि कौं, कहौ तनक समुझाइ।
हौं बरजति ही लाड़िली, दूरि खेलन जिनि जाइ॥
६५ कह्यौ मानै नहीं॥

गई घरी द्वै बीति, लड़ैती नैंन उघारे।
लै लै बड़े उसास, डसी मैया मोहिं कारे॥
'नाग डसी'! मैया सुनत, गिरी धरनि मुरझाइ।
बार बार यौं भाखही, कोउ जलदी करौ उपाइ॥
७० अरे कोउ दौरियौ!॥

सखी कहै समुझाइ, कहौ तौ गोकुल जाऊँ।
मनमोहन घनस्याम, तुरत वाकौं लै आऊँ॥
वह ढोटा अति सोहनौ, जौ पठवैगी माइ।
बड़ौ गारुड़ी नंद कौ, तुरत भली करि जाइ॥
७५ बड़ौ ही चतुर है॥

अरी बीर ! बलि जाउ, कहौ यह बिनती मेरी ।
जो जीवैगी कुंवरि, बीर ! मैं करिहौं तेरी ॥
पांइ लगौं, बिनती करौं, जग जस आवै तोहि ।
बेगि पठै नँदलाल कौं, जीव-दान दै मोहि ॥
रावरी सरन हौं ॥ ८०

एक चली, द्वै-चार चलीं, गोकुल मैं आई ।
जसुमति बैठी जहां, बैठि तहँ बात चलाई ॥
पांइ लगौं कीरति कह्यौ, तुम जसुमति किन लेहु ।
जौ तुम्हरी इच्छा यही, तौ कुंवर संग करि देहु ॥
सगाई लीजियै ॥ ८५

जसुमति मन आनंद, रहसि नँदलाल बुलाये ।
सुनि मैया की टेर, दौरि मनमोहन आये ॥
ग्वालिन बैठी देखि कै, मैया सौं मुसकाइ ।
ये नाहिंन या गाँउ की, कहौ कहाँ तैं आइ ॥
ठगन आई इहाँ ॥ ९०

मैं वारी मेरे लाल, तेरी मोहिं लगै बलाई ।
जित बरसानौ गाँउ, ग्वालिनी तित तैं आई ॥
एक कुँवरि बृषभान की, कारे डसी कुठौर ।
व्याकुल ह्वै धैरनी परी, नैंन-पूतरी मौर ॥
लाल तहँ जाइयै ॥ ९५

कौंन बाइगी, मुनैं ताहि, किन मोंहिं बतायौ।
परपंचिनि तुम ग्वालि, झूठ ही मोंहि बुलायौ ॥
को राजा वृषभान हैं? कित बरसानौ गाम?।
कौंन तुम्हारी कुँवरि है? हौं जानत नहिं नाम ॥
१०० कान्ह उत्तर दयौ ॥

सुनौ नंद के लाल! साँवरे कुँवर कन्हाई।
बरसानौ वह गाँउ, जहाँ तुम मुरलि बजाई ॥
नटवर भेष बनाइ कै, बैठे आसन मारि।
धुनि सुनि मोही राधिका, औ ब्रज की सिग नारि ॥
१०५ मनौं टौना करयौ ॥

अहो महरि के पूत! समौ मुकरन कौ नाहीं।
जौ न चलौगे बेगि, कुँवरि जीवैगी नाहीं ॥
काली नाग जु नाथियौ, तुम सम और न कोइ।
बृंदावन मैं साँवरे, कहा सिखावत मोइ ॥
११० बात जानत सबै ॥

वह राजा बृषभान, एक ही डोल गढ़ावै।
मोंहिं राधे बैठारि, सखिन पै झोंटा द्यावै ॥
अरथ-द्रब्य इच्छा नहीं, पान-पात नहिं लैउँ।
जौ इतनौ कारज करै, तौ कुँवरि भली करि दैउँ ॥
११५ बात एती अहै ॥

जो मांगो सो लेउ, सांवरे कुँवर कन्हैया।
बिन मांगे ही देहिं, तुम्हैं राधा की मैया॥
यह सुनि सुंदर सांवरे, लीने सखा बुलाइ।
सिघ पौरि वृषभान की, ततछन पहुँचे जाइ॥
लगन है नेह की॥ १२०

तब रानी उठि दौरि, पौरि तैं मोहन लाई।
सिंघासन बैठाइ, हाथ गहि कुँवरि दिखाई॥
दरस-फूँक दै बिष हरयौ, निज मनमुख बैठाइ।
बहु धन वारति है सखी, मुदित कुँवरि की माइ॥
धन्न है इह घरी॥ १२५

सुनत बचन ततकाल, लड़ैती नैंन उघारे।
निरखत ही घनस्याम, वदन तैं केस सँवारे॥
सब अपने घर निरखि कै, पुनि निरखी ढिंग माइ।
अचरा डारयौ वदन पै, मन दीनौ मुसकाइ॥
सकुच मन मैं बड़ी॥ १३०

देखि दोउन कौ प्रेम, जु कीरति मन मुसकाई।
जोरी जुग जुग जियौ, बिधाता भली बनाई॥
सखी कहैं जुरि विप्र सौं पुहुपन तैं बनमाल।
राधे के कर छ्वाइ कै, गर मेलौ नँदलाल॥
वात आछी बनी॥ १३५

सुनत सगाई स्याम, ग्वाल सब अंगनि फूले।
नाचत-गावत चले, प्रेम-रस मैं अनुकूले ।।
जसुमति रानी घर सज्यौ, मोतिन चौक पुराइ।
बट्टत बधाई नंद के, 'नंददास' बलि जाइ ।।
१४० कि जोरी सोहनी ।।

भँवरगीत

ऊधौ कौं उपदेस, सुनौ ब्रजनागरी।
रूप, सील, लावन्य, सबै गुन आगरी॥
प्रेमधुजा, रसरूपिनी, उपजावनि सुख-पुंज।
सुंदर स्याम बिलासिनी, नव बृंदावन-कुंज॥
सुनौ ब्रजनागरी॥ ५

कह्यौ स्याम संदेस एक, मैं तुम पै लायौ।
कहन समै संकेत, कहूँ औसर नहिं पायौ॥
सोचत ही मन मैं रह्यौ, कब पाऊँ इक ठाउँ।
कहि सँदेस नँदलाल कौ, बहुरि मधुपुरी जाउँ॥
सुनौ ब्रजबासिनी॥ १०

सुनत स्याम कौ नाम, ग्राम-गृह की सुधि भूली।
भरि आनँद-रस हृदय, प्रेम-बेली द्रुम फूली॥
पुलकि रोम सब अँग भये, भरि आये जल नैंन।
कंठ घुटे गद्गद गिरा, बोले जात न बैंन॥
बिवस्था प्रेम की॥ १५

अर्घासन बैठारि, और परिकर्मा दीनी।
स्याम सखा निज जानि, बहुरि सेवा बहु कीनी॥
बूझत सुधि नँदलाल की, बिहसित-मुख ब्रजबाल।
नीके हैं बलबीर जू, बोलति बचन रसाल॥
२० सखा सुनि स्याम के॥

कुसल स्याम अरु राम, कुसल संगी सब उन के।
जदुकुल सगरे कुसल, परम आनंद सबन के॥
बूझन ब्रज-कुसलात कौं, हौं आयौ तुम तीर।
मिलिहैं थोरे द्यौस मैं, जिनि जिय होहु अधीर॥
२५ सुनौ ब्रजबासिनी॥

सुनि मोहन-संदेस, रूप सुमिरन ह्वै आयौ।
पुलकित आनन अलक, अंग आवेस जनायौ॥
बिह्वल ह्वै धरनी परी, ब्रजबनिता मुरझाइ।
दै जल-छीट प्रबोधहीं, ऊधौ बात बनाइ॥
३० सुनौ ब्रजबासिनी॥

वे तुम तैं नहिं दूरि, ग्यान की आँखिन देखौ।
अखिल बिस्व भरपूरि, ब्रह्म सब रूप बिसेखौ॥
लौह, दारु, पाषान मैं, जल-थल माहिं अकास।
सचर, अचर बरतत सबै, जोति ब्रह्म परकास॥
३५ सुनौ ब्रजबासिनी॥

कौन ब्रह्म कौ जोति ? ग्यान कासौं कहौ ऊधौ ?।
हमरे सुंदर स्याम, प्रेम कौ मारग सूधौ ॥
नैन, बैन, श्रुति, नासिका, मोहन-रूप दिखाइ।
सुधि-बुधि सब मुरली हरी, प्रेम-ठगोरी लाइ ॥
सखा सुनि स्याम के ॥ ४०

यह सब सगुन उपाधि, रूप निर्गुन है उन कौ।
निरविकार निर्लेप, लगत नहिं तीनौं गुन कौ ॥
हाथ न पाँउ, न नासिका, नैन, बैन, नहिं कान।
अच्युत-जोति प्रकास है, सकल विस्व कौ प्रान ॥
सुनौ ब्रजबासिनी ॥ ४५

जौ मुख नाहिंन हुतौ, कहौ किन माखन खायौ ?।
पाइन बिन गोसंग, कहौ को बन बन धायौ ?॥
आँखिन मैं अंजन दियौ, गोवर्धन लियौ हाथ।
नंद-जसोदा पूत है, कुंवर कान्ह ब्रजनाथ ॥
सखा सुनि स्याम के ॥ ५०

जाहि कहौ तुम कान्ह, ताहि कोउ पिता न माता।
अखिल अंड ब्रह्मंड, बिस्व उन हीं तैं जाता ॥
लीला-गुन अवतारि कै, धरि आये तन स्याम।
जोग-जुगति ही पाइयै, परब्रह्म - पुर - धाम ॥
सुनौ ब्रजबासिनी ॥ ५५

ताहि बतावहु जोग, जोग ऊधौ जेहि पावौ।
प्रेम-सहित हम पास, नंद-नंदन-गुन गावौ॥
नैंन, बैन, मन, प्रान मैं, मोहन-गुन भरपूरि।
प्रेम-पियूषै छाँड़ि कै, कौंन समेटै धूरि॥
६० सखा सुनि स्याम के॥

धूरि बुरी जौ होइ, ईस क्यौं सीस चढ़ावै।
धूरि-छेत्र मैं आइ, कर्म करि हरि-पद पावै॥
धूरिहि तैं यह तन भयौ, धूरिहि तैं ब्रह्मंड।
लोक चतुर्दस धूरि तैं, सप्त दीप, नव खंड॥
६५ सुनौ ब्रजबासिनी॥

कर्म धर्म की बात, कर्म अधिकारी जानैं।
कर्म-धूरि कौं आनि, प्रेम-अमृत मैं सानैं॥
तब हीं लौं सब कर्म है, जब लौं हरि उर नाहिं।
कर्मबंध सब बिस्व के, जीव बिमुख ह्वै जाहिं॥
७० सखा सुनि स्याम के॥

कर्महि निंदौ कहा, कर्म तैं सदगति होई।
कर्म रूप तैं बली, नाहिं त्रिभुवन मैं कोई॥
कर्महि तैं उतपत्ति है, कर्महि तैं है नास।
कर्म किये तैं मुक्ति है, परब्रह्म-पुर बास॥
७५ सुनौ ब्रजबासिनी॥

कर्म पाप अरु पुन्य, लौह सौने की बेरी।
पाइन बंधन दोउ, कोउ मानौ बहुतेरी॥
ऊँच कर्म नैं स्वर्ग है, नीच कर्म नैं भोग।
प्रेम बिना सब पचि मरे, बिषय-बासना-रोग॥
सखा सुनि स्याम के॥ ८०

कर्म बुरे जौ होंहि, जोग काहे कोउ धारै।
पद्मासन सब द्वार रोकि, इंद्रिन कौं मारै॥
ब्रह्म-अग्नि जरि सुद्ध ह्वै, सिद्धि-समाधि लगाइ।
लीन होइ सायुज्य मैं, जोतिहि जोति समाइ॥
सुनौ ब्रजबासिनी॥ ८५

जोगी जोतिहि भजैं, भक्त निज रूपहि जानैं।
प्रेम-पियूषै प्रगट, स्यामसुंदर उर आनैं॥
निर्गुन गुन जो पाइयै, लोग कहैं यह नाहिं।
घर आयौ नाग न पूजहीं, बाँबी पूजन जाहिं॥
सखा सुनि स्याम के॥ ९०

जौ उन के गुन होंहि, बेद क्यौं नेति बतावैं।
निर्गुन सगुन आत्मा, रचि उपनिषद जु गावैं॥
बेद-पुरानन खोजि कै, नहिं पायौ गुन एक।
गुन हू के गुन होंहि जौ, कहौ अकास किहि टेक॥
सुनौ ब्रजबासिनी॥ ९५

जौ उन के गुन नाहिं, और गुन भये कहाँ तैं।
बीज विना तरु जमै, मोहिं तुम कहौ कहाँ तैं॥
वा गुन की परछाँह री, माया-दर्पन वीच।
गुन तैं गुन न्यारे भये, अमल बारि मिलि कीच॥
१०० सखा सुनि स्याम के॥

माया के गुन और, और हरि के गुन जानौ।
वा गुन कौं इन माँझ, आनि काहे कौं सानौ॥
जाके गुन अरु रूप कौ, जानि न पायौ भेद।
तातैं निर्गुन ब्रह्म कौं, वदत उपनिषद-वेद॥
१०५ सुनौ ब्रजनागरी॥

वेदहु हरि के रूप, स्वास मुख तैं जो निसरै।
कर्म, क्रिया, आसक्ति, सबै पिछली सुधि विसरै॥
कर्म-मध्य ढूढ़ैं सबै, किनहुँ न पायौ देख।
कर्म-रहित ही पाइयै, तातैं प्रेम विसेख॥
११० सखा सुनि स्याम के॥

प्रेमहि कोऊ वस्तु-रूप, देखत लौ लागै।
वस्तु-दृष्टि बिन कहौ, कहा प्रेमी अनुरागै॥
तरनि चंद्र के रूप कौ, गुन नहिं पायौ जान।
तौ उन कौं कहा जानियै, गुनातीत भगवान॥
११५ सुनौ ब्रजबासिनी॥

तरनि अकास प्रकास, तेजमय रह्यो दुराई।
दिव्य-दृष्टि बिन कहौ, कौंन पै देख्यौ जाई॥
जिन के वे आँखैं नहीं, क्यौं देखैं वह रूप।
तिन्हैं बिस्वास क्यौं ऊपजै, परे कर्म के कूप॥
सखा सुनि स्याम के॥ १२०

जब करियै नित-कर्म, भक्ति हू तामैं आई।
कर्म रूप तैं कहौ, कौंन पै छूट्यौ जाई॥
करम करम कर्महि किये, कर्म नास ह्वै जाहि।
तब आतम निहकर्म ह्वै, निर्गुन ब्रह्म समाहि॥
सुनौ ब्रजबासिनी॥ १२५

जौ हरि के नहिं कर्म, कर्म बंधन ह्वै आवै।
तौ निर्गुन ह्वै वस्तु-मात्र, परमान बनावै॥
जौ उन के परमान है, तौ प्रभुता कछु नाहिं।
निर्गुन भये अतीत के, सगुन सकल जग माहिं॥
सखा सुनि स्याम के॥ १३०

जो गुन आवैं दृष्टि माँझ, नस्वर हैं सारे।
इन सबहिन तैं बासुदेव, अच्युत हैं न्यारे॥
इंद्री दृष्टि बिकार तैं, रहत अधोक्षज जोति।
सुद्ध-सरूपी ध्यान की, प्रापति तिन कौं होति॥
सुनौ ब्रजबासिनी॥ १३५

नास्तिक जे हैं लोग, कहा जानैं हित रूपै।
प्रगट भानु कौं छाँड़ि, गहैं परछाहीं धूपै ॥
हमरें बिन वह रूप ही, और न कछू सुहाइ।
ज्यौं करतल आमलक के, कोटिक ब्रह्म दिखाइ ॥
१४० सखा सुनि स्याम के ॥

ऐसैं मैं नँदलाल रूप, नैंनन के आगें।
आइ गये छवि छाइ, बने बीरे अरु बागे ॥
ऊधौ सौं मुख मोरि कै, तिन हीं सौं कहैं बात।
प्रेम-अमृत मुख तें श्रवत, अंबुज-नैंन चुचात ॥
१४५ तरक रसरीति की ॥

अहो नाथ, अहो रमानाथ, जदुनाथ गुसाईं।
नँद-नंदन बिडराति फिरति, तुम बिन बन गाईं ॥
काहे न फेरि कृपाल ह्वै, गो-ग्वालन सुधि लेहु।
दुख-जलनिधि हम बूड़हीं, कर अवलंबन देहु ॥
१५० निठुर ह्वै कहँ रहे ॥

कोउ कहै अहो दरस देहु, पुनि बेनु बजावौ।
दुरि दुरि बन की ओट, कहा हिय लौन लगावौ ॥
हम कौं पिय तुम एक हौ, तुम कौं हम सी कोरि।
बहुत पाइ कै रावरे, प्रीति न डारौ तोरि ॥
१५५ एक ही बार जी ॥

कोउ कहै अहो दरस देन, फिरि लेन दुराई।
यह छलविद्या कहौ कौन पिय तुमहिं सिखाई॥
हम सब रस-आधीन हैं, तातैं बोलत दीन।
जल बिन कहौ कैसें जियै, पराधीन जो मीन॥
बिचारौ रावरे॥ १६०

कोउ कहै अहो स्याम, कहा इतराइ गये हौ।
मथुरा कौ अधिकार पाइ, महाराज भये हौ॥
ऐसी कछू प्रभुता अहो, जानत कोऊ नाहिं।
अबला-बध सुनि डरि गये, बड़े बली जग माहिं॥
पराक्रम जानि कै॥ १६५

कोउ कहै अहो स्याम, चहत मारन जौ ऐसैं।
गिरि गोबर्धन धारि, करी रच्छा तुम कैसैं॥
ब्याल, अनल, बिष-ज्वाल तैं, राखि लई सब ठौर।
बिरह-अनल अब दहत हौ, हँसि हँसि नंदकिसोर॥
चोरि चित लै गये॥ १७०

कोउ कहै ये निठुर, इन्हैं पातक नहिं ब्यापै।
पाप-पुन्य के करनहार, ये ही हैं आपै॥
इन के निर्दय रूप मैं, नाहिन कोऊ चित्र।
पय-प्यावत प्रानन हरे, पूतना बाल चरित्र॥
मित्र ये कौन के॥ १७५

कोउ कहै री आज नाहिं, आगे चलि आई।
रामचंद्र के रूप, धर्म मैं ही निठुराई ॥
जग्य करावन जात है, बिस्वामित्र समीप।
मग मैं मारी ताड़का, रघुबंसी-कुल-दीप ॥
१८० बाल ही रीति यह ॥

कोउ कहै ये परम धर्म, इस्त्रीजित पूरे।
लच्छ लच्छ संधान धरे, आयुध के सूरे ॥
सीता जू के कहे तैं, सूपनखा पै कोप।
छेदि अंग बिरूप करि, लोगन लज्जा लोप ॥
१८५ कहा ताकी कथा ॥

कोउ कहै री सुनौ और, इन के गुन आली।
वलि राजा पै गये, भूमि माँगन बनमाली ॥
माँगत बामन रूप धरि, परवत भये अकाइ।
सत्य धर्म सब छाँड़ि कै, धरयौ पीठि पै पाइ ॥
१९० लोभ की नाउ ये ॥

कोउ कहै री कहा, हिरनकस्यप पै बिगरयौ।
परम ढीठ प्रहलाद, पिता-सनमुख ह्वै झगरयौ ॥
सुत अपने कौ देत हो, सिच्छा दंड बँधाइ।
इन बपु धरि नरसिंघ कौ, नखन बिदारयौ जाइ ॥
१९५ बिना अपराध ही ॥

कोउ कहै इन परसुराम ह्वै, माता मारी ।
फरसा काँधे धारि, भूमि छत्रिन संघारी ॥
श्रोनित-कुंड भराइ कै, पोखे अपने पित्र ।
इन के निर्दय रूप मैं, नाहिंन कोउ चित्र ॥
बिलग कहा मानियै ॥ २००

कोउ कहै री कहा, दोष सिसुपाल नरेसै ।
ब्याह करन कौं गयौ, नृपति भीषम के देसै ॥
दल-बल जोरि बरात कौं, ठाढ़ौ हो छबि बाढ़ि ।
इन छल करि दुलही हरी, छुधित ग्रास मुख काढ़ि ॥
आपने स्वारथी ॥ २०५

इहि बिधि ह्वै आवेस, परम प्रेमहि अनुरागी ।
और रूप पिय-चरित, तहाँ कछु सोचन लागी ॥
रोम रोम रहे व्यापि कै, जिन के मोहन आइ ।
तिन के भूत भविष्य कौ, जानत कोउ न दुराइ ॥
रँगीली प्रेम की ॥ २१०

देखत उन कौ प्रेम, नेम ऊधौ कौ भाज्यौ ।
तिमिर भाउ आवेस, बहुत अपने मन लाज्यौ ॥
मन मैं कही रज पाइ कै, लै माथे निज धारि ।
परम कृतारथ ह्वै रह्यौ, त्रिभुवन आनँद बारि ॥
बंदना जोग ये ॥ २१५

कब हुँ कहै गुन गाइ, स्याम के इनहिं रिझाऊँ ।
तौ भले प्रेम-भक्ति, स्यामसुंदर की पाऊँ ॥
जिहि-किहि बिधि ये रीझहीं, सो बिधि करौं बनाइ ।
जातें मो मन सुद्ध ह्वै, दुबिधा-ग्यान नसाइ ॥
२२० पाइ रस प्रेम कौ ॥

ताही छिन इक भँवर, कहूँ तें उड़ि तहँ आयौ ।
ब्रज-बनितन के पुंज माहिं, गुंजन छबि-छायौ ॥
बैठ्यौ चाहत पाँउ पै, अरुन कमल-दल जानि ।
मन मधुकर ऊधौ भयौ, प्रथमहि प्रगट्यौ आनि ॥
२२५ मधुप कौ भेष धरि ॥

ताहि भँवर सौं कहत, सबै प्रति उत्तर बातैं ।
तर्क बितर्कन जुक्त, प्रेम-रस रूपी घातैं ॥
जिनि परसौ मम पाँउ रे, तुम आनँद-रस-चोर ।
तुम हीं सौं कपटी हुतौ, मोहन नंदकिसोर ॥
२३० इहाँ तैं दूरि हो ॥

कोउ कहै री बिस्व माँझ जेते हैं कारे ।
कपटी, कुटिल कठोर, परम मानस मसिहारे ॥
एक स्याम तन परसि कै, जरत आज लौं अंग ।
ता पाछे फिरि मधुप यह, लायौ जोग-भुजंग ॥
२३५ कहा इन कौं दया ॥

कोउ कहै री मधुप भेष उनही कौ धारयौ।
स्याम पीत गुंजार, बैन किंकिनि झनकारयौ।।
वा पुर गोरस चोरि कै, फिरि आयौ या देस।
इन कौं जिनि मानौ कोऊ, कपटी इन कौ भेस।।
चोरि जिनि जाइ कछु।। २४०

कोउ कहै रे मधुप, कहै अनुरागी तुम कौं।
कौंने गुन। धौं जानि, यहै अचरज है हम कौं।।
कारौ तन अति पातकी, मुख पीरौ जग-निंद।
गुन-औगुन सब आपने, आपुहि जानि अलिंद।।
देखि लै आरसी।। २४५

कोउ कहै रे मधुप, कहा तू रस की जानै।
बहुत कुसुम पर बैठि, सबै आपन मम मानै।।
आपन सौ हम कौं कियौ, चाहत है मतिमंद।
दुबिधा-रस उपजाइ कै, दुखित प्रेम आनंद।।
कपट के छंद सौं।। २५०

कोउ कहै रे मधुप, कहा मोहन-गुन गावै।
हृदय कपट सौं परम प्रेम, नाहिन छबि पावै।।
जानत हौ हरि भाँति कौं, सरवस लेहु चुराइ।
यह ठौरी सब ब्रज-बधू, को जो तुम्हैं पतियाइ।।
लहे हम जानि कै।। २५५

कोउ कहै रे मधुप, कौंन तुम कहै मधुकारी।
लिये फिरत मुख जोग-गाँठि प्रेमी बधुकारी॥
रुधिर पान कियौ बहुत कै, अधर अरुन रँग गात।
अब ब्रज मैं आये कहा, करन कौंन कौ घात॥
२६० जात किन पातकी॥

कोउ कहै रे मधुप प्रेम पटपद पसु देख्यौ।
अब लौं इहि ब्रज देस माहिं, कोउ नाहिं बिसेख्यौ॥
दोइ सिंग मुख पर जमैं, कारौ-पीरौ गात।
ग्वल अमृत सम मानही, अमृत देखि डरात॥
२६५ बादि यह रसिकता॥

कोउ कहै रे मधुप, ग्यान उलटौ लै आयौ।
मुक्ति परे जे रसिक, तिन्हैं फिरि कर्म बतायौ॥
बेद पुरानन-सार जे, मोहन-गुन गहि लेत।
तिन कौं आतम सिद्धि की, फिरि फिरि संथा देत॥
२७० जोग चटसार मैं॥

कोउ कहै अहो मधुप, निगुन-निरनै बहु जांनौ।
तर्क-वितर्कन जुक्ति, सास्त्र हू तैं बहु आनौ॥
पै इतनौ नहिं जानही, वस्तु बिना गुन नाहिं।
निर्गुन सक्ति जु स्याम की, लिये सगुन ता माहिं॥
२७५ जोति जल-बिंब मैं॥

कोउ कहै रे मधुप, तुम्हैं लाजो नहिं आवै।
स्वामी तुम्हरौ स्याम, कूबरीनाथ कहावै ॥
ह्याँ नीची पदवी हुती, गोपीनाथ कहाइ।
अब जदुकुल पावन भयौ, दासी जूठन खाइ ॥
मग्न कह बोल कौं ॥ २८०

कोउ कहै अहो मधुप, स्याम जोगी तुम चेला।
कुबजा-तीरथ जाइ, करौ इंद्रिन कौ मेला ॥
मधुवन सिधि फैलाइ कै, आये गोकुल माँहि।
इत सब प्रेमी लोग हैं, गाहक तुमरे नाँहि ॥
पधारौ रावरे ॥ २८५

कोउ कहै अहो मधुप, साधु मधुवन के ऐसै।
और तहाँ के सिद्ध लोग, ह्वैहैं धौं कैसैं ॥
अवगुन गुन गहि लेत हैं, गुन कौं डारत मेटि।
मोहन निर्गुन क्यौं न होहि, तुम साधुन कौं भेटि ॥
गाँठि की खोइ कै ॥ २९०

कोउ कहै रे मधुप हौहिं तुम से जो संगी।
क्यौं न हौहि तन स्याम, सकल बातन चतुरंगी ॥
गोकुल मैं जोरी कोऊ, पाई नाँहि मुरारि।
मदन त्रिभंगी आप हैं, करी त्रिभंगी नारि ॥
रूप-गुन-सील की ॥ २९५

इहि विधि सुमिरि गोबिंद-गीन ऊधौ प्रति गोपी।
भृँग संग्या करि कहत, सबै कुल-लज्जा लोपी ॥
ता पाछे इक बार ही, रोईं सकल ब्रज-नारि।
हा करुनामय नाथ हो! केसव, कृष्न, मुरारि ॥
३०० फाटि हियरौ चल्यौ ॥

उमग्यौ जो कोउ सलिल, नैंन अँसुवन की धारहि।
भीजत अंबुज नीर, कंचुकी वहुगुन हारहि।
ताही प्रेम-पयोधि मैं, ऊधौ चले वहाइ।
भली ग्यान की मैंड ही, ब्रज मैं दीनी आइ ॥
३०५ कुल कौ तरन भयौ ॥

प्रेम-प्रसंसा करत, सुद्ध जो भक्ति प्रकासी।
दुबिधा-ग्यान, गलानि, मंदता सगरी नासी ॥
कहत भयौ निहचै यहै, हरि-रस कौ निज पात्र।
हौं तौ कृतकृत ह्वै गयौ, इन के दरसन मात्र ॥
३१० मेटि मल ग्यान कौ ॥

पुनि पुनि कहै, हरि कहन, बात एकांत पठायौ।
मैं इन कौ कछु मरम, जानि एकौ नहिं पायौ ॥
हौं कही निज मरजाद की, ग्यान कर्म कौं रोपि।
ये सब प्रेमासक्त हैं, कुल की लज्जा लोपि ॥
३१५ धन्य ये गोपिका ॥

जे ऐसैं मरजाद मैटि, मोहन कौं धावैं।
क्यौं नहिं परमानंद, प्रेम-पदवी कौं पावैं॥
ग्यान जोग सब कर्म तें, प्रेम परे है साँच।
हौं नहिं पटतर देन हौं, हीरा आगे काँच॥
विषमता बुद्धि की॥ ३२०

धन्य धन्य ये लोग, भजन हरि कौं जो ऐसैं।
और कोउ बिन पारसहि, प्रेम पावन हैं कैसैं॥
मेरे या लघु ग्यान कौ, उर मैं मद रह्यौ बाध।
तब जान्यौ ब्रज-प्रेम कौ, लहत न आधौ आध॥
बृथा श्रम करि मरे॥ ३२५

पुनि कहै सब तैं साधु-सँगति, उत्तम है भाई।
पारस परसैं लौह-मात्र, कांचन ह्वै जाई॥
गोपी-प्रेम-प्रसाद कौ, हौं अवसेसहि पाइ।
ऊधौ तैं मधुकर भयौ, दुबिधा-ग्यान मिटाइ॥
पाइ रस प्रेम कौ॥ ३३०

पुनि कहै परसत पाइ, प्रथम हौं इनहिं निवारयौ।
भृँग संग्या करि कहत, निंदि सबहिन तैं डारयौ॥
अब ह्वै रहौं ब्रजभूमि की, मारग मैं की धूरि।
बिचरत पग मो पै परैं, सब सुख जीवनमूरि॥
मुनिन हू दुर्लभै॥ ३३५

कै हौं ह्वै रहौं गुल्म लता, बेली बन माहीं ।
आवत-जात सुभाउ, परै मो पै परछाँहीं ।।
सोऊ मेरे बस नहीं, जो कछु करौं उपाइ ।
मोहन हौंहि प्रसन्न जौ, यह बर माँगौं जाइ ।।
३४० कृपा करि दैहिं जौ ।।

ऐसैं मन अभिलाष करत, मथुरा फिरि आयौ ।
गदगद पुलकित रोम, अंग आवेस जनायौ ।।
गोपी-गुन गावन लग्यौ, मोहन-गुन गयौ भूलि ।
जीवन कौं लै का करै, पायौ जीवनमूलि ।।
३४५ भक्ति कौ सार यह ।।

ऐसैं सोचत जहाँ स्याम, तहँ धायौ आयौ ।
परिकर्मा दंडौत, प्रेम सो बहुत जनायौ ।।
कछु निर्दयता स्याम की, करि क्रोधित दोउ नैंन ।
कछु ब्रजबनिता प्रेम की, बोलत रस-भरे बैन ।।
३५० सुनौ नँद-लाड़िले ।।

करुनामय है रसिकता, तुम्हरी सब झूठी ।
तब हीं लौं लहै लाख, जबहिं लौं बाँधी मूठी ।।
मैं जान्यौ ब्रज जाइ कै, निर्दय तुम्हरौ रूप ।
जो तुम कौं अवलंबहीं, तिन कौं मेलौ कूप ।।
३५५ कौंन यह धर्म है ।।

पुनि पुनि कहौं, अहो चलौ, जाइ बृंदावन रहियै।
परम प्रेम कौ पुंज, जहाँ गोपिन सँग लहियै॥
और काम सब छाँड़ि कै, उन लोगन सुख देहु।
नातरु टूटचौ जात है, अब हीं नेह सनेहु॥
करौगे तौ कहा॥ ३६०

सुनत सखा के बैन, नैंन भरि आये दोऊ।
बिबस प्रेम आवेस, रही नाहीं सुधि कोऊ॥
रोम रोम प्रति गोपिका, ह्वै रही साँवरे गात।
कल्पतरोवर साँवरौ, ब्रज-बनिता भई पात॥
उलहि अँग अंग तैं॥ ३६५

ह्वै सचेत कही भले सखा पठये सुधि-लावन।
औगुन हमरे आनि तहाँ तैं लगे बनावन॥
मो मैं उन मैं अंतरौ, एकौ छिन भरि नाहिं।
ज्यौं देखी मो माँझ वे, त्यौं मैं उन हीं माहिं॥
तरंगनि बारि ज्यौं॥ ३७०

गोपी आप दिखाइ, एक करि कै बनवारी।
ऊधौ भरम निवारि, डारि माया की जारी॥
अपनौ रूप दिखाइ कै, लीनौ बहुरि दुराइ।
'नंददास' पावन भयौ, सुभ यह लीला गाइ॥
प्रेमरस पुंजिनी॥ ३७५

रुक्मिनी मंगल

श्री गुरुचरन-प्रताप, सदा आनंद बढ़ै उर।
कृष्न-कृपा तैं कथा कहूँ, पावत सुख सुर-नर ॥
रुक्मिनि-हरन पुनीत, चित्त दै सुनै-सुनावै।
जाहि मिटैं जम-त्रास, बास हरि के पद पावै ॥
५ सिसुपालहि दई रुक्म, रुक्मिनी बात सुनी जब।
चित्र लिखी सी रही, दई यह कहा भई अब ॥
चकित चहूँ दिसि चहति, बिछुरि मनु मृगी माल तैं।
भयौ है बदन कछु मलिन, नलिन जनु गलित नाल तैं ॥
भरि आये जल नैंन, प्रेम-रस ऐन सुहाये।
१० जनु सुंदर अरबिंद, अलिन-दल बैठि हलाये ॥
अलि पूछति बलि बात, कहौ क्यौं नैंननि पानी।
पुहुप-रेनु उड़ि परी, कहति तिन सौं मधु बानी ॥
काहू के ढिंग कुँवरि, बड़े बड़े स्वास न लेई।
कहत बात, मुख मूँदि मूँदि, उत्तर तिहिं देई ॥
१५ जो कोउ तपत उसास, उदास बदन तैं लहिहै।
कन्या बिरहिनि, बिरह-दुःख का का सौं कहिहै ॥
सुसम कुसम के हार, उदार सखी, गुहि लावैं।
कर सौं कुँवरि न परसै, अर सौं निकट धरावैं ॥

आगि लागि जरि जाहु लाज, जो काज बिगारै।
सुंदर नंद-कुँवर नगधर मों अंतर पारै॥
पति परिहरि, हरि भजन भई, गोकुल की गोपी।
तिनहुँ सबै विधि लोपी, परम प्रेम-रस-ओपी॥
४५ तिन के चरन-कमल-रज, अज से बांछन लागे।
सनक, सनंदन, सिव, सारद, नारद अनुरागे॥
इहि विधि धरि मन धीर, चीर अँसुवन सिराइ कै।
लिख्यौ पत्र सु बिचित्र, चित्र नाना बनाइ कै॥
तब इक द्विज वर बोलि, खोलि निज बात कही सब।
५० अहो देव, द्विजदेव! पिया पै तुरत जाहु अब॥
यह पाती मो नाथ-हाथ, ही मैं तुम दीजौ।
काहू नाहिं पतीजौ, बलि बलि एती कीजौ॥
द्विज न गयौ फिरि भवन, गवन कियौ धरि जु पवन-गति
आरति निरखि रुक्मिनी, अरु उत कृष्न-दरस-रति॥
५५ पुरी परम माधुरी, चाहि कै चकित भयौ चित।
श्रीनिवास कौ निज निवास, छबि को कहियै तित॥
बन-उपवन के रूख, भूख भाजै तिहिं देखैं।
अमृत-फरन करि फरे, ढरे सुर-द्रुमन बिसेखैं॥
ललित लतनि की फूलनि, झूलनि अति छवि छाजै।
६० तिन पर अलि-रव राजै, मधुरे जंत्र से बाजै॥
सुक, पिक, चातक सबद, सु मीठी धुनि अस रटहीं।
मनौं मार-चटसार, सुढार छटा-गन पढ़हीं॥

और विहंगम रंग भरे, बोलन हिय हरहीं ।
जनु तरवर रस भरे, परस्पर बातैं करहीं ॥
सुभग सुगंध सरोवर, निरमल मुनि-मन जैसें । ६५
प्रफुलित बरुई इंदु, सरोवर राजत तैसें ॥
कुंज कुंज प्रति, पुंज, भँवर, गुंजत अनुहारे ।
मनौं रवि-डर तम भजै, तजै, रोवत हैं बारे ॥
उज्जल मनिमय अटा, घटा सौं बातैं करई ।
जगमग जगमग जोति होति, रवि-ससि सौं अरई ॥ ७०
चपल पताका फरकैं, अरकैं अरक-किरन जहँ ।
घाम न कबहूँ परसैं, नित ही छाँह रहत तहँ ॥
जाल-रंध्र-मग अगर-धूम, जनौं जल-धर धुरवा ।
आनँद भरि भरि उरवा, नाचत मधुरे मुरवा ॥
बगर बगर सब नगर, उड़ी नभ गुड़ी बनी छबि । ७५
मनौं गगन मैं अगन, चौखुटे चंद रहे फबि ॥
तैसेंई देव बिमाननि चढ़ि, द्वारावति आये ।
देखि देखि हिय हरखैं, बरखैं सुमन सुहाये ॥
कृष्न-भावती पुरी निरखि, द्विज हरष भयौ अस ।
जगत-द्वंद तैं निकसि, ब्रह्म-आनंद मिल्यौ जस ॥ ८०
सिंहपौरि छबि खोरि रही, न कही बनि आवै ।
अर्थ, धर्म, अरु काम, मोक्ष, जिहिं निरखत पावै ॥
तहँ अनेक परचार, मार से बनि बनि ठाढ़े ।
कृष्न-कल्पतरु सुंदर, सीतल छाँह के बाढ़े ॥

८५ ब्रह्म, रुद्र, अमरेंद्रबृंद की भीर भुलावैं।
भीतर जान सो पावै, जिहिं हरिदेव बुलावै ॥
चल्यौ गयौ तहँ बिप्र छिप्र गति, कितहुँ न अटक्यौ।
प्रभू जानि ब्रह्मन्य, पौरिया पाइनि लटक्यौ ॥
जदु पुरुषन के मध्य, देखि जदुपति सुख पायौ।
९० जनु उड़पति उड़-मंडल तैं महि-मंडल आयौ ॥
किधौं कमल-मंडल मैं, अमल दिनेस बिराजै।
कंकन, किंकिनि, कुंडल, किरन महा छबि छाजै ॥
ताहि दूरि तैं निरखि, परखि, हरि हर्षित होई।
प्रिय संदेस कहैया है, यह द्विज वर कोई ॥
९५ उठि नँद-नंदन, जग-बंदन, पद-बंदन करि कै।
लै चले घर द्विज वर कौं, हरि कर पै कर धरि कै ॥
दुग्ध-फैन सम सैन, रमा-मन ऐन सुहाई।
ता ऊपर बैठाइ, पाइ धोये जदुराई ॥
अष्टगंध उष्नोदक सौं, अस्नान कराये।
१०० मंजुल मृदुल महीन, नवीन सु पट पहिराये ॥
खान-पान बहु मान, पान निज पानि खवाये।
कहौ कहाँ तैं आये, बोलौ बचन सुहाये ॥
तब रुक्मिनि कौ कागर, नागर नेह नवीनौ।
बसन-छोर तैं छोरि, विप्र श्रीधर-कर दीनौ ॥
१०५ मुद्रा खोलि गोबिंद-चंद, जब बाँचन आँचे।
परम प्रेम-रस साँचे, अच्छर परत न बाँचे ॥

श्री हरि हियौ सिरावत, लावत लै लै छाती ।
लिखी विरह के हाथन, पानी अजहूँ तानी ॥
हिये लाइ, सचु पाइ, बहुरि द्विज बर कौं दीनी ।
रुक्मिनि अँसुवन भीनी, पुनि हरि अँसुवन भीनी ॥ ११०
पढ़न लग्यौ द्विज गुनी, रुक्मिनी-बचन सुहाये ।
तब हरि के मन-नैंन, सिमिटि सब श्रवननि आये ॥
स्वस्ति स्वस्ति, श्री श्री-निवास, श्रुति-वास, सहाइक ।
सुर, नर, मुनि, गंध्रर्व, जच्छ किन्नर, विधि-नाइक ॥
नृप विदर्भ की कन्या, रुक्मिनि अनुचरि गनियै । ११५
ताकौ प्रथम प्रनाम बाँचि, पुनि विनती सुनियै ॥
बिलग नाहिंनै मनियै, जनियै अपनी करि कै ।
मग्न होत दुख-जलनिधि मैं, उद्धरौ कर धरि कै ॥
जब तैं तुम्हरे गुन-गन, मुनिजन नारद गाये ।
तब तैं और न भाये, अमृत तैं अधिक सुहाये ॥ १२०
मैं तुम मन करि बरे, कुँवर गिरिधरन पियारे ।
हौं भई तुम परचार, नाथ तुम भये हमारे ॥
अब बिलंब मति करौ, बरौ त्रिभुवन-पति सुंदर ।
नाथ परम सुख-धाम, सकल सुख-भोग-पुरंदर ॥
और सबै दुख-भरे, बरे अंतर ही अंतर । १२५
काल कौल से करे, परे छिन ही छिन तंतर ॥
देखत के सब गोरे, नव नव पानिप धोरे ।
हार काज नहिं आवैं, जद्यपि उज्जल ओरे ॥

तिन मैं इक सिसुपाल, नाहि मोंहिं देत रुक्म सठ ।
१३० तात-मात पचि हारे, होत नहिं सो चट तैं मठ ॥
उचित होइ सो करियै, करत लाज नहिं मरियै ।
वारन-बृंद-विदारन ! वलि गोमाय न डरियै ॥
महा हंस, जदुबंस, बीर जू बलहि बिचारौ ।
है तुमरौ यह भाग, काग सिसुपाल विडारौ ॥
१३५ परत परेवा नभ तैं, पर कर देखत याकौं ।
तुम सब लाइक अछत, छुवै सिसुपाल छिया कौं ॥
जौ नगधर नँदलाल, मोंहिं नहिं करिहौ दासी ।
तौ पावक परि जरिहौं, करिहौं तन की कासी ॥
मरि मरि, धरि धरि देहन, पैहौं सुंदर हरि वर ।
१४० पै यह कबहुँ न होइ, स्याल सिसुपाल छुवै कर ॥
सुनि रुक्मिनि की पाती, छाती पुनि लगाइ कै ।
सारथि तैं रथ माँग्यौ, रुक्म पै अति रिसाइ कै ॥
तुरत चढ़े, छबि-बढ़े, चढ़त बानक वनि आयौ ।
अरबर मैं खसि परचौ, पीतपट, द्विज पकरायौ ॥
१४५ करत बिप्र सौं बात, लसत, विकसत सुंदर मुख ।
जनु कुमुदिनि घर चल्यौ, चंद्रमा दैन परम सुख ॥
अहो द्विज! सब दल दलमलि, लाऊँ रुकमिनि ऐसैं ।
दारु मथन करि सार, अगिनि-कन काढ़त जैसैं ॥
जानि प्रिया की आरति, हरि अरबर सौं धाये ।
१५० मन की सी गति करे, चले कुंदनपुर आये ॥

इहाँ कुँवरि तरफरत, फिरत घर आँगन ऐसैं।
रवि-कर तपत करी मछरी, थंरे जल जैसैं॥
चढ़ि चढ़ि अटनि, झरोखनि, झाँकति नवल किसोरी।
चंद-उदै ज्यौं चाहत, आरत तृषित चकोरी॥
बाम भुजा लगी फरकन, कंचुकी बँध लगे तरकन। १५५
हिय तैं सूल लग्यौ सरकन, उर-अंतर लग्यौ धरकन॥
ताही छिन वह द्विज वर, चलि अंतहपुर आयौ।
बदन डहडह्यौ देखि, कछू मन धीरज पायौ॥
पूँछि न सकै मुख बात, दई यह कहा कहैगौ।
किधौं अमृत सौं सींचि, किधौं विष देह दहैगौ॥ १६०
निकसि प्रान तिय-तन तैं, द्विज के बचननि आये।
जब कह्यौ 'श्री हरि आये', मनहुँ बहुरयौ फिरि आये॥
दियौ चहै कछु द्विजहि, नहीं देखै तिहि लाइक।
तब उठि पाइनि परी, भरी आनंद महा इक॥
सुर-नर जाकौं सेवत, सेवत हू नहिं लहियै। १६५
सो लछिमी जिहि पाइ परी, ताकी कहा कहियै॥
पुर के लोगन सुनी, कि श्री सुंदर वर आये।
जहाँ तहाँ तैं आये, देखि हरि बिस्मय पाये॥
कोटि काम-लावन्य-धाम, अँग साँवरे पिय के।
जे जे जाकी दृष्टि परे, ते भये तित ही के॥ १७०
कोउ जो अलक छबि उरझे, अज हूँ नाहिन सुरझे।
ललित लटपटी पगिया, तकि तकि तहँ तहँ मुरझे॥

कोउ कटीली भौंहन, निरखत बिबस करे हैं।
कोउ कोउ दृग-छबि गिनत गिनत ही हारि परे हैं॥
१७५ कोऊ श्रवनन-कुंडल-मंडल, चंचल जोती।
निरखत ही मिलि गये, भये जलनिधि के मोती॥
कोउ लखि ललित कपोलन, मधुरे बोलन अटके।
मद गज ज्यौं परे चहले दहले, फेरि न मटके॥
कोउ जु रहे चकचौंधि, रुचिर पीतांबर-छबि पर।
१८० मनौं छबीली छटा रही थकि, सुंदर घन पर॥
कोउ रीझे श्रीवत्स-बच्छ, उर की लुनआई।
मृदु मरकत-मनि कोटि, नैंक जस दामिनि छाई॥
कोउ और तैं और, अंग के लोभ-लुभारे।
भरे भवन के चोर भये, बदलत ही हारे॥
१८५ कोउ रुचिर चरनारबिंद—मकरंद लुभाये।
चित्रकमल-संसार निरखि, अलि बहुरि न आये॥
कोउ कहै सखि बर नाइक, रुक्मिनि इन के लाइक।
मनि बाँधी कपि-कंठ, संठ रुक्मी दुखदाइक॥
कोउ कहै यह बली बीर बर याही बरैहै।
१९० जरासंधु, सिसुपाल-स्याल-मुख धूरि परैहै॥
पुनि सब भूपन सुनी, कि हरि मद-मथन पधारे।
परे बिषाद जिय भारे, मिटि गये ओज उबारे॥
मतौ कियौ मिलि उन हूँ, किन हूँ भेद बतायौ।
महा बली, अति छली, भली नहिं जौ यह आयौ॥

जहाँ देवि अंबिका, नगर बाहिर मठ ऊजन। १९५
ह्वै आई कुल-रीति, चली दुलही तिहि पूजन॥
भेरी, मंदर बाजैं, कंदर घन ज्यौं गाजैं।
पहिरि वर्म-असि-चर्म, खरे सब सुभट विराजैं॥
सावधान ह्वै चले, घेरि दुलहिनि कौं ऐसैं।
गरुड़-वेग भयभीत, सुधा-ढिँग विषधर जैसैं॥ २००
देवी द्वार, पखारि पाइ, दुलहिनी सुहाई।
थलज जलज से चरनन, चलि देवालय आई॥
विधिवत देवी अरचि-चरचि, बहु वंदन करि कै।
विनती कीनी कुँवरि, गवरि-पद-पंकज धरि कै॥
अहो देवि अंबिका, ईस्वरी! तुम सब लाइक। २०५
महामाइ, बरदाइ, सु संकर तुमरे नाइक॥
तुम सब जिय की जाननि, तुम सौं कहा दुराऊँ।
गोकुलचंद, गोविंद, नंद-नंदन पति पाऊँ॥
ह्वै प्रसन्न अंबिका कहति, सुनि रुकमिनि सुंदरि!।
पैहै अब गोविंदचंद, जिय जिनि विषाद करि॥ २१०
पाइ मनोरथ बिकसी, निकसी सुंदरि मठ तैं।
वेगि चलौ सब कहैं, चलै तिन सौं निज हठ तैं॥
मंद मंद पग धरै, चंद-मुख किरन विराजैं।
मनिमय नूपुर साजै, मनमथ बीन से बाजैं॥
अरुन चरन-प्रतिबिंब, अवनि मैं यौं उनमानी। २१५
जनु धरै अपनी जीभ, धरति पग कोमल जानी॥

देखन छवि-छल अपने वर की आरति उलही ।
निरखत निरपति सगरे, डरपति नैंक न दुलही ॥
घूँघट-पट कियौ हाँतौ, सोभित बदन डहडह्यौ ।
२२० जनौं अंबुद तैं अब हीं, निकस्यौ चंद गहगह्यौ ॥
सोभा-सदन बदन मैं, रदन-छवि राजत ऐसैं ।
अरुन बदल मैं दमकत, दामिनि-अंकुर जैसैं ॥
श्रवननि सुंदर खुभी, चुभी सब के मन ऐसैं ।
काम-कलभ की अब हीं, उलही दँतिया जैसैं ॥
२२५ अली अंस भुज दिये, निहारति, अलक सुधारति ।
सर-कटाच्छ रस-भरे, सु तकि तकि भूपन मारति ॥
परे जहाँ तहाँ मुरझि, भूप सब उरझि उरेझा ।
पाँचवान-सर साधि, करे मनमथ के बेझा ॥
दृष्टि परे जब मोहन सोहन, कुँवर कन्हाई ।
२३० तिहि छिन दुलहिनि-दसा, नाहिं कछु बरनी जाई ॥
अरबराइ, मुरझाइ, कछू न बसाइ तिया पै ।
पंख नाहिं तन बने, नतरु उड़ि जाइ पिया पै ॥
हरै हरै पग धरै, हरी रुक्मिनि नियराई ।
टक टक सब नृप लखैं, मनौं ठग मूरी खाई ॥
२३५ कछु रुक्मिनि चलि आई, हरि लै रथ बैठाई ।
घन तैं बिछुरी बिजुरी, मनौं घन मैं फिरि आई ॥
लै चले नागर नगधर, नवल तिया कौं ऐसैं ।
माँखिन आँखिन धूरि पूरि, मधुहा मधु [illegible] जैसैं ॥

गरुड़ हरी जिमि सुधा, दर्प सब सर्पन कौं हरि ।
तैसें हरि लै चले, आपनौ सहज खेल करि ॥ २४०
सुंदर साँवरे पिय सँग, अति ही आभा भासी ।
जनु नव नीरद निकट, चारु चंद्रिका प्रकासी ॥
हरी हरी यौं दुलहिनि, कहि सब लोग पुकारे ।
कित गये वे सब भूप, जूप लागे बजमारे ॥
जरासंध दै आदि, नृपति सजि सजि कै दौरे । २४५
महा सिंह के पाछे, कूकत कूकर बौरे ॥
देखे रिपु-दल भारे, तब बलदेव सम्हारे ।
मद गज ज्यौं सर पैठि, कमल से दलमलि डारे ॥
मरन तैं अधिक जु मान-भंग, मागध दुख पायौ ।
जहँ दूलह सिसुपाल, तहाँ मन राखन आयौ ॥ २५०
दुख पै दुख भयौ दूनौ, कर-कंकन दुख दीन्हौ ।
चपरि चखन के काजर, पुनि मुख कारौ कीन्हौ ॥
तब निकस्यौ नृप रुक्म, धरे सिर कंचन कुलही ।
रंचक तुम ठहराहु, आनि देहुँ तुमरी दुलही ॥
यह कहि रिस भरि धायौ, आयौ हरि पै ऐसें । २५५
दुरबल अंग पतंग, प्रबल पावक मैं जैसें ॥
जो कोऊ मतिमंद, चंद कौं धूरि उड़ावै ।
उलटि दृगनि जब परै, मूढ़ कौं तब सुधि आवै ॥
जितक छोह हरि हिये हुतौ, तेतौ नहिं कीनौ ।
मूड़ मूड़ि सब चुटिया राखि, तिहिं छाँड़ि है दीनौ ॥ २६०

इहि विधि सब रन जीति, हरी रुक्मिनि लै आये।
बिधिवत कियौ बिवाह, तिहूँ पुर मंगल गाये।
जो यह मंगल गावै, चित दै सुनै-सुनावै।
सो सब मंगल पावै, हरि-रुक्मिनि मन भावै।
२६५ हरि-रुक्मिनि मन भावै, सो सब के मन भावै
'नंददास' अपने प्रभु कौ यह मंगल गावै